सम्पादक: देवेश ठाकुर

समीचीन

[साहित्यिक-सामाजिक चेतना की त्रैमासिकी]

[लघु कथा, लघु उपन्यास अंक]

॥ १२ ॥

॥ वर्ष-४ ॥ अंक-१२ ॥ जनवरी १९८९ ॥ वार्षिक सहयोग राशि : २० रु० ॥

समीचीन

[साहित्यिक-सामाजिक चेतना की त्रैमासिकी]

[लघु कथा, लघु उपन्यास अंक]

[१२]

पंजीकरण संख्या १५१/८३

अवैतनिक सम्पादक-प्रकाशक : देवेश ठाकुर
संयुक्त सम्पादक : सतीश पांडेय
मुद्रक : वीरेन्द्र कुमार, नवयुगान्तर प्रेस, शारदा रोड, पोस्ट बॉक्स ३३३, मेरठ-२५०००२
सहयोग राशि : बीस रुपये
सम्पर्क सूत्र : प्रोफेसर्स फ्लैट्स, रामनारायण रुइया कॉलेज हॉस्टल, शीव, बम्बई-४०००२२

With Best Wishes From :

CARGO TRANSPORT CO.

G. T. ROAD, PADAV,

VARANASI.

With Best Compliments From :

BAJAJ ELECTRICALS LIMITED

Maneck Hall, East Street,
2, General Thimmayya Road.
PUNE-411 001
Telephone No. : 665321/665411/665270

GT

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

VACUUM FORM PRODUCTS

37, Vadhani Industrial Estate,
Opp. Shreyas Cinema,
GHATKOPAR (WEST)
BOMBAY-400 086

नयी नीति : नयी दिशा

हर एक बदलाव की होती है, एक सुनहरी रेखा, जिससे प्रस्फुटित होती है— नयी चेतना और नयी आभा और प्रतीत होते हैं—नये विचार और नयी दिशा

गत डेढ़ पौने दो महीनों में इस नयी चेतना का आभास, हम सभी को, सहज ही होने लगा है.

ग्रामीण भागों में उद्योग-धन्धों का विकास, उद्योगों में रोजगार के लिए स्थानीय लोगों को प्राथमिकता, किफायती खेती के लिए उपलब्ध पानी का उचित उपयोग, किसानों के विद्युत पंपों को अग्रक्रम से बिजली, कृषि पंपों संबंधी रुके मामलों का वर्षभर में निबटारा, दूध की दर में वृद्धि के लिए सहानुभूतिपूर्वक विचार, बंद कपड़ा मिलों की समस्या का समाधान करना, बम्बई में मिलों के पास की ज्यादा जमीन की बिक्री का प्रश्न केन्द्रीय सरकार के पास लम्बे समय से रुके हुए, सिंचाई विद्युत केन्द्र और राष्ट्रीय महामार्ग जैसे मामलों के पीछे लगना, कपास एकाधिकार खरीद योजना की कालावधि में वृत्ति, यातायात के विभिन्न साधनों का विकास, प्रादेशिक असमानता दूर करना, केन्द्रीय सरकार से पूरी वित्तीय सहायता प्राप्त करना और औद्योगिक विकास के लिए राज्य में सबल अनुकूल वातावरण निर्माण करने का संकल्प आदि अनेक समस्याओं के समाधान के लिए तत्काल ठोस कदम उठाने का जो निश्चय इस कालावधि में समय-समय पर किया गया, वह नयी सरकार के नये विचारों का सबूत है।

नयी सरकार, विकास सम्बन्धी समस्याओं का समाधान सबके सहयोग और सामंजस्य की भावना से करने के लिए कटिबद्ध है.

कार्य करने की इस प्रवृति से पनपी है—नयी सरकार की नयी नीति और सुस्पष्ट हुई है—जनहित के कार्यक्रमों की नयी दिशा.

कृतिशील सरकार : महाराष्ट्र सरकार

डीजीआयपीआर

KPD

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

HEATEX INDUSTRIES

B-Digvijay Estate No. 2,

Pokharan Road, No. 1, Upavan,

THANE-400 006

BB

READ

THE BEST NEWS PAGES
THE BEST BUSINESS PAGES
THE BEST SPORTS PAGES
THE BEST ARTS PAGE

IN

The Indian Post

FOR YOUR COPIES :
CONTACT :

THE CIRCULATION MANAGER
THE INDIAN POST
J K BUILDING
BALLARD ESTATE
BOMBAY-400 038
TEL : 4151415

KT

With Best Compliments From :

ABHINAV ENTERPRISES

Consultants & Controllers

12/1, NEW PALASIA,

INDORE (M.P.)

Phone No. 5329 PP

DP

इन्द्रप्रस्थ भारती

हिन्दी अकादमी की त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

संपादक : डा० नारायणदत्त पालीवाल

यदि आप चाहते हैं कि बेहतर पढ़ने को मिले तो आपकी इस जरूरत को

'इन्द्रप्रस्थ भारती'

हिन्दी अकादमी की साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका पूरा करती है, जो महज एक पत्रिका नहीं पूरी किताब है।

जिसमें वर्ष भर में छः सौ पृष्ठों की साहित्यिक सामग्री उपलब्ध कराई जाएगी।

जिसमें देश के जिम्मेदार लेखक हिस्सेदारी करेंगे।

यह पत्रिका समकालीन साहित्य का रचनात्मक मूल्यांकन और गतिविधियों को प्रस्तुत करती है। एक सौ बावन से अधिक पृष्ठ की इस पत्रिका के एक अंक का मूल्य पाँच रुपये, वार्षिक बीस रुपये। आपका सहयोग हमें बेहतर सेवा के लिए और अधिक प्रोत्साहित करेगा।

वार्षिक शुल्क मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर द्वारा इस पते पर भेजें :—

सचिव,
हिन्दी अकादमी, दिल्ली
ए-26/27, सनलाइट इंश्योरेंस बिल्डिंग,
आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

NDP

With Best Compliments From:

A WELL WISHER

With Best Wishes From :

TRILOKI NATH TIWARI

LAXMI NARAYAN MILK AND SWEET MART

Follower Lahe CHOWK,
ULHASNAGAR-3,
BEL BAZAR, KALYAN

हमारे यहाँ हर प्रकार की देशी एवं बंगाली मिठाइयाँ तथा फरसान
हर समय तैयार मिलता है ।

लक्ष्मी नारायण मिल्क एवं स्वीट मार्ट, उल्हासनगर–3

लक्ष्मी नारायण दुग्धालय, बिरला गेट, शहद, उल्हासनगर–1

लक्ष्मी नारायण दुग्धालय एवं मिष्टान भंडार, बेल बाजार, कल्याण

DS

WITH BEST WISHES FROM :

JAY INDUSTRIES

Material Handling Equipment & Steel Fabricators

36, Vakharia Industrial Estate,
Ram Mandir Road, Goregaon (West),
BOMBAY-400 104

With Best Compliments From :

AL SAMIT INTERNATIONAL,

Exporters Overseas Employment Consultants

17, Bhagoji Keer Marg, Mahim,

BOMBAY-400 016 (INDIA)

Telephone : 458217/18 Cable : ALSAMIT

Telex : 11-76644 SIMT - IN

NKM

WITH BEST WISHES FROM :

VIRDI BROTHERS
(Mecharical Engineers)

We undertake Job Work such as

● Boring ● Planning ● Shaping ● Turning

Also Assemblies And ub-assemblies

4, Kembros Industrial Estate,
Behind Blow Plast Ltd.,
Off. L. B. S. Marg, Bhandup,
BOMBAY-400 078
Phone : 5615784

SS

सहयोग-आभार

1. श्री घनश्याम नेगी
2. श्री बिजॉय बैनर्जी
3. श्री दुर्गा प्रसाद
4. कु० संगीता सहगल
5. श्री नन्द किशोर मिश्र
6. श्रीमती शशि-सुभाष मिश्र
7. श्री किशोर तिवारी
8. श्री गजेन्द्र ठाकुर
9. श्री विश्वंभर सराफ
10. श्री ताराचंद
11. श्री काशी प्रसाद दुबे
12. श्री कृष्णदत्त पालीवाल
13. श्री मोतीलाल मिश्र
14. श्री दशरथ सिंह
15. श्री एम. पी. सिंह
16. श्री के. डी. सिंह
17. कु० रतन आहूजा
18. कु० राजकुमारी सिंह
19. श्री आर. पी. यादव
20. श्री एम. पी. तिवारी
21. डॉ० रामप्यारे दुबे
22. श्री मुकेश

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

LASHI INDUSTRIAL GASES

Kalyan Shil Road,

NETIVALI (DOMBIVALI)

Pin Code-421 301

Dealers in Industrial Gases, Viz. Oxygen, Acctylene, Nitrogen & Hydrogen Etc. Gases.

Telephone : 25139, 24139, 5702

STD CODE : 0251

GMN

अपनी बात

पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी लघुकथा ने एक लम्बा सफर तय कर लिया है। इस बीच पत्र-पत्रिकाओं में लघुकथा ने 'हास-परिहास' और 'व्यंग्य' का अधिकांश स्थान अपने लिए सुरक्षित रख छोड़ा है। आज शायद ही कोई ऐसी पत्रिका हो जिसमें लघुकथा के लिए कोई स्थान निश्चित न हो। पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त नवोदित रचनाकारों और सम्पादकों के द्वारा भी अनेक लघुकथा-संकलन और लघु-कथा-विशेषांक प्रकाशित हुए हैं। इन सबमें लघुकथा के माध्यम से जीवन के विविध पक्षों में व्याप्त असंगतियों, विषमताओं और विद्रूपताओं का अच्छा अंकन हुआ है। प्रस्तुत संकलन को तैयार करते समय ये सब हमारे प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। हमने प्रस्तुत संकलन में सक्षम, सार्थक और सामयिक लघुकथाओं का वर्गीकरण भर कर दिया है। इस संकलन की प्रस्तुति में इससे अधिक हमारी कोई अन्य उपलब्धि नहीं है।

लघुकथाओं के साथ-साथ हमने इस विधा पर लघुकथा के जीवन्त लेखकों और समीक्षकों के ११ आलेख भी प्रस्तुत किए हैं। इन आलेखों की प्रस्तुति में हमारा यह प्रयत्न रहा है कि लघुकथा की परिभाषा, उसके स्वरूप, उसके कथ्य तथा उसकी विशिष्टताओं को एक साथ संकलित कर अपने सुयोग्य पाठकों के सम्मुख रखें, जिससे उन्हें लघुकथाओं से प्राप्त होने वाले रस के साथ-साथ लघुकथा के सैद्धान्तिक पक्ष का भी परिचय प्राप्त हो सके।

जिन संकल्पित और प्रगतिचेता रचनाकारों की लघुकथाएँ इस संकलन में प्रस्तुत की गई हैं, उन सबके प्रति हम आभारी हैं। प्रस्तुत लघुकथा-संकलन पाठकों का मनोरंजन तो करेगा ही, साथ ही वह उन्हें युगीन तथ्यों से अवगत कराने में भी सक्षम और सार्थक हो सकने में समर्थ होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

हम प्रस्तुत लघुकथा-संकलन के माध्यम से सामान्य जन का ध्यान उसकी अपनी जीवन-स्थितियों और समस्याओं की तरफ खींचना चाहते हैं। इसी मूल उद्देश्य को सामने रखकर हमने प्रस्तुत संकलन की योजना तैयार की है। आशा है, पाठकों को हमारा यह प्रयास रुचेगा।

हमें इस संकलन के सन्दर्भ में अपने सुयोग्य पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

□

समाज में व्याप्त अनीति, अन्याय और अमानुषिकता को आज लघुकथाओं के माध्यम से ही नहीं, लघु-उपन्यासों के माध्यम से भी अभिव्यक्ति दी जा रही है। विसंगति की यह स्थिति जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त है। शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त टुच्चेपन, घटिया मानसिकता, निकृष्ट षड्यन्त्रों और जघन्य गुट और गिरोहबाजी को इसी अंक में संकलित 'गुरु-कुल' में सशक्त और सार्थक अभिव्यक्ति दी गई है। 'गुरु-कुल' आज के शिक्षा-क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों को तो उजागर करता ही है, साथ ही शिक्षक कहलाने वाले जीवों की घटिया, अमानवीय और भ्रष्ट प्रवृत्ति को भी सीधे-सपाट रूप में स्पष्ट करता है। इस छोटी सी कृति के माध्यम से शिक्षा-संस्थाओं में एक सिरे से दूसरे सिरे तक व्याप्त भ्रष्टाचार का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही तथाकथित शिक्षकों की वह टुच्ची मानसिकता भी उजागर होती है, जिसके कारण आज शिक्षक अन्य सामाजिकों के बीच उपहास और घृणा का पात्र बनता जा रहा है। यह उपन्यास ओछेलालों, जैनों, तिवारियों, राधेश्यामों, नाहरों, कृष्णकांतों और सोमदत्तों के अधोवस्त्रों को खोलकर उनको उनके प्रकृत रूप में प्रस्तुत करता है और समाज तथा राजनीति के नियामकों को एक अप्रत्यक्ष चेतावनी देता है कि यदि देश और समाज को बचाना है तो देश और समाज की नींव—शिक्षा-संस्थाओं को ऐसे ओछेलालों, जैनों, राधेश्यामों और कृष्णकांतों आदि से बचाकर रखें, तभी भविष्य में कुछ आशा हो सकती है।

हमें आशा है कि लघुकथाओं की भाँति यह लघु-उपन्यास भी हमारे पाठकों का मनोरंजन करने के साथ-साथ उन्हें शिक्षा-संस्थाओं और शिक्षा-व्यवस्था के सन्दर्भ में गम्भीरता से सोचने की प्रेरणा देगा। अस्तु।

—सम्पादक

अनुक्रमण :

खण्ड–१

लघुकथा : चिंतन के आयाम

१. लघुकथा के मानदण्ड : शंकर पुणतांबेकर, पृष्ठ ६, २. हिन्दी की पहली लघुकथा और हिन्दी का पहला लघुकथा-लेखक : सतीशराज पुष्करणा, पृष्ठ १४, ३. लघुकथा : संश्लिष्ट सृजन-प्रक्रिया : कमल चोपड़ा, पृष्ठ २०, ४. लघुकथा : कुछ विचारणीय प्रश्न : डॉ० कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ ३५, ५. आभास, संबद्धता और लघुकथा : रतीलाल शाहीन, पृष्ठ ४८, ६. लघुकथा : एक समसामयिक परिप्रेक्ष्य : डॉ० बी० डी० मिश्र, पृष्ठ ५३, ७. हिन्दी लघुकथा : पक्षधरता के संदर्भ में : सतीश पांडेय, पृष्ठ ५६, ८. लघुकथा : सम्भावनाएँ एवं आशंकाएँ : डॉ० श्रवण कुमार गोस्वामी, पृष्ठ ६६, ९. लघुकथा की आलोचना-पद्धति : राधेलाल बिजघावने, पृष्ठ ७४, १०. हिन्दी लघुकथा : शिल्प-संदर्भ : डॉ० वेदप्रकाश अमिताभ, पृष्ठ ८१, ११. लघुकथा का शिल्प : प्रो० शशि मिश्रा, पृष्ठ ८७

खण्ड–२

लघकथा - सृजन के धरातल

स्वातन्त्र्योत्तर स्थितियाँ—

खान अब्दुल रशीद 'दर्द', पृ० ९९, हरेकृष्ण, पृ० १००, कृष्णशंकर भटनागर, पृ० १००, सतीश पांडेय, पृ० १०१, सुनील अग्रवाल 'कुमार', पृ० १०२, प्रभात भास्कर, पृ० १०२, भारत यायावर, पृ० १०३, गह्वर गोवर्द्धन, पृ० १०३, अशोक पागल, पृ० १०४, नैना जोगन, पृ० १०४, कृष्णानन्दन कृष्ण, पृ० १०५, तरुण जैन, पृ० १०६, अनिल जन विजय, पृ० १०७, राम यतन प्रसाद यादव, पृ० १०८, अमर नाथ 'अब्ज', पृ० १०८, पवन शर्मा, पृ० १०९, परमेश्वरलाल वर्णवाल, पृ० १०९ महावीर प्रसाद जैन, पृ० ११० ।

राजनीति और राजनीतिज्ञ—

आनन्द बिल्थरे, पृ० १११, पुष्पलता कश्यप, पृ० ११२, विष्णु प्रभाकर, पृ० ११३, राजेश देशप्रेमी, पृ० ११४, नारायणलाल परमार, पृ० ११५, रंगनाथ दिवाकर, पृ० ११६ शंकर पुणतांबेकर, पृ० ११६, पारस दासोत, पृ० ११७ ।

प्रशासन और व्यवस्था—

हीरालाल नागर, पृ० ११८, रामनारायण उपाध्याय, पृ० ११९, अशोक भाटिया, पृ० १२०, डॉ० श्यामसुन्दर व्यास, पृ० १२१, सुकेश साहनी, पृ० १२२, रतीलाल शाहीन, पृ० १२३, भगीरथ, पृ० १२४, कमलेश भट्ट 'कमल', पृ० १२५, राजेन्द्र प्रसाद ठाकुर, पृ० १२५, प्राणेश कुमार, पृ० १२६, विक्रम सोनी, पृ० १२६, जया नर्गिस, पृ० १२७, अशोक मिश्र, पृ० १२७, आशा पुष्प, पृ० १२८, शंकर पुणतांबेकर, पृ० १२९ ।

वर्ग विचार—

आशा गुप्ता, पृ० १३०, कमल चोपड़ा, पृ० १३१, अनिला वर्मा, पृ० १३२,

रामेश्वर काम्बोज, पृ० १३३, अज्ञात बन्धु, पृ० १३३, राजकुमार सिंह, पृ० १३४, मोहन राजेश, पृ० १३५, तारिक असलम 'तस्नीम', पृ० १३६।

दंगा, धर्म जाति, और साम्प्रदायिकता—

मार्टिन जॉन 'अजनबी', पृ० १३८, खान अब्दुल रशीद 'दर्द', पृ० १३९, रमेश बत्तरा, पृ० १४०, दिलीप नीमा, पृ० १४१, उपेन्द्र प्रसाद राय, पृ० १४२, महावीर प्रसाद जैन, पृ० १४३, राजेन्द्र राकेश, पृ० १४४, शैल अखौरी, पृ० १४५, नीलम लाला, पृ० १४५, ज्योतिर्मय आनन्द, पृ० १४६. फजल इमाम मल्लिक, पृ० १४६, श्यामसुन्दर चौधरी, पृ० १४७, राजश्री रंजीता, पृ० १४७।

मानवीय अवमूल्यन—

विनय कुमार सिंह, पृ० १४८, राघवेन्द्र वर्मा, पृ० १४९, मदन प्रसाद सिंह, पृ० १४९, विष्णु प्रभाकर, पृ० १५०, कालीचरण प्रेमी, पृ० १५१, शराफत अली खान, पृ० १५२।

निर्धनता—

पारस दासोत, पृ० १५३, रत्नेश कुमार, पृ० १५४, सतीश राठी, पृ० १५४, रमेश बत्तरा, पृ० १५५, विजय कुमार सिंह, पृ० १५५, शैल सहाय, पृ० १५६, अमरीक, पृ० १५६, मधुकांत, पृ० १५७, जया नर्गिस, पृ० १५७, पारस दासोत, पृ० १५८, रंजीत राय, पृ० १५८।

शोषण—

कमलेश भारतीय, पृ० १५९, तारीक असलम 'तस्नीम', पृ० १६०, मदन शर्मा, पृ० १६१, श्यामबिहारी सिंह 'श्यामल', पृ० १६१, मधुकांत, पृ० १६२।

सम्बन्ध-जगत : विविध परिदृश्य—

सतीश पुष्करणा, पृ० १६ , साबिर हुसैन, पृ० १६४, सुरंजन, पृ० १६४, नरेन्द्र मौर्य, पृ० १६५, कृष्णशंकर भटनागर, पृ० १६६, बालकृष्ण नीमा, पृ० १६७, केदारनाथ, पृ० १६७, कमल चोपड़ा, पृ० १६८, अशोक लव, पृ० १६९, सतीशराज पुष्करणा, पृ० १७०, बलराम, पृ० १७१, धीरेन्द्र शर्मा, पृ० १७२, रमणिका गुप्ता, पृ० १७४, प्रबोधकुमार गोविल, पृ १७४, कमल चोपड़ा, पृ० १७६।

विविध—

सतीशराज पुष्करणा, पृ० १७७, अनिल रिसबुड 'बजरंगी', पृ० १७८, कृष्ण किसलय. पृ० १७९, अशोक भाटिया, पृ० १८०, सतीश दूबे, पृ० १८०, शान्ति मेहरोत्रा, पृ० १८१, मुकेश रावल, पृ० १८१, रमेश श्रीवास्तव, पृ० १८२, सुरेन्द्र कुमार भक्त, पृ० १८२, विक्रम सोनी, पृ० १८३, रतीलाल शाहीन, पृ० १८४, शंकर पुणतांबेकर, पृ० १८४, मातादीन खखार, पृ० १८५।

खण्ड—३

लघु-उपन्यास

गुरु-कुल [देवेश ठाकुर]

लघु कथा : चिंतन के आयाम

॥ १ ॥

□ शंकर पुणतांबेकर

लघुकथा के मानदण्ड

कहा जाता है कि लघुकथा के निश्चित मानदण्ड नहीं बन सके हैं। उसके आकार और शिल्प को लेकर अब तक जो बातें कही गयी हैं, उससे लगता है, हमें संतोष नहीं है। लगता है, हम कहीं अंधेरे में हाथ मार रहे हैं और वहाँ से लघुकथा के सुनिश्चित की तलाश कर रहे हैं। लगता तो यह भी है कि हम ही अंधे हैं और 'हाथी' को अपने-अपने ढंग से व्याख्यायित कर रहे हैं।

इस सन्दर्भ में यह मान लेना गलत होगा कि दूसरी विधाओं के स्वरूप और तत्त्व सुनिश्चित हैं। नहीं, आज की कहानी, उपन्यास, नाटक के स्वरूप और तत्त्व सुनिश्चित नहीं हैं। होने भी नहीं चाहिए। ऐसा यदि हो जाए तो इन विधाओं की कृतिशीलता तालाब-सी अवरुद्ध हो जायेगी, नदी-सी प्रवाहमयी नहीं बनी रहेगी।

आप यह सोचिये नदी, जीवन और साहित्य के मानदण्ड क्या होने चाहिएँ ? बड़ा कठिन है यह कार्य। क्या पक्के घाट में ही नदी के साथ-साथ जीवन और

साहित्य की सार्थकता है ? क्या वे ही नदियाँ धन्य हैं, जो बड़े शहरों की धनी हैं, अथवा तीर्थस्थली के टीके से युक्त हैं ?

अब तो नदियों के घाट नहीं बनते, बांध बांधे जाते हैं।

जीवन और साहित्य में भी यही हो रहा है, केवल बांध-बांधे जाते हैं। इससे हरा-भरापन आया है, पर औरों के हरेभरेपन की कीमत पर। खैर, यहाँ मुझे केवल इस बात की ओर संकेत करना है कि जो प्रवाहमय है, उसका मानदण्ड मात्र प्रवाहमयता है, और बातें गौण हैं।

…और इस प्रवाहमयता में फिर वह साहित्य की कोई भी विधा हो, प्रमुख बात है यथार्थ की। नदी के लिए जो स्थान पानी का है, वह जीवन और साहित्य के लिए यथार्थ का है।

यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि जो नदियाँ उथली होती हैं, वे सूख जाती हैं। साहित्य में इसीलिए वे ही यथार्थ शाश्वत हैं जो प्रवाहमयता के साथ गहरे भी हैं। लघुकथा के सन्दर्भ में भी यह बात इतनी ही सही है। बल्कि लघुकथा का लघु होना उसे इस ओर से विशेष जागरूक बनाता है।

मैं लघुकथा को वास्तव में 'वैचारिक कथागीत' मानता हूँ। वैचारिक कथागीत कहने पर लघुकथा की जो भी विशेषताएँ हैं, जो उसके मानदण्ड स्वरूप हो सकती हैं, वे इस छोटे पद में समाविष्ट हैं।

गीत छोटा होता है। वह कितना छोटा होता है ? क्या हम उसके शब्दों की गिनती करते हैं ? उसको समय से नापते हैं ? वास्तव में गीत एक विशिष्ट भाव-प्रभाव उत्पन्न करता है जिसमें निमग्नता की अपनी सीमा होती है। आप कोई गीत चाहे तो रिकार्ड के दोनों ओर बजा लीजिए। उससे अधिक में श्रोता की निमग्नता सम्भव नहीं, चाहे वह अच्छा-से-अच्छा गीत क्यों न हो। जो बात भाव गीत पर लागू है, वही बात हमारी लघुकथा-कथागीत पर भी है।

अतः लघुकथा के आकार पर जब हम विचार करते हैं तो मुख्यतः हमें यही देखना चाहिए कि उसमें निमग्नता बनी रहती है या नहीं। यदि नहीं बनी रहती तो वह अनावश्यक दीर्घ है।

कुछ लघुकथाएँ ऐसी भी होती हैं जो पूर्ण निमग्नता का अवसर नहीं दे पातीं। गीत जैसे बीच में ही रुक गया हो। कहा जा सकता है कि ऐसी लघुकथाएँ अनावश्यक छोटी हैं।

गीत भावात्मक होता है पद्य में। लघुकथा भाव नहीं, विचार को लिये रहती है गद्य में। इसीलिए हमने इसे वैचारिक कथागीत कहा है।

आज के समस्त लेखन की प्रवृत्ति ही वैचारिक है। कविता की भी, जो भावात्मक होती है।

युग विचार का है, ठोस विचार का ! यथार्थ के सन्दर्भ में किये जाने वाले विचार का !

जब हम यथार्थ के सन्दर्भ में विचार की बात करते हैं, तो उसमें कटु यथार्थों का ही आधिक्य मिलता है—भूख, मंहगाई, अभाव, कालाबाजारी, तस्करी, रिश्वतखोरी, शोषण, बलात्कार, अन्याय, अत्याचार, भाई-भतीजावाद, दलवाद आदि के कटु यथार्थों का ।

कटु यथार्थों का ही क्यों, मधुर यथार्थों का क्यों नहीं ? यह इसीलिए कि मधु यथार्थ कुछ ही लोगों की बपौती है, अन्यायी-अत्याचारियों की बपौती ।

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा लघुकथा में कटु यथार्थ अत्यन्त घने रूप में विद्यमान होता है, क्योंकि इसका आकार लघु है । वह जैसे लोहे की भरी गोली है ।

जब हम लघुकथा को गीत कहते हैं तो उससे तात्पर्य केवल लघुकथा के आकार तक सीमित नहीं है । उससे और भी अर्थ निकलते हैं । गीत में एक-ही-एक भाव होता है, आदि से अन्त तक । लघुकथा में भी यही अपेक्षित है । इसमें एक-ही-एक विचार होता है, आदि से अन्त तक । और तीव्र प्रभाव गीत का प्राण होता है । लघुकथा में भी तीव्र प्रभाव उसका प्राण है । गीत में भावान्विति होती है, लघुकथा में विचारान्विति होनी चाहिए । गीत में भावात्मक लय होती है । लघुकथा यद्यपि गद्य की चीज़ है, तथापि उसमें भी विचारात्मक लय अपेक्षित है ।

यहीं बात आप ही भाषा और शैली की आ जाती है ।

कहा जाता है, गीत कोमलकांत पदावली होती है—गीत की भावात्मकता के कारण । लघुकथा में यथार्थबद्ध पदावली होनी चाहिए—उसकी वैचारिक प्रकृति के कारण । पद्य में भाव के अनुरूप आप भाषा शैली बनती है । गद्य में भी विचार—बल्कि यथार्थ के अनुरूप आप भाषा शैली बनती है—बननी चाहिए ।

वास्तव में रचना का प्रभाव मूलत: उसकी भाषा-शैली पर निर्भर करता है । लघुकथा में तो भाषा-शैली का ताना-बाना ही लघुकथा को सार्थक बनाता है ।

आज लघुकथा पर भाषा-शैली को लेकर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है । हमने इस दृष्टि से अपने एक लेख 'लघुकथा' (हिन्दी साहित्य : आठवां दशक में संकलित—सं० डा० पुष्पपाल सिंह) में प्रयास किया भी है । लघुकथा चूँकि आकार में छोटी होती है, अत: प्रभावोत्पादकता के लिए सटीक शब्दों, प्रतीकों, संवादों के प्रति ही वह जागरूक नहीं होती, जिस यथार्थ को उसे प्रस्तुत करना होता है, उसके प्रसंग विधान के प्रति वह भी अत्यन्त सतर्क होती है । आचार्य कुन्तक की प्रकरण वक्रता का यहाँ ध्यान हो आता है । आचार्य कुन्तक ने अपने वक्रोक्ति सिद्धांत में शब्द प्रयोग और वाक्य रचना की रमणीयता के अतिरिक्त प्रकरण या प्रसंग की सटीकता का भी उल्लेख किया है ।

आचार्य कुन्तक का सन्दर्भ लघुकथा के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त विचारणीय है।

यहाँ मेरा उद्देश्य आचार्य कुन्तक को लेकर लघुकथा में कलावाद को प्रस्तुत करना नहीं है। मैं तो आचार्य का निर्देश केवल इस दृष्टि से कर रहा हूँ कि चूँकि लघुकथा आकार में छोटी होती है अतः उसे अत्यन्त चुस्त-दुरुस्त रहने की आवश्यकता होती है—रचना विधान में पग-पग पर चुस्त-दुरुस्त। और आचार्य कुन्तक अपने सिद्धान्त में हमें यही बताते हैं।

'लघुआघात' के कॉलम 'दृष्टि और सृष्टि' में भी मैंने शैली के सन्दर्भ में काफी विस्तार और उदाहरणों के साथ अपनी बात रखी है।

आज लघुकथा का यह जो ढेर सारा कचरा बढ़ रहा है उसके पीछे कहना न होगा कि रचना शैली का अधकचरापन ही है।

आवश्यक नहीं कि लेखक कदक-कदम पर वक्रता को पकड़े। बल्कि आवश्यक तो यह है कि कदम-कदम पर वह इस तरह सावधानी बरते कि गीत का एक-एक बढ़ता स्वर जिस तरह श्रोता को पकड़ लेता है और अपनी चरमावस्था में वह उसे अपने में डुबा देता है उसी तरह लघुकथा का एक-एक बढ़ता शब्द और वाक्य पाठक को पकड़कर अपने में बांध ले।

जब हम यह कहते हैं कि आज के समस्त साहित्य की प्रवृत्ति वैचारिक है, उससे तात्पर्य यह है कि साहित्य आज मनोरंजन की चीज़ नहीं है। साहित्य विचार-मनन के लिए है। यह वास्तव में मनुष्य की खोज है—उन सत्यों की, मानवीय मूल्यों की जो मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं।

आज के साहित्य में लघुकथा में भी कौन सी वैचारिकता परिलक्षित होती है? मैं इसे मार्क्सीय, सार्त्रीय, और फ्रायडीय रूपों में पाता हूँ। मार्क्सीय वैचारिकता के अन्तर्गत हम भूख, गरीबी, बेरोजगारी, अभावग्रस्तता, शोषण आदि का चित्रण पाते हैं। इस वैचारिकता को प्रगतिवाद भी कहा जाता है। साधन सम्पन्न (हैव्ज) और साधनहीन (हैव्ज नॉट) के बीच सरकार भी साथ साधन सम्पन्न का ही देती है। अतः दोनों के बीच की विषमता की खाई दिनों-दिन बढ़ रही है। अन्याय-अत्याचार-शोषण बढ़ रहे हैं।

लघुकथा में यह चित्रण काफी अधिक मात्रा में हुआ है जो युग के यथार्थ को देखते हुए उचित भी है। पर सही लघुकथा में उसका मानदण्ड 'क्या' यथार्थ नहीं है, 'कैसे' यथार्थ है। उसके प्रस्तुतीकरण की पद्धति में है, शैली में है।

मार्क्सीय वैचारिकता समाज के निम्न तबके का प्रतिनिधित्व करती है तो सार्त्रीय वैचारिकता मध्यवर्ग का। आज का मध्यवर्ग भी उतना ही शोषित है जितना निम्नवर्ग। उसका शोषण शारीरिक नहीं, वैचारिक है। इसीलिए आज यह वर्ग इतना कुण्ठाग्रस्त, संत्रासबद्ध और घुटन भरा दिखाई देता है। वह अपने वैचारिक अस्तित्व की खोज में है। पर इसके लिए अपनी आर्थिक कमजोरी के कारण

'अपने चुनाव' में स्वतन्त्र नहीं अथवा अपनी स्वतन्त्रता में चुनाव-क्षम नहीं। अन्ततः उसकी वैचारिकता अर्थ की गुलाम बनने को बाध्य हो जाती है।

लघुकथा का यह चित्रण बहुत कम मात्रा में हुआ है। मध्यवर्ग लघुकथा में आया है, पर उसके संघर्ष को बहुत ही स्थूल रूप में प्रस्तुत किया गया है। उसके अवचेतन में तो केवल भगीरथ जैसे सिद्धहस्त लघुकथाकार ही पहुँच सके हैं। कहना न होगा कि इस मानसिकता को लेखक 'कैसे' प्रस्तुत करता है—यही अच्छी लघु-कथा का मानदण्ड है।

वैचारिकता का तीसरा फ्रायडीय रूप उच्च-वर्ग में देख पड़ता है। धर्म-अर्थ का काम मोक्ष है तो अर्थ-धर्म का मोक्ष काम। पूंजीवादी व्यवस्था में अर्थ का संचय समर्थ को ही सम्भव है। और समर्थ-संचित धन एक ओर मन्दिर-मस्जिद-गिरजा खड़ा करता है, पर दूसरी ओर वह काम का भक्ष्य भी बनता है।

लघुकथा ने इस उच्चवर्ग के धन-शोषण के साथ-साथ तन-शोषण का भी अंकन किया है। केवल काम कथाएँ लघुकथा में नहीं हैं। यह ठीक भी है। वह काम चित्रित है जो शोषक है। और यही इस चित्रण का मानदण्ड है।

हमने ऊपर लघुकथा को 'वैचारिक कथागीत' कहा है। गीत पक्ष में लघुकथा का मानदण्ड है उसकी लघुता, शैली, प्रभावान्विति। और वैचारिक पक्ष में आ जाती है वह कथा जो युग के यथार्थ को प्रस्तुत करती है।

(हरियाणा का लघुकथा संसार,
—सं० रूप देवगुण, राजकुमार निजात,
से साभार उद्धृत)

१६३, जिला पेठ, जलगाँव

॥ २ ॥

□ सतीशराज पुष्करणा

हिन्दी की पहली लघुकथा और हिन्दी का पहला लघुकथा-लेखक

लघुकथा-जगत् में यह प्रश्न बराबर उठता या उठाया जाता रहा है कि हिन्दी की पहली लघुकथा कौन-सी है ? तथा हिन्दी का पहला लघुकथा-लेखक कौन है ? अनेक विद्वानों ने अपने-अपने अध्ययन और अपनी-अपनी सूझ के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर दिया या देने का प्रयास किया है। मेरे विचार से इस प्रश्न के उत्तर हेतु सर्वप्रथम हमें आदि ग्रन्थ ऋग्वेद में आयी 'यम-यमी' और 'पुरुरवा-उर्वशी' की 'कथा' का अवलोकन करना होगा। मैं यहाँ 'कथा' (Story) शब्द, जो 'उपन्यास' (Novel) 'कहानी' (Short story) 'लघुकथा' (Storiette) आदि उपविधाओं की मूल विधा है, पर ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा। कुछ विद्वानों ने इन्हीं कथाओं को उपन्यास का उद्भव माना; तो कुछ विद्वानों ने इन्हीं कथाओं को कहानी का भी उद्भव माना। जगदीश कश्यप ने

अपने लेख 'हिन्दी-लघुकथा : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में+, जो 'छोटी-बड़ी बातें' पृष्ठ २१ (सं० जगदीश कश्यप/महावीर जैन) एवम् 'लघुकथा : बहस के चौराहे पर' पृष्ठ ८४ (सं० सतीशराज पुष्करणा) में 'यम-यमी' को पहली लघुकथा माना है। बाद में, डा० वेद प्रकाश जुनेजा ने भी जगदीश कश्यप के इसी लेखांश को लगभग उसी रूप में जगदीश कश्यप का हवाला किये बिना 'आगमन' त्रैमासिक पत्रिका (सं० तरुण जैन) अंक जुलाई-सितम्बर, १९८५ (हरियाणा-लघुकथा अंक/पृष्ठ १५) में प्रकाशित अपने लेख 'हरियाणा का लघुकथा-साहित्य' में एक स्थान पर लिखा है—"वेदों में अनेक स्थलों पर लघुकथाएँ प्राप्त होती हैं। ब्लूमफील्ड ने ऋग्वेद में पितर-पूजा से सम्बन्धित कथा-सूत्रों को मान्यता दी है तथा विण्टर निट्ज ने 'यम-यमी' संवाद के अन्तर्गत 'मैत्रायणी संहिता' को इस लघुकथा से उद्धृत किया है—

"यम मर गया।" देवताओं ने यमी को समझाया कि वह उसे भूल जाये। जब भी वे उसे भूलने को कहते, यमी कहती—"वह आज ही मरा है।"

तब देवताओं ने विचार किया—"ऐसे तो वह इसे कभी नहीं भूलेगी। हम रात बना लेंगे।" उस समय केवल दिन ही होता था, रात नहीं थी। देवताओं ने रात बनायी। दूसरा दिन हुआ। इस प्रकार वह उसे भूल गयी।

इसीलिए लोग कहते हैं—"रात और दिन दुःख को भुला देते हैं।"

(ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, पृष्ठ-२१९, भाग १)

तो क्या इसे हिन्दी की प्रथम लघुकथा माना जा सकता है। शायद नहीं। कारण मूल रूप से ऋग्वेद हिन्दी में नहीं है। अतः इसे पहली लघुकथा मानने की बात बेमानी हो जाती है।

इसके बाद जगदीश कश्यप ने ही अपने उसी लेख (हिन्दी-लघुकथा : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में) "लघुकथा : बहस के चौराहे पर" पृष्ठ ८९ में ही लिखा है—

नोट : +अभी हाल में ही जगदीश कश्यप का ही लेख जख्मों के गवाह (सं० पृथ्वी नाथ पाण्डेय) के 'वैचारिक धरातल' खण्ड के पृष्ठ १ पर 'लघुकथा : ऐतिहासिक सन्दर्भों में शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। जिसमें लेख का अन्तिम पैराग्राम—'लघुकथा को मान्यता' के सन्दर्भ में लिखा है, को बिल्कुल साफ कर दिया है। तथा ठीक उसी के ऊपरी पैराग्राफ में प्रकाशित है—'प्रतिभाशाली लेखकों की लघुकथाएँ के उपशीर्षक में सम्पादक महोदय ने उन पुराने लघुकथा-लेखकों के नाम साफ करके कुछ ऐसे लोगों के नाम (जिन्होंने शायद सम्पादक को सहयोग-राशि दी होगी) छाप दिये हैं, जिनका लघुकथा में कोई योगदान नहीं है। मैं पृथ्वी नाथ पाण्डेय से ही पूछता हूँ कि इस सम्पादित पुस्तक को छोड़कर उनका स्वयं का ही लघुकथा में क्या योगदान है? गनीमत है कि कुछ सही नाम उन्होंने ज्यों-के-त्यों रहने दिये हैं।

"१८वीं शती में लघुकथा-विषअक पौराणिक साहित्य भी छापा गया, जिसका विवरण इस प्रकार हिन्दी में सबसे पहले मुद्रित ग्रन्थों में 'मर्सिया' 'सिंहासन बत्तीसी' व 'माधोनल' को माना जाता है। ये सभी सन् १८०२ ई० में छपे। लघुकथा के दृष्टिकोण से 'सिंहासन बत्तीसी' को ही लिया जा सकता है। इसका परिष्कृत संकरण १८०५ ई० में मिर्जा कासिम अली को मदद से हिन्दी में तैयार हुआ। इसी काल में जे० बी० गिलक्राइस्ट द्वारा प्रमाणित 'हिन्दी स्टोरी टैलर' (१८०२–१८०३ ई०) नामक पुस्तक कलकत्ता से प्रकाशित हुई। यह पहली बार 'फारसी', दूसरी बार 'देवनागरी' तथा तीसरी बार 'रोमन' लिपि में छपी। इस पुस्तक के दो भाग हैं। 'डा० गिलक्राइस्ट' द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों में यह पुस्तक सबसे उपयोगी है। इसमें १०८ छोटी-छोटी कथाएँ हैं। इस पुस्तक को हिन्दी-लघुकथा का आदि ग्रन्थ माना जा सकता है।"

१८१० ई० में 'न्यू एनसाइक्लोपीडिया इंदुस्तानिका एट्सेटरा' में 'लताइफ-इ-हिन्दी' शीर्षक से ब्रजभाषा में सौ के आस-पास रोचक छोटी-छोटी कथाओं का खण्ड प्रकाशित हुआ। १८२० ई० में 'दि हिन्दुस्तानी स्टोरी टेलर' (जे० बी० गिलक्राइस्ट) का १४० पृष्ठीय दूसरा संस्करण छपा जिसमें १०० लघुकथाएँ हैं। १८४५ ई० में लखनऊ में 'नकलिया-इ-हिन्दी' हिन्दी लघुकथाओं की प्रामाणिक पुस्तक छपी। १८४६ ई० में बाल गंगाधर शास्त्री की नीति-परक लघुकथाएँ 'सदुपदेश की कथाएँ' नाम से पुस्तक में छपीं। १८६४ ई० में 'पन्नन की बात' पुस्तक छपी, जिसमें ४१४ लघुकथाएँ हैं। परन्तु इनमें से कोई भी रचना मूल हिन्दी की नहीं है। सभी किसी-न-किसी भाषा से हिन्दी में अनुदित हैं।

इसके बाद 'कथानामा-१' में प्रकाशित बलराम के लेख में मैंने पढ़ा कि १९०० ई० में प्रकाशित माखनलाल चतुर्वेदी की 'बिल्ली और बुखार' हिन्दी की पहली लघुकथा है। इस पर मैंने बलराम को यह लघुकथा भेजने हेतु कई पत्र लिखे। मगर उसने उनका कोई उत्तर नहीं दिया। संयोगवश मैं अप्रैल, १९८६ में राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी 'बंधु' के साथ किसी कार्यवश सहारनपुर गया जहाँ श्री कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर' जी से मिलने की इच्छा प्रबल हो उठी। और हमने उनके निवास पहुँचकर उनसे लघुकथा पर बातचीत शुरू की तो इस बातचीत के क्रम में उन्होंने बतलाया कि १९२९ ई० में जब महात्मा गांधी सहारनपुर आये थे, तो मैंने उन्हें कहा, "अपने आन्दोलन को और अधिक बल देने हेतु हमें देवबन्द चलना चाहिए। कारण वहाँ के लोग भी आपको देखना/मिलना चाहते हैं।" किसी तरह हमलोग बापू को देवबन्द चलने हेतु तैयार कर सके। वहाँ पहुँचकर हमलोगों ने आन्दोलन को और तेज गति देने हेतु चन्दा मांगने का अभियान

भी तेजी से शुरू किया। इसी क्रम में हम लोग एक सेठ के पास चन्दा माँगने हेतु गए। सेठ ने सरकार से डरकर हमें चन्दा तो नहीं दिया किन्तु उसने अपना नैतिक समर्थन हमारे पक्ष में अवश्य ही प्रदर्शित किया इसी घटना को मैंने घर आकर कथात्मक रूप में 'सेठ जी' शीर्षक से लिखा, मुझे लगा कि मेरे हाथ कोई नई चीज लगी है—मैंने एक नयी विधा को जन्म दिया है। फिर मैंने इसी प्रकार की कई छोटी-छोटी कथाएँ लिखीं जिनमें 'सेठ जी' एवम् 'सलाम' काफी लोकप्रिय हुई। उसके बाद प्रेमचन्द जी से भेंट होने पर मैंने उन्हें भी अपनी इस खोज से अवगत कराया, उन्होंने कहा—यह नयी कलम है, गद्यकाव्य और कहानी के बीच की चीज है। मैं उन्हें छोटी-से-छोटी कहानी कहता था, किन्तु रघुकुल तिलक ने उन्हें कथा मानने से इन्कार कर दिया। और अज्ञेय ने लिखने की कला में इसे नया प्रयोग कहकर मेरे प्रयास की काफी प्रशंसा की थी। अज्ञेय ने इसकी सराहना करते हुए इसे 'छोटी कहानी' की संज्ञा भी दी थी तथा कहानी के इतिहास में इसे मेरी देन बतलाया था। किन्तु कुछ दिनों के अन्तराल में मैं किसी सभा या सम्मेलन में भाग लेने हेतु 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' गया तो वहाँ दद्दा (माखन लाल चतुर्वेदी) से भेंट होने पर मैंने उन्हें भी अपनी इस खोज से अवगत कराया तो वे ठहाका लगाते हुए बोले, "भाई ! मैं तो इसी प्रकार की छोटी-छोटी असंख्य कहानियाँ आज से कई वर्ष पहले से लिखता आ रहा हूँ। इन्हें 'प्रभा' (यह पत्रिका कानपुर से प्रकाशित होती थी) में छाप चुका हूँ।" उस दिन मेरी नई खोज वाला भ्रम टूट गया। इसी प्रकार बातचीत के क्रम में ही उन्होंने आगे बताया कि बलराम द्वारा पूछे गये 'पहली लघुकथा' के प्रश्न के उत्तर में मैंने उसे 'बिल्ली और बुखार' की जानकारी दी थी। और कहा था कि कानपुर में 'प्रभा' के अंकों को ढूँढ़कर कर कन्फर्म कर लेना। किन्तु पटना लौटकर हिन्दी की पहली लघुकथा की सच्चाई जानने हेतु मैंने एवं निशान्तर ने मिलकर माखनलाल चतुर्वेदी की पूरी रचनावली खंगाल डाली। मगर 'बिल्ली और बुखार' नामक लघुकथा तो क्या, इस शीर्षक से उनकी कोई भी रचना हमें कहीं दिखायी नहीं दी। हाँ ! उनकी और कई लघुकथाएँ तथा लघुकथा-सी कई रचनाएँ उसमें देखने को मिलीं जो 'प्रभा' से ही ली गई हैं। किन्तु उनका रचना काल १९१८ ई० है। अत:, 'बिल्ली और बुखार' नाम से माखन लाल चतुर्वेदी की कभी कोई रचना थी ही नहीं, तो इसके हिन्दी की पहली लघुकथा होने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

सन् १९०१ ई० में माधव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' बिलासपुर से 'छत्तीसगढ़ मित्र' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, जो बाद में 'सारिका' तथा

कमलेश्वर के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'पहली कहानी' पुस्तक में प्रकाशित हुई। इसके बाद १९१५ ई० में छवीले लाल गोस्वामी की लघुकथा 'विमाता'-'सरस्वती' पत्रिका (प्रयाग) में प्रकाशित हुई। १९१६ ई० में सरस्वती के हीरक जयन्ती विशेषांक में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की लघुकथा 'झलमला' प्रकाशित हुई। कृष्ण कमलेश ने 'लघुकथा : दशा एवं दिशा' के पृष्ठ ३५ पर प्रकाशित लेख 'हिन्दी-लघुकथा का समारंभ' में 'झलमला' को ही पहली लघुकथा माना है। हो सकता है, छबीले लाल गोस्वामी, माधवराव सप्रे और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की लघुकथाओं पर उनकी दृष्टि न गयी हो। यहाँ मैं 'लघुकथा : दशा एवं दिशा' पृष्ठ ३९ पर प्रकाशित 'झलमला' की चर्चा करना आवश्यक समझता हूँ—कृष्ण कमलेश ने इस लघुकथा को स्वयं संक्षिप्त करके यहाँ प्रकाशित किया है। इस बात का भंडाफोड़ जगदीश कश्यप ने अपने सम्पादकत्व में प्रकाशित पत्रिका 'मिनीयुग' (अप्रैल-जून १९८४/पृष्ठ २५) में किया है। 'लघुकथा : दशा एवं दिशा' में 'नींव' खण्ड में सबसे पहले प्रेमचन्द की 'बाँसुरी' लघुकथा प्रकाशित है। मैंने प्रेमचन्द का सारा कथा-साहित्य छान मारा, मुझे यह लघुकथा कहीं दिखाई नहीं दी। हो सकता है यह उनकी किसी कहानी या उपन्यास का अंश मात्र हो। यों भी इसे पढ़ने पर यह कथा नहीं, मात्र दृश्यग्राफी लगती है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि प्रेमचन्द जी ने लघुकथाएँ लिखी ही नहीं—उनके कहानी-संग्रह 'कफन' में संग्रहित 'कश्मीरी सेव' लघुकथा देखी जा सकती है। अब यह बात अलग है कि प्रेमचन्द जी ने इसे लघुकथा जानकर लिखा था या कहानी। बात जो भी हो, किन्तु यह लघुकथा के दायरे में ही आती है। अतः 'इसे लघुकथा कहने में' किसी को कोई कठिनाई या हिचक नहीं होनी चाहिए।

१९१९ ई० में आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र ने 'बूढ़ा व्यापारी' लघुकथा लिखी। इसके बाद तो इन्होंने असंख्य लघुकथाएँ लिखीं तथा उनके कई संग्रह भी प्रकाश में आये और चर्चित भी हुए। १९२४ ई० में शिवपूजन सहाय की 'एक अद्‌भुत कवि' लघुकथा कलकत्ता से प्रकाशित 'मारवाड़ी मासिक' में प्रकाशित हुई थी। इसी काल में आचार्य रामचन्द्र श्रीवास्तव की 'बेबी' लघुकथा भी उल्लेखनीय है।

१९२६ ई० में जयशंकर प्रसाद ने भी असख्य लघुकथाएँ लिखीं जिनमें 'कलावती की सीख' तथा 'गूदड़ साई' इनकी प्रसिद्ध लघुकथाएँ हैं, जो इनके लघु-कथा संग्रह 'प्रतिध्वनि' में संगृहीत हैं। और १९३३ ई० में 'कवि वचन सुधा' (भाग ४/अंक २२) में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की लघुकथा 'एक कहानी : कुछ अपनी बीती, कुछ जग बीती' को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

हिन्दी के इन प्रारम्भिक लघुकथा-लेखकों के अतिरिक्त सुदर्शन, भृंग तुपकरी, कालीचरण चटर्जी एम० ए०, उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, डा० श्याम सुन्दर व्यास, रामनारायण उपाध्याय, आचार्य्य जानकी वल्लभ शास्त्री, रावी, रामवृक्ष

बेनीपुरी, आनन्द मोहन अवस्थी, राधाकृष्ण, शान्ति मेहरोत्रा, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, रघुवीर सहाय, श्याम नन्दन शास्त्री, कामता प्रसाद सिंह 'काम', शिव नारायण उपाध्याय, महेश शरण जौहरी 'ललित', रामधारी सिंह 'दिनकर', राम निवास शर्मा 'मयंक', महेन्द्र भटनागर, डॉ० त्रिलोकी नाथ ब्रजबाल आदि असंख्य कथाकार लघुकथा-इतिहास की सशक्त एवम् अविस्मरणीय कड़ियाँ हैं। परन्तु इनमें से किसी का भी रचनाकाल सन् १९०० ई० के पहले का नहीं है।

इधर हाल में ही डॉ० बालेन्दु शेखर तिवारी ने मुझे एक लेख प्रेषित करके यह जानकारी दी कि १८७६ ई० में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'परिहासिनी' नामक पुस्तक हरि प्रकाश यंत्रालय, बनारस से प्रकाशित हुई थी। जिसमें इस ३८ पृष्ठीय पुस्तक में इनकी कई लघुकथाएँ प्रकाशित हैं। यथा—'मिहमान', 'ज्ञान चरचा', 'दुआ माँगना' आदि जो 'परिहासिनी', के क्रमशः पृष्ठ संख्या ३०, ३२, ३४ पर प्रकाशित हैं।

इस सर्वेक्षण के बाद मेरे विचार से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही विधिवत् रूप से हिन्दी के पहले लघुकथा-लेखक ठहरते हैं और उन्हीं की कोई लघुकथा भी हिन्दी की पहली लघुकथा होगी। यों बिल्कुल ठीक-ठीक हिन्दी की पहली लघुकथा और हिन्दी का पहला लघुकथा-लेखक ढूँढ़ना साधारण काम नहीं है। कारण, बहुत सारे ऐसे लोग भी होंगे, जिन्होंने सम्भव है भारतेन्दु जी से भी पूर्व लघुकथाएँ लिखी हों और वहाँ तक हम अभी पहुँच ही न पाये हों। या फिर किसी अनजान कथाकार की अप्रकाशित लघुकथाएँ ही अनजाने के अंधेरे में विलुप्त हो रही हों, या हो गयी हों, कैसे कहा जा सकता है। विश्वास है, शोधार्थी इस काम को और आगे बढ़ायेंगे तथा इस लेख में दिये गये तथ्यों की जाँच करते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से भी पूर्व की हिन्दी-लघुकथाएँ ढूँढ़ निकालेंगे। यों, इस सम्बन्ध में मेरी मान्यता तो यह है "किसी भी भी विधा या उपविधा का जन्म किसी व्यक्ति विशेष से आरम्भ नहीं हुआ करता। उसका जन्म तो धीरे-धीरे और बहुत ही स्वाभाविक रूप से होता जाता है। तब धीरे-धीरे वह विधा या उपविधा अपना एक रूप ले लेती है। लघुकथा के साथ भी यही हुआ है। यही कारण है कि किसी एक रचना विशेष को हम पहली लघुकथा या फिर किसी एक व्यक्ति विशेष को हम पहला लघुकथा-लेखक नहीं कह पा रहे हैं, न ढूँढ़ पा रहे हैं। हाँ! हठधर्मितावश कोई व्यक्ति भले ही अपनी बात को एक समूह विशेष के साथ मिलकर हुआँ-हुआँ-हुआँ के शोर के साथ मनवाने की कुचेष्टा करे, तो बात दीगर है। परन्तु इन फिजूल की बातों में स्थायित्व नहीं होता।

—निदेशक
अखिल भारतीय हिन्दी-प्रसार प्रतिष्ठान
महेन्द्रू, पटना-८०० ००६ (बिहार)

समीचीन : 12

॥ २ ॥

□ कमल चोपड़ा

लघुकथा : संश्लिष्ट सृजन-प्रक्रिया

रचनाकार का सोचा हुआ आशय अभिप्राय, विचार या अनुभूति रचना के माध्यम से पाठक तक कैसे संप्रेषित हो पाता है ? अपनी बात वह दूसरों तक कैसे और कितने सफल एवं सही और किस रूप में संप्रेषित कर पाता है ? इसका जायजा रचना-विधान सम्बन्धी कई पहलुओं और प्रश्नों के उत्तर खोजने पर लिया जा सकता है ।

रचनाकार का आशय, विचार, बात, अनुभूति या अभिप्राय, रचना में आये प्रसंगों, घटनाओं, सन्दर्भों, प्रश्नों, पात्रों, संवादों, वाक्यों, संवेदनाओं के प्रस्तुतीकरण में अन्तर्व्याप्त रहता है । लघुकथा अपने आप में स्वतन्त्र और सम्पूर्ण कला है ।

लघुकथा के शिल्प को लेकर आज जितनी चर्चा हो रही है वह निःसन्देह लघुकथाकारों के शिल्प के प्रति जागरूकता का प्रमाण है और यह सजगता स्वाभाविक है । लेकिन लघुकथा विधा के मूलतः जीवन्त गद्य रूप को नजरअंदाज करके कई निरर्थक सवालों को लघुकथा से जबरदस्ती जोड़ा जा रहा है, जोकि लघुकथा

को अगम्भीर, सीमित, अस्पष्ट एवं अपूर्ण साहित्य रूप सिद्ध करते हैं···। इनमें से कई कुछ प्रश्न उल्टा रचना-विधान की · दृष्टि·· से लघुकथा की सीमाएँ बांधते दिखते हैं···जिससे सिद्ध यह होता है कि लघुकथा वस्तु को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत करने में अक्षम है···जबकि लघुकथा एक सार्थक, स्वतन्त्र एवं संभावनाशील विधा है और जीवन के यथार्थ अंश, खण्ड, प्रश्न, क्षण, केन्द्र, बिन्दु, विचार या अनुभूति को गहनता के साथ व्यंजित करती है···

अत्यधिक आग्रहों के कारण लघुकथा की मूल संवेदना तो खण्डित हो ही जाती है···उसके कथ्य में अविश्वसनीयता, अपूर्णता और शिल्प में असहजता और कृत्रिमता आ जाती है।···

कोई भी रचना किसी प्रकार की निर्धारित औपचारिकताओं के अधीन नहीं होती ··। रचनाकार जब जीवन की सूक्ष्म, गहन अनुभूति एवं विचारों को शिल्पगत निर्धारित तत्त्वों की सीमा में आबद्ध होकर सही इजहार दे पाने में दिक्कत महसूसते हैं तो वे शिल्पगत पुराने साँचों को तोड़ फेंकते हैं।

जीवन के महत्त्वपूर्ण क्षणों में रचना की मूल संवेदना निश्चित करने के बाद रचनाकार के सामने संप्रेषण की समस्या उपस्थित होती है। कथ्य के अनुरूप शिल्प माध्यम ही इस समस्या का एकमात्र हल है। लघुकथा का रचना-विधान एक यन्त्र-क्रिया की भांति निश्चित नहीं किया जा सकता। अगर यह टेकनीक एकदम निश्चित कर दी जाती है तो रचनाकार रचनाकार न कहला कर केवल टैक्नीशियन कहलायेगा। निर्धारित रूपों, मात्राओं, अवधियों और सीमाओं में लघुकथा के कथानक, चरित्र, संवाद ··उद्देश्य आदि को देखा, नापा और मापा जाना·· लघुकथा ही नहीं किसी भी संभावनाशील विधा के सामर्थ्य, सार्थकता और संभावनाओं पर अंकुश लगाने जैसा है। लघुकथा एक जीवन्त विधा है। उसके अंग प्रत्यंग की जाँच टुकड़ों में निर्धारित प्रतिमानों के तहत नहीं की जानी चाहिए।

रूपबन्ध की दृष्टि से लघुकथा एक इकाई है और उसे उसके संश्लिष्ट रूप में ही ग्रहण किया जाना चाहिए। पाठक उसे एक इकाई के रूप में ही लेता है···। कथानक चरित्र, संवाद, भाषा···उद्देश्य आदि के सामंजस्य से लघुकथा बनती है। वस्तुत: लघुकथा के ये सभी तत्त्व अविभाज्य हैं और लघुकथा के उक्त समस्त तत्त्वों के सामूहिक रूप से सम्पूर्ण प्रभाव उत्पन्न करके ही रचनाकार अपने आशय को संप्रेषित कर सकता है।

इन्हीं प्रश्नों को लेकर लघुकथा जैसे छोटे गद्य रूप से पूर्णता और सार्थकता की मांग की जा सकती है···क्योंकि लघुता में अधूरेपन और निरर्थकता का खतरा सर्वाधिक रहता है···जबकि लघुकथा की सृजनात्मक सार्थकता इसी लघुता को सार्थकता प्रदान करने में है···।

समीचीन : 12

हालांकि लघुकथा कहानी की ही तरह कथा और शिल्प की संश्लिष्ट इकाई है। कथा और शिल्प का सन्तुलन ही लघुकथा की संम्प्रेषण-शक्ति बनता है।··· क्योंकि लघुकथा की अपनी एक स्वतन्त्र एवं सम्पूर्ण उपस्थिति है और लघुकथा कथ्य और शिल्प की दृष्टि से अधिक सुगठित, संश्लिष्ट और संघटित रूप है। लघुकथा के एक कलात्मक सृष्टि होने के कारण इसका शिल्पगत तात्विक विवेचन कला की सामान्य अवधारणाओं के तहत ही किया जा सकता है···। लघुकथा में सख्त अनुशासन, अधिक कारीगरी, अतिरिक्त कुशलता गहन रचनात्मक दृष्टि एवं सृजनात्मक प्रतिभा की मांग की जा सकती है।

शिल्प सम्बन्धी लघुकथा की विवेचनाओं में कथानक की संक्षिप्तता, पात्रों की सजीवता एवं प्रमुखता वातावरण की सुन्दरता, संवादों की मार्मिकता एवं मुखरता वगैरह-वगैरह जैसी सतही बातें कही जाती रही हैं। जोकि लघुकथा की बजाय 'कहानी' के शिल्प सम्बन्धी विश्लेषणों के लगभग नजदीक जा पहुँचती हैं और लघु-कथा के औसत शिल्प को समझ पाना और लघुकथा के शिल्प विधायक तत्त्वों की विशेषताएँ स्पष्ट समझ पाना असम्भव नहीं तो कठिन तो हो ही जाता है। निश्चित रूप से लघुकथा जैसे लघु-कथारूप के शिल्प विधायक तत्व उसके अनुरूप एवं विशिष्ट होंगे जो उसे सुगठित एवं संश्लिष्ट रूप दे सकें···।

लघुकथा क्योंकि न्यूनतम शब्दों में अधिकतम व्यंजनता की सामर्थ्य रखती है, इसलिए लघुकथा की सृजनात्मक अपेक्षाओं को पूरा करना अधिक चुनौतीपूर्ण है।

लघुकथा का शिल्प उसकी विशिष्ट अन्तर्वस्तु की आन्तरिक मांग और विवशता का परिणाम है···जिस में गहनवस्तु, —चयन से लेकर तीव्र तीक्ष्ण लेखकीय दृष्टि के योग से उसे सुस्पष्ट वैचारिक स्तर तक ले जाया जाता है यानी कि कथा साहित्य के अन्य रूपों की भांति ··लघुकथा में भी अनिवार्य रूप से तत्व योजना रहती है। लघुकथा जैसी सृजनात्मक सम्भावनाओं से युक्त साहित्यिक विधा की मूल संवेदना, संप्रेषण शक्ति और तात्विक विशिष्टताओं को जानना आवश्यक हो जाता है।

लघुकथा की सही जमीन उसका कथापन ही है। सही शिल्प के अभाव से कथापन सार्थक नहीं हो सकता और यदि शिल्प कथानक को नये आयाम भी दे पाये तो रचना को और अधिक सार्थक और उत्कृष्ट बना दे सकता है···।

लघुकथा के स्वीकार्य तत्त्वों के सूत्र अत्यन्त बारीकी, कारीगरी एवं कुशलता से आपस में गुंथे रहते हैं।

वस्तु, पात्र, संवाद···उद्देश्य आदि तत्त्वों की दृष्टि से कहानी लघुकथा और उपन्यास तीनों में मोटे तौर पर समानता है क्योंकि तीनों गद्य रूप हैं और कथा तीनों के केन्द्र में है···लेकिन अन्य कथा-रूपों की तुलना में लघुकथा की कथावस्तु में

एकतानता, सूक्ष्मता, तीव्रता, गहनता, केन्द्रीयता, एकतन्तुता और सांकेतिकता आदि होने के कारण लघुकथा का महत्व अधिक बढ़ जाता है…और यह भी कि क्योंकि लघुकथा का जोर सूक्ष्मता पर है। इसलिए लघुकथा के तत्वों में तीक्ष्णता तीव्रता और गहनता लाकर वह प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। उसके लिए संगत तत्वों के चुनाव के परिणामस्वरूप लघुकथा का शिल्प अधिक सुगठित एवं संश्लिष्ट होता है।

कहानी और लघुकथा के कथानक में अन्तर कैसे किया जाए ? निश्चित रूप से लघुकथा के शिल्प के सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं निर्णायक तत्व के रूप में कथ्य को गिना जा सकता है…लघुकथा के कथ्य में सांकेतिकता, सूक्ष्मता, गहनता, सहजता, प्रवाहमयता, स्पष्टता, सन्तुलन, सुसम्बद्धता, सघनता, नवीनता आदि गुण होने चाहिएँ।

लघुकथा की सार्थकता, न्यून, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, गहन, कथ्य के प्रस्तुतीकरण में ही नहीं बल्कि समस्त रचना में परिव्याप्त मानवीय संवेदना से उसके शिल्प विधान में संश्लिष्ट बुनावट, कसावट कलात्मकता और प्रभावान्विति लाने तक है…।

लघुकथा के प्रमुख तत्वों के सापेक्षिक महत्व को देखा जाए तो कथ्य को लघुकथा का मूल तत्व माना जा सकता है…

लघुकथा में वर्णन नहीं विश्लेषण, महज चित्रण नहीं यथार्थबोध, अवलोकन नहीं पड़ताल, विवरण नहीं संकेत आदि पर अतिरिक्त बल दिया जाता है।

जीवन-सत्यों के किसी प्रसंग, खंड, अंश, प्रश्न, स्थिति विचार, कोश, अर्थ अथवा विशिष्ट चरित्र में लघुकथा के कथानक की क्षमताएँ ढूँढ़ी जा सकती हैं।

लघुकथा का कथ्य घटना और संवेदना का महत्व सृजनात्मक चित्रण ही नहीं बल्कि लघुकथा में उन सूक्ष्म, गूढ़, गहन, तीव्र, प्रखर, स्पष्ट, मुख्य, सार्थक एवं तीक्ष्ण कथा-रूपों को लघुकथा अपना फार्म देकर हिन्दी साहित्य को न केवल समृद्धि दे रही है, बल्कि पूर्णता दे रही है जिसके छूटे रह जाने से हिन्दी साहित्य की अपनी पूर्णता पर प्रश्न लग जाने का स्वाभाविक खतरा हो सकता है।

युगीनस्थितियों, जीवनवास्तव, और परिवेश की तल्ख सच्चाईयों की व्यापक पड़ताल के बाद निष्कर्ष रूप से प्राप्त सूत्रों और स्रोतों की अभिव्यक्ति देना लघुकथा का सशक्त अभिव्यक्ति प्रकार होने का प्रमाण है…।

कथावस्तु जिन अतिरिक्त सूत्रों से मिल कर बनती है जैसे प्रासंगिक कथाएँ, अन्तर्कथाएँ (एपीसोड्स), उप-कथानक और सहायतार्थ समाचार ब्यौरे आदि··लघुकथा में ये अधिकांश प्रयुक्त नहीं होते। जबकि कहानी और उपन्यास में काफी हद तक इनका प्रयोग होता है…। लेकिन यह भी नहीं कि लघुकथा की कथावस्तु केवल कथासूत्र ही है। लघुकथा का आकार लघु होने के कारण उसमें उपकथाएं या

प्रासंगिक अन्तर्कथाओं की जगह अधिकारिक कथा ही रहती है··· लघुकथा की यह एकतन्तुता, एकतानता, एकसूत्रता लघुकथा की अपनी विशिष्टता है।···इसीलिए यह कहानी या उपन्यास न होकर लघुकथा है। वर्णनात्मकता और विवरणात्मकता की कमी के कारण सूक्ष्म कथानक अविराम गति से अपनी निश्चित दिशा में अग्रसर होता है···फलतः लघुकथा की कथावस्तु अत्यन्त पोओन्टिड होती है।

लघुकथा का रूप-गठन और शब्द-गठन संश्लिष्ट एवं सांकेतिक है। लघु कथाकारयह यों हैं···दरअसल यह इस तरह से·· समूचा कथ्य उसी पर खड़ा करता है···

इस प्रकार आधारभूत विचार द्रवीभूत होकर सम्पूर्ण लघुकथा के रूप में आकार पा लेता है·····।

समय, सत्य और जीव सत्य के किसी खंड, अंश, अंग, कण, कोण, प्रश्न, विचार, स्थिति, प्रसंग को लेकर चलने वाली लघुकथा में कथानक की एक सुगठित सुग्रथित, सुसम्बद्ध एवं संश्लिष्ट योजना रहती है और उसी के अनुरूप पात्रों, संवादों ···भाषा आदि का निर्माण अत्यन्त सावधानी से करना पड़ता है···। और कथ्य के अनुसार ही लघुकथा के आकार यानी शब्द-सीमा का भी निर्णय होता है ·।

घटना के अन्तर्विरोध को लक्षित कर युग के मुख्य अन्तर्विरोध की गहनता और जटिलता की सूक्ष्म पकड़ लघुकथा की सार्थकता की परिचायक है···।

अधिक तीक्ष्ण, गहन दृष्टि, और सूक्ष्म मानवीय संवेदना, लघुकथा के सन्दर्भ में अधिक महत्वपूर्ण हैं···। कथ्य का गहन एवं सूक्ष्म चयन और उसकी उचित अभिव्यक्ति ही उसे मानवीय संवेदता से जोड़ती है···और उसकी निष्पत्ति उसे अतिरिक्त महत्ता दिला जाती है···

कथ्य के दृष्टिकोण से लघुकथा में एक घटना या एक बिम्ब को उभारने की अवधारणा लघुकथा में निरर्थक है अथवा सार्थक ? इस पर गौर किया जाना चाहिए···।

सामान्यतः लघुकथा में छोटी से छोटी घटना में कितने अर्थ और, संभावनाएं ध्वनित हो सकती हैं, उन्हें विश्लेषित कर और पूर्णता प्रदान कर लघुकथा उसे मानवीय संवेदना के साथ जोड़ देती है····क्योंकि छोटी से छोटी घटना में भी विराट मानवीय संवेदना, निर्माण-क्षमता, संघर्ष और अनेक गहन गूढ़ अर्थनिहित हो सकते हैं··यानी छोटी से छोटी अनुभूतियों को विराट मानवीय संवेदना के स्तर पर मूर्त करना लघुकथा के सामर्थ्य का परिचायक है···

अनुभूतियों, मन-स्थितियों, आशयों और अभिप्रायों को घटना के माध्यम से घटना से सम्बद्ध भाव-स्थितियों को उद्घाटित किया जाता है···।

छोटी-छोटी घटनाएं, जो हर पल घटती रहती हैं उनके सामान्तर (बाह्य और आन्तरिक) रूप से भी कुछ घटता है···। लघुकथा में स्थूल घटना ही घटित

नहीं होती बल्कि घटना के साथ सूक्ष्म भाव स्थिति को भी उद्घाटित किया जाता है······।

कई लघु कथाओं के मूल घटना पृष्ठ भूमि में घटित हो चुकी होती है। कई बार लघुकथा में इसका प्रभाव संवेदन ही प्रमुख हो जाता है······यानी उस प्रभाव सवेदन के परिणाम स्वरूप जो एक यातना पूर्ण मानवीय मन-स्थिति बनती है···या संघर्ष पूर्ण स्थिति के परिणाम स्वरूप जो कुछ घटता है······विचारणीय है कि क्या उसका उद्घाटन लघुकथा के सन्दर्भ में महत्व नहीं रखता······? पहली घटना ही महत्व रखती है······जो कि केवल उस स्थिति का आरम्भ मात्र······? इससे जुड़े लघुकथा के काल अवधारणा और समस्या, स्थितियों के ट्रीटमैन्ट सम्बन्धी प्रश्न भी आ जुड़ते हैं।

हालांकि लघुकथा के सन्दर्भ में किसी बड़े क्रिया व्यापार गढ़ी हुई कई मोड़ों वाली, काल्पनिक संयोगों से निर्मित······व्यापक काल में फ़ैली अविश्वसनीय, घटनाक्रम······आदि बिल्कुल भी महत्व नहीं रखते······।

घटना को केवल घटना के रूप में जिज्ञासा, कौतूहल गुदगुदाने या आश्चर्य के लिये सम्मोहित न कर घटना-मूल में मानवीय स्थितियों को संवेदना के स्तर पर उकेरना लघु कथा का उद्देश्य होना ही चाहिये······। स्पष्ट है कि लघुकथा घटनाओं और स्थितियों के संयोजन के माध्यम से युगीन स्थितियों और मानवीय संवेदनाओं को ही व्यंजित नहीं करती बल्कि उन अन्तर्विरोधों और विसंगतियों को बेपर्दा करने की पर्याप्त क्षमता भी रखती है।

समकालीन लघुकथा में ज्यादातर दो परस्पर विरोधी घटनाओं या स्थितियों को लघुकथाकार उठाता है और उनके अन्तर को दिखाने का प्रयास करता है। कथनी करनी के अन्तर को घटनात्मक स्थिति न भी माने तो भी अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं।

छोटी सी घटना के परिणामस्वरूप मानवीय सत्य वा स्थिति का उद्घाटन लघुकथा करती है······एक सूत्र में से अनेक रेशे निकल सकते हैं······यदि इन सभी की एक संश्लिष्ट बुनावट कर एक सुगठित रचना की जाये तो क्या वह सार्थक नहीं होगी।

वैसे भी घटनाओं गिनतियों और अतिरंजना में नहीं उनकी सहजता या जटिलता और उसमें निहित अर्थों के दृष्किोण से परखा जाना चाहिये।······रचनाकार का आशय उसके आब्जरवेशन, उसके विचार, उसकी संवेदनाएँ, उसका अभिप्राय: उसका मंतव्य किस रूप में किन-किन घटनाओं के माध्यम से संप्रेषित हो पायेगा, अधिक महत्व रखता है। ना कि यह कि घटना या बिम्ब एक हो अथवा एकाधिक······जहाँ तक हो सके एकाधिक घटनाओं के लघुकथा में चित्रण से बचा जाना चाहिये।

सूक्ष्म से सूक्ष्म बिम्ब, संकेत एवं प्रतीकों का चित्रण सशक्त भाषा के माध्यम से किया जा सकता है जिससे शिल्प की दृष्टि से और अधिक उत्कृष्ट लघुकथायें लिखीं जा सकती हैं।

बिम्बों का प्रयोग रचना की शिल्पगत कलात्मक सुन्दरता या उस की मूल संवेदना को नये अर्थ देने के लिये किया जाता है। एक या एकाधिक बिम्बों के प्रयोग की कोई सीमा या निर्धारण लघुकथा के सन्दर्भ में बेमानी है……। यह रचनाकार और उसकी प्रतिभा पर निर्भर करता है……। एक ही सूक्ष्म घटना या बिम्ब का चित्रण, सार्थक लघुकथा के लिये आदर्श हो सकता है अनिवार्य नहीं।

किसी भी समर्थ विधा की तरह लघुकथा के प्रमुख पात्र एक तरह से नियामक का कार्य करते हैं।

लघुकथा के पात्रों का भी अपना महत्व है। कथानक को वहन करने, उसे गति देने, घटनाओं तथा स्थितियों के साथ संघर्ष करने, मानवीय स्थितियों का संप्रेषण और मानवीय मूल्यों की स्थापना पात्रों के माध्यम से की जा सकती है।

पात्र कैसे भी स्थिर, गतिशील, जटिल, सरल, संघर्षरत, स्वाभाविक, सजीव, स्वतन्त्र, प्राकृतिक, अलौकिक, साधारण वर्ग के साधारण आदमी से लेकर विशिष्ट वर्ग के प्रतिनिधि पात्र तक कोई भी हो सकता है।

लघुकथा के कथा विन्यास के सूक्ष्मीकरण के कारण पात्रों की लघुकथा में विशेष अहमियत है। पात्रों के जरिये उसके परिवेश, जीवन से सम्बन्धित अवसाद, उल्लास स्पन्दन, संवेदना और सहानुभूति आदि और उसमें उसकी मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया के निरीक्षण का उपयोग लघुकथा में किया जा सकता है। प्रमुख पात्र अपनी संघर्षशक्ति या विवशता में प्रमुख मूल्यों को छोड़ता-तोड़ता हुआ मानवीय मूल्यों की व्याख्या कर जाता है……।

लघुकथाकार घटनाओं तथा स्थितियों के चित्रण के साथ-साथ सांकेतिक रूप से पात्रों के चरित्रों को भी स्पष्ट करते चलते हैं। संवादों की सहायता से रचनाकार की कुशलता से और भाषा की व्यंजकता से स्वयंमेव ही पात्र का चरित्र-चित्रण होता जाता है। लघुकथाकार विभिन्न परिस्थितियों का सृजन करके उनके माध्यम से चरित्र-चित्रण की सहजता, मौलिकता, स्वाभाविकता और विश्वसयनीयता लाने के लिये पात्रों के सहारे उनके नैतिक, अनैतिक, शुभ-अशुभ, भले-बुरे, आचरण का औचित्य सिद्ध करते हैं।

हांलाकि लघुकथा की पात्रगत अवधारणाएँ काफी कुछ कहानी से साम्य रखती हैं। समकालीन कहानी में अधिकतर प्रकृतिगत पात्र जैसे पेड़-पौधे, आदि उपादान नायक नहीं बनते जबकि लघुकथा में ये उपादान क्या केन्द्रीय पात्र की भूमिका निभा सकते हैं ? इस प्रश्न के सन्दर्भ में प्रथमतः तो यह धारणा ही गलत है कि ये प्रकृतिगत उपादान कहानी में नायक नहीं बनते। बनते हैं……लेकिन कहानी

और अन्य कथा प्रकारों से प्रकृतिगत, अलौकिक और वायवीय पात्रों के क्रमशः तिरोहित होते जाने और यथार्थ चरित्रों की प्रतिष्ठा के पीछे अनेक......समय, समाज, जीवन और यथार्थ सत्य आदि कारण सक्रिय रहे हैं।

यह रचनाकार के सृजनात्मक सामर्थ्य पर निर्भर करता है कि वह अपने आशय या अनुभूति को प्रकट करने और उसे रचना में अन्तर्व्याप्त करने के लिये कैसे पात्रों का चुनाव करता है......यथार्थ मानवीय या प्रकृतिगत और वे पात्र उसके आशय को सफलतापूर्वक संप्रेषित भी कर सकें।

विश्व लघुकथा साहित्य को देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि विश्व के अनेक ख्यात रचनाकारों ने इस प्रकार के प्रकृतिगत......पेड़-पौधे वगैरह को लघुकथा के मुख्य पात्र बनाकर सफल रचनायें दी हैं......बल्कि विश्व लघुकथा में मोटे तौर पर ऐसी ही लघुकथाओं का आधिक्य है......हिन्दी लघुकथा में भी ऐसी अनेक सफल लघुकथायें हैं......।

हालांकि लघुकथा का अपने मुख्य पात्रों के प्रति ऐसा कुछ विशेष......पात्र-गत आग्रह नहीं है, और न ही ऐसा कोई निर्धारण किया ही जाना चाहिये...।

अपनी बात किस प्रकार से पात्रों के माध्यम से कही जाये जो कि सहज, सफल और सरलता से संप्रेषित हो पाए, यह रचनाकार पर निर्भर करता है।

प्रकृतिगत, अलौकिक और वायवीय पात्रों के लघुकथा का मुख्य पात्र के रूप में आने से यह जबरदस्त खतरा तो अवश्य हो ही जाता है कि लघुकथा-लघुकथा न रहकर भावकथा, नीतिकथा या बोधकथा होकर रह जाए...। और इससे संप्रेषण की सहजता और सरलता में भी थोड़ा व्यवधान आ सकता है...। दरअसल इस तरह के पात्रों का निर्वाह एक चुनौती है...और इस चुनौती को कई समर्थ रचनाकारों ने स्वीकारा है और सफल भी रहे हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लघुकथा में कैसे भी मानवीय या प्रकृतिगत पात्र हो सकते हैं...।

लघुकथा में कथोपकथन का पात्रानुकूल प्रवहमान, स्वाभाविक, सजीव संगत व्यंजना-शक्ति से युक्त समयानुकूल, परिस्थितियों के अनुकूल सुसम्बद्ध अर्थपूर्ण, साभि-प्रायः संक्षिप्त सरस, ध्वन्यात्मक, भावपूर्ण, मार्मिक, मुखर, प्रभावोत्पादक, जानकारी पूर्ण, सहज संप्रेषणीय, सोद्देश्य, और सांकेतिक होना आवश्यक है। रचनाकार का आशय या अभिप्रायः संवादों के जरिये सहजता और सरलता से संप्रे-षित हो जाता है।

कथोपकथन लघुकथा की क्षिप्रता की रक्षा करते हैं...संवादों में अभिव्यंजना व ध्वन्यात्मकता होनी चाहिये व भाषा पात्रानुरूप......।

हालांकि जहाँ तक संवाद का प्रश्न है उसे लघुकथा का अत्यावश्यक तत्व नहीं कहा जा सकता...और बिना किसी एक भी संवाद के भी लघुकथा लिखी जा

सकती है। नागरिक (जगदीश कश्यप)। लेकिन संवादों की उपस्थिति लघुकथा में उपरोक्त कई विशेषतायें लाकर उसके प्रभाव को बढ़ा देती हैं···। संवाद, रचना का छोटा स्वाभाविक और अत्यन्त प्रभविष्णु अंश होता है और उसका एक-एक शब्द सार्थक सोद्देश्य और महत्वपूर्ण होता है···। संवादों के सहारे लघुकथा के अन्य तत्व मुखरित होते हैं···। परिणामत: कथोपकथन लघुकथा की तात्विक विशेषताओं में से एक है।

कुछ रचनाकार कथोपकथन से अपनी रचना शुरु करते हैं और कथोपकथन में ही समाप्त करते हैं। उसे लघुकथा संवाद कहा जा सकता है या लघुकथा ?

केवल संवादों की सहायता से कई विश्व स्तर की कहानियों की रचना सफलतापूर्वक की गई है। कहानी ही नहीं कुछ उपन्यास भी केवल कथोपकथन से शुरु और कथोपकथन पर ही खत्म हुये हैं···

लघुकथा के सन्दर्भ में संवादों को ध्यान में रखकर उसे पूर्ण विधा या कोई अतिरिक्त विशेषण (लघुकथा संवाद···) देना सही नहीं कहा जा सकता क्योंकि संवादों के अतिरिक्त भी कुछ लघुकथा के बाकी तत्व कथानक, पात्र, भाषा, उद्देश्य, आदि भी मौजूद रहते हैं······

केवल संवादों की बिना पर उसे नाटक या एकांकी नहीं कहा जा सकता। नाटक या एकांकी दृश्य-श्रव्य रूप है, जिसमें संगीत, अभिनय, ध्वनि, मंच-स्थान, साज सज्जा आदि तत्वों की अपेक्षा रहती है, लघुकथा में नहीं······

लघुकथा अपनी सूक्ष्म घटना को अधिक प्रभावशाली व संवेदनशील बनाने के लिये पात्रों की बात उन्हीं के मुख से बिना किसी अनावश्यक फैलाव, टिप्पणियों व लफ्फाजी के रखती है। वर्णन और विवरण के शब्द बाहुल्य के पचड़े में पड़ना किसी भी कुशल रचनाकार का लक्ष्य नहीं हो सकता। लघुकथाकार अपनी तरफ से कुछ भी न कहकर पात्रों के सुख–दुःख उन्हीं की जुबान से कहलवा देते हैं···संवादों से ही कथ्य धीरे-धीरे खुलता चला जाता है······।

इस संवाद शैली का चुनाव रचनाकार की अपनी समझ, रूझान और सामर्थ्य पर निर्भर करता है, जिससे वह अपनी अभिव्यक्ति इसी प्रकार से करने में सहजता, सरलता और सम्पूर्णता का अनुभव करता है······

वैसे भी लघुकथा में संवादों की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि कई लघुकथाओं की मूल संवेदना इसके पात्रों द्वारा उच्चारे गये संवादों के द्वारा ही खुलती है। जैसे एक लाजा था, वह बहुत गलीब था···(कहूँ कहानी)।

—मां, मैं यह पैसे लच्छी को दे आऊँ······(खेल)

—मुझ भले चंगे को बीमार करते,तुम्हें शर्म नहीं आती (सरस्वती पुत्र)

—तू मां बनी है क्या···(मां) और विक्रम सोनी की लघुकथा (बातचीत)

ऐसा नहीं है कि कहानी कुछ दिनों (या महीनों) और उपन्यास कुछ वर्षो (या दशकों,शताब्दियों) का ऐतिहासिक कालानुक्रमिक वर्णन हो……। सृजनात्मक विधाओं को काल की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता……तो लघु कथा को कुछ घण्टों के घटनात्मक इतिवृत्त के रूप मानना कहाँ तक उचित होगा ? कुछ क्षणों या मिनटों या कुछ घण्टों में लिखी गई रचना क्या लघुकथा ही मानी जाये तो हिन्दी और विश्व साहित्य में अनेक ऐसे उदाहरण हैं कि कई कहानियाँ कुछ ही मिनटों या घण्टों की घटनाओं और कई उपन्यास कुछ घण्टों या एकाध दिन (सात घण्टे, एक रात……) की कालावधि में सिमटे हुए हैं। क्या उन्हें भी लघुकथा मान लिया जा सकता है……?

हालांकि कई श्रेष्ठ लघु कथायें जीवन के एक क्षण का मूर्त चित्र प्रस्तुत करती हैं। क्षण जो अतीत और भविष्य के बीच एक कड़ी होता है। लघु कथा में यह जो क्षण का चित्रण होता है वह इकहरा, आकस्मिक और सम्पूर्ण हो सकता है। ऐसा क्षण है जो अपनी आकस्मिकता में ही जीवन के कई अर्थ और आयामों को आलोकित कर सके। एक आदर्श एवं सार्थक लघुकथा में क्षण का चित्रण होता है। काल की न्यूनता उसे सार्वकालिक बना दे सकती है।

लेकिन पृष्ठ भूमि में घटित हो चुकी किसी घटना के चित्रण के बिना उचित प्रभाव संवेदन को क्या रेखांकित नहीं किया जा सकता। जिससे रचना के अपूर्ण रह जाने का खतरा स्वाभाविक है…। यहाँ फ्लैश बैक को एक सहज हल के रूप में में लाया जा सकता है…लेकिन उसी से यह प्रश्न भी उठ जाता है, क्या उससे रचना में सहजता, सरलता, ग्राह्यता और स्वभाविकता के चुक जाने पर वांछित प्रभाव उत्पन्न हो सकता है ? यदि फ्लैश बैक को स्वीकारा जा सकता है…तो उस रूप में उसकी अनिवार्यता क्यों…? यह रचनाकार पर निर्भर होना चाहिये…। विश्व लघु-कथा में काल के सन्दर्भ में कोई विशेष आग्रह नहीं दिखाई देता।

अगर लघुकथा में महीनों या वर्षो का कालानुक्रमिक बारीक अतिरंजित चित्रण सविस्तार किया जाये तो लघुकथा अपनी आकारगत विशिष्टता को खो देगी…उस रूप में महीनों या वर्षो का चित्रण अवश्य ही "कालदोष', के रूप में आयेगा…

आवश्यक स्थितियों में विस्तृत काल में फैले कथ्य को लघुकथा में समय परिवर्तन (अन्तराल) के संकेतों द्वारा संदर्भित व सूचित किया जा सकता है।

लघुकथा का आकार लघु है। इसलिये कथ्य के अनुसार समय के थोड़ा बड़े हिस्सों या बहुत फलक को बिना अतिरिक्त वर्णन या विवरण के सांकेतिक रूप से अपनी सृजनात्मक प्रतिभा से लघु कथा को अधिक सार्थक बनाया जा सकता है।

एक सशक्त एवं आदर्श लघु कथा जीवन-सन्दर्भो के क्षणांशों को सार्थक ढंग से प्रस्तुत करती हैं।

समीचीन : 12

लघुकथा में देशकाल या वातावरण की उपस्थिति कथानक और चरित्रों के अभीष्ट संवेदनात्मक लक्ष्य तक पहुँचने के लिये ही होती है न कि प्रकृति और बाह्य परिवेश के महज वर्णन के लिये।

कोई भी जीवन्त रचना जीवन से आत्यंकित रूप से जुड़ी होती है और जीवन देशकाल तथा परिवेश सापेक्ष होता है। किन्तु देशकाल या परिवेश का विस्तृत यथा तथ्य चित्रण लघुकथा के सन्दर्भ में वातावरण नहीं हो सकता और भी यह कि परिस्थिति देश, काल एवं परिवेशगत विवरण को ही वातावरण का पर्याय नहीं समझना चाहिये लघुकथा के सन्दर्भ में इनकी मूल प्रकृति भिन्न है। वातावरण का निर्माण कथानक के अनुसार ही किया जाता है जो उसके मूल भाव को अभिव्यक्त करने का साधन होता है।

लघुकथा के सभी अवयवों को कलात्मक रूप से जोड़ने, पात्रों की बाह्य एवं आंतरिक मन:स्थिति का विश्वसनीय चित्रण करने और कार्य एवं परिस्थितियों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिये वातावरण की आवश्यकता रहती है। परिवेश का गहन अध्ययन एवं सूक्ष्म आकलन लघुकथाकार के लिये आवश्यक है। लघुकथाओं में नियोजित घटनाओं, कार्य-व्यापारों का देशकाल सापेक्ष होना उसकी मूल संवेदनाओं को गहराने और उसमें प्रभावान्विति लाने में योग देता है···।

लघुकथा में वातावरण-सृष्टि के लिये सूक्ष्म सांकेतिकता, को आधार बनाया जा सकता है···। वैसे भी लघुकथा का जोर क्योंकि सूक्ष्मता पर है···वातावरण जैसे सूक्ष्म तत्व के लिये गहनता व तीक्ष्णता लिये होना और भी आवश्यक हो जाता है।

लघुकथा में वातावरण, देश काल की सूक्ष्म उपस्थिति या न्यूनता, लघुकथा सार्वकालिक व सार्वदेशिक व महत्व की रचना बना देती है···।

अन्य रचना प्रकार की तरह लघुकथा के शीर्षक पर प्रथमत: गौर किया जा सकता है···जैसे किसी मनुष्य की वैयत्तिक सत्ता के लिये उसका नाम महत्वपूर्ण होता है उसी प्रकार उतना ही बल्कि उससे भी अधिक लघुकथा के लिये शीर्षक होता है···लेकिन लघुकथा के शीर्षक में वर्ण्य-विषय मात्र की सूचना ही नहीं होती बल्कि कुछ विशेषताओं का होना भी आवश्यक है जिससे लघुकथा के सृजनात्मक सरोकारों को नये अर्थ दिये जा सके···शीर्षक विषयानुकूल, स्पष्ट, आकर्षक, अर्थपूर्ण, कलात्मक, संक्षिप्त हो ही, साथ ही साथ रचना के स्पष्ट वैचारिक स्तर को स्पष्ट कर उसे नये आयाम दे सके···क्योंकि लघुकथा में रचनाकार को अपना आशय विस्तार से वर्णन करने की अधिक छूट नहीं मिलती। इसलिये शीर्षक को एक शब्द (एकाधिक शब्दों में भी हो सकते हैं···) में अपने अभिप्राय का स्पष्ट संकेत कर देने में सक्षम होना चाहिये···। रचना का मूल भाव तो उसमें प्रतिबिंबित हो ही जाना चाहिये···साथ ही नये अर्थ भी निकलने चाहिये···।

समीचीन : 12

लघुकथा के सन्दर्भ में यह भी महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक रचना पर रचनाकार के व्यक्तित्व की छाप रहती है। इसी से भाषा शैली में विविधता आती है···प्रत्येक रचनाकार का अपना शब्द-चयन (या शब्द-ज्ञान) वाक्य-विन्यास, भाषा-सन्दर्भ, सामर्थ्य, चिन्तन और विवेचान होता है···(कथ्य के अनुसार भी रचना के शिल्प में विविधता आती है···)

संश्लिष्ट अभिव्यक्ति की सूक्ष्म व्यंजना हेतु रचनाकार को सशक्त भाषा की आवश्यकता होती है क्योंकि रचनाकार के आशय, अनुभूति या विचार को दूसरों तक सम्प्रेषित करने के लिये···भाषा एक अनिवार्य माध्यम है।

कथ्य के अनुरूप जीवन्त भाषा जो कि सहज, सरल, प्रवाहात्मक, आलंकारिक चित्रात्मक, प्रतीकात्मक, प्रभविष्णु, बिम्बात्मक, सांकेतिक हो जो कि कथ्य को प्रभावी और सहज ढंग से सम्प्रेषित कर सके।

भाषा की दृष्टि से लघुकथा का घनत्व इतना अधिक होता है, और शब्दों की मितव्ययता इतनी अधिक सही और पूर्ण होती है कि बिना किसी वर्णन-विवरण फैलाव या बिखराव के अपनी प्रभावोत्पादकता खोये बिना कुछ ही शब्दों में लघुकथा कथ्य को संप्रेषित कर जाती है।

लघुकथा में गहन आंतरिक संवेदना समकालीन जीवन-सत्यों के अनुरूप जीवंत स्थितियों को समेटने एवं चित्रण करने वाली भाषा की जरूरत होती है। लघुकथा में एक-एक शब्द का अपना महत्व होता है। इसके अतिरिक्त एक–एक शब्द के अर्थों, शक्ति और सौन्दर्य की परख कर, काट-छाँट और तराश की एक विशिष्ट प्रक्रिया है। लघुकथा में बोलचाल की भाषा भी अपने विशेष अंदाजेबयाँ के साथ आती है जो कि अर्थपूर्ण पात्रानूकुल होनी चाहिये।

लघुकथा में घटनाओं और मानवीय स्थितियों का निरूपण और संयोजन बिना इधर-उधर की बात किये और कोई वर्णन या विस्तार दिये न्यूनतम शब्दों में ही स्थितियों के महज प्रत्यक्षीकरण व मानवीय संवेदना को व्यंजित करने के माध्यम से किया जाता है।

न्यूनतम शब्दों में लघुकथा की मूल संवेदना को वहन करने और कथ्य और शिल्प को बांधने के लिये निश्चय ही अपेक्षाकृत अधिक सशक्त एवं सृजनात्मक भाषा की जरूरत होगी, जिसका एक-एक शब्द, एक-एक वाक्य अतिरिक्त कारीगरी, मंजाव और कुशलता की मांग करता है।

लघुकथा में नाटकीय लहजों, विशेषणधर्मी बड़बोले वाक्यों, आरोपित सन्दर्भों, कृत्रिम या दुरूह शब्दों से परहेज रहता है···

कम से कम शब्दों में अभिप्राय: को कह डालने का लेखकीय सामर्थ्य लघु-कथाकार में होना चाहिये। लघुकथा की भाषा अन्य रूपों की विकसित हदों से थोड़ा और आगे निकलती दिखाई देती है। भाषा के नये रंगों और रूपों की बुनावट

और सजावट रचनाकारों की प्रतिभा पर निर्भर करता है। ऐसी अनेक उत्कृष्ट लघुकथाओं के उदाहरण दिये जा सकते हैं।

निश्चित रूप से लघुकथाकार किसी घटना का वर्णन करने के लिये नहीं बल्कि जीवनगत किसी सत्य को उद्घाटित करने के लिये रचना में प्रवृत्त होता है।

लघुकथा के अन्त में उद्देश्य की घोषणा न कर दी जाये बल्कि स्थितियों का विन्यास इस प्रकार से हो कि···अपने आप इसकी गति एक परिणाम, विचार या अर्थ की ओर पहुँचे···।

यह रचनाकार की सृजनात्मक प्रतिभा पर भी निर्भर करता है कि वह किस प्रकार अपनी बात शुरु करता है···और कहाँ खत्म···। रचना का आरम्भ बिन्दु या चरम सीमा की स्थिति का निर्धारण लघुकथा की कथ्यात्मक अपेक्षाओं के दबाव पर निर्भर करता है।

अन्य विधाओं की तुलना में लघुकथा में लम्बी-चौड़ी भूमिकायें बाँधने के लिये अवकाश नहीं रहता। लघुकथाकार अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये क्षिप्र गति··· से लघुकथा का आरम्भ करता है···जिसके कुछ विशेष निर्धारित नियम नहीं हैं··· अप्रत्याशित, चित्र, विधानात्मक, सूचनात्मक, घटनात्मक, आकर्षक तथ्यपूर्ण, कलात्मक शुरूआत एक अच्छी लघुकथा के लिये आदर्श हो सकती है।

रचना का समूचा प्रभाव उसके अन्त पर ही निर्भर करता है। समकालीन लघुकथा के अन्त में उपसंहार नहीं दिया जाता और न किसी समस्या का समाधान ही सुझाया जाता है। अन्त के इस बिन्दु पर आ कर लघुकथा के सारे संकेत स्पष्ट हो जाने चाहिये। अधिकांशतः लघुकथाओं का अन्त चरम सीमा पर ही कर दिया जाता है और उसके परिणाम को लेखक पाठक के अनुमान पर छोड़ देता है। कई आकस्मिक और अप्रत्याशित अन्त वाली लघुकथायें भी लिखी गई हैं। लघुकथा का अन्त तीव्रतम, गहनतम, तीक्ष्णतम स्थिति पर लाकर, अपना आशय या अभिप्राय स्पष्ट कर देता है···।

कई लघुकथाओं में अन्तिम वाक्य रचना की मूल संवेना को बड़े मार्मिक ढंग से कह जाने के लिये किसी पात्र के संवाद के रूप में भी आ सकता है जो कि मानवीय सत्य को उद्घाटित कर जाता है।

किसी जटिल समस्या से प्रेरित होकर लघुकथाकार सृजन में प्रवृत्त होता है। लघुकथा किसी भयावह संकट, जटिल समस्या, संश्लिष्ट जीवन, विकृत मानवीय स्थितियों···विषाक्त, युगीन स्थितियों की यथार्थ प्रतीति से अवश्य ही जुड़ी होती है। इस यथार्थ प्रतीति को एक सार्थक लघुकथा एक सुस्पष्ट वैचारिक स्तर तक ले जाती है। सही सुस्पष्ट वैचारिक स्तर का निर्माण ही लघुकथाकार का उद्देश्य होना चाहिये। इसी सुस्पष्ट वैचारिक स्तर में ही उक्त समस्याओं और उससे संघर्षों के

चित्र आ सकते हैं। सायास प्रस्तुत किये गये समाधान लघुकथा के सन्दर्भ में बेमानी कहे जायेंगे।

गम्भीर विचार और तीखे द्वन्द्व-दंश वाली अपनी सृष्टि में संश्लिष्ट लघुकथा पाठक को अधिक दायित्वपूर्ण और समझने-सोचने और विचारने को विवश करती हैं। अपनी सृजनात्मकता में उत्कृष्ट एवं जीवन के गहन गम्भीर सत्य से युक्त लघु-कथा पाठक को अधिक समझदार, सजग, सचेत और सतर्क करती है।

मानव की समस्याओं के स्रोतों और उसके परिवेश में सही अन्विति और सही इजहार देने वाली लघुकथा पाठक को उसकी पठन क्रिया के दौरान समझने और बाद में सोचने विचारने के लिये उकसाती है। उसके लिये महज दिशा निर्देशक चिह्न के अतिरिक्त व्यंजक संकेत के रूप में आती है।

लघुकथा में जीवन के तीव्र द्वन्द्व-दंश, गहन गम्भीर अर्थ, तीक्ष्ण सूक्ष्म अंश, युग सत्यों या तीव्र-तीक्ष्ण प्रश्नों की हैसियत को रेखांकित किया जाना चाहिये जो कि पाठक को उसके अपने प्रश्न, समस्यायें या द्वन्द्व प्रतीत हों…।

अपने परिवेश से लघुकथाकार एक अत्यन्त जटिल-सी समस्या को उठाता है, और उसकी समग्र जटिलता, दुरूहता और भयावहता को मानवीय संवेदना से जोड़ता है और एक मानवीय आवेग उत्पन्न करता है।

मौजूदा समस्याओं से जूझते हुये पात्र के जरिये लघुकथाकार एक दृष्टिकोण विकसित करता है परिणामतः विशिष्ट विचार-सृजन में रेखांकित हो पाते हैं, जो कि समस्या के समाधान में सहायक हो सकते हैं। लघुकथा में उद्देश्य की प्राप्ति प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष होती है। समस्याओं का निदान करना लघुकथा में विशेष अर्थ-रखता है।

भीषण रुग्णता और उसके व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का विभिन्न कोणों और पार्श्वों से निदानात्मक दृष्टि से रूपायन लघुकथा में किया जाता है। यानी समस्याओं को मूर्तरूप में खड़ा करने में ही लघुकथा की सोद्देश्यता हो सकती है………।

रचनाकार अपनी सृष्टि का मालिक होते हुये भी न्यायाधीश या निर्णायक नहीं हो जाता। अपनी विशिष्ट समझ के बावजूद उसके सुझाये हुये समाधान वैयक्तिक, सीमित, इकहरे, तात्कालिक और बेअसर हो सकते हैं।

पात्रों के समग्र संघर्ष के सहज स्वाभाविक परिणाम भी रचना में रूपायित हो सकते हैं। व्यक्ति के इकाई रूप होने से व्यक्ति की समस्या और उसके संघर्ष को मानवीय संवेदना के मूर्तरूप में लाने की प्रक्रिया ही लघुकथा की सृजन प्रक्रिया होगी।

लघुकथा में नये दृष्टिकोणों, भावभूमियों, विषयों, विचारों और प्रयोगों के संप्रेषण के लिये नये शिल्प-रूपों को बराबर खोजा जाता रहा है और उन्हें स्वीकृति भी मिलती रही है। परिणामतः लघुकथा का परिदृश्य व्यापक और विविध होता जा रहा है।

कहा जा सकता है कि लघुकथा का कथ्य, वस्तु, घटना चरित्र या वातावरण में से किसी एक को नहीं बल्कि उनका मिला-जुला स्वरूप सम्पूर्ण संवेगों और सम्पूर्ण चेतना को एकोन्मुख बना देता है।

लघुकथा में सूक्ष्म संदर्भों की खोज से गद्य साहित्य में सूक्ष्म अभिव्यंजना और सूक्ष्म सत्यों के उद्घाटन हुये हैं। लघुकथा अपने लघु विस्तार में ही जीवन की व्यापक विराटता को प्रस्तुत करती है।

युगीन सन्दर्भों के साथ-साथ अपने कथ्य और शिल्प को तराशते, संवारते जाना लघुकथा ही नहीं किसी भी साहित्यक विधा की जीवंतता एवं सार्थकता का परिचायक है।

प्रतिभाशील लेखक पूर्वनिर्मित मान्यताओं को तोड़ कर नयी जमीन तैयार करते हैं। संप्रेषण की चुनौतियों से जूझता हुआ रचनाकार पूर्व निर्मित कथारूढ़ियों को तोड़ता रहता है।

अत्याधिक आग्रहों को लघुकथा पर आरोपित कर के उस की मूल संवेदना को खण्डित करना उचित नहीं कहा जा सकता। आरोपित आग्रहों को लघुकथा से जोड़ना उसकी सृजनात्मक सामर्थ्य, सार्थकता और सम्भावना पर अंकुश लगाने जैसा है।

कोई भी रचना किसी भी प्रकार की औपचारिकताओं और आग्रहों के के अधीन नहीं होती। क्योंकि लघुकथा का सम्बन्ध मानवीय संवेदनाओं से है, और मनुष्य का ज्यों-ज्यों मानसिक विकास होता चला जायेगा उसके अभिव्यक्ति रूपों में भी परिवर्तन होता चला जायेगा।

लघुकथा की सृजनात्मक सामर्थ्य, सार्थकताओं और संभावनाओं को परखते हुये हम कह सकते हैं कि मानव मात्र की बेहतरी के लिये समय के समक्ष प्रस्तुत समस्याओं के मूल स्रोतों को ढूँढ़ने और उसे उत्पन्न करने वाले कारणों को तलाशने में यानी परिवर्तन की सहायक शक्ति के रूप में लघुकथा का उपयोग अधिक कारगर सिद्ध हो सकता है।

—1600|114, त्रिनगर,
दिल्ली—110035

॥ ४ ॥

□ डॉ० कमल किशोर गोयनका

लघुकथा : कुछ विचारणीय प्रश्न

आज लघुकथा हिन्दी की सबसे अधिक चर्चित एवं विवादास्पद साहित्यिक विधा है, इसे संभवतया वर्तमान समय की सभी पीढ़ियों के लेखक निस्संकोच स्वीकार करेंगे। जब भी साहित्य में कोई नई विधा जन्म लेती है और कुछ कदम आगे चलकर अपना रूपाकार चुनती और बनाती है तो परम्परागत विधाओं के लेखक तथा समीक्षक उसे हेय दृष्टि से देखने के साथ या तो उपेक्षणीय समझते हैं अथवा उस पर ऊलजलूल आरोप लगाकर उसे सदैव के लिये सुला देना चाहते हैं। इसके विपरीत नई विधा के नये लेखक नये उत्साह में होते हैं और वे परम्परागत विधाओं की कला-श्रेष्ठता को ध्वस्त करके अपनी नयी विधा को नये युग का प्रतिबिम्ब तथा सबसे अधिक शक्तिशाली, जीवंत एवं युगधर्मी विधा के रूप में स्थापित करने का प्रयास करते हैं। लघुकथा के साथ ऐसा ही हुआ है और सच बात यह है कि हिन्दी में ऐसा

पहली बार नहीं हुआ है। आधुनिक हिन्दी कविता, उपन्यास, कहानी तथा नाटक आदि का जिन्होंने उद्‌भव और विकास का इतिहास पढ़ा है, वे जानते हैं कि जब भी नयी पीढ़ी ने कुछ नया करके विधा को नया रूप देने का प्रयत्न किया है, तब ही नवोन्मेषी प्रतिभाओं को कठिन विरोध का सामना करना पड़ा है, लेकिन इस इतिहास का यह भी सत्य है कि युवा प्रतिभाओं ने अपनी क्षमता, मौलिकता, जीवन्तता तथा युगधर्मी अन्तश्चेतनासे इन व्यवधानों, बाधाओं को हटाकर अपने साहित्य के द्वारा साहित्य को नयी दिशाओं की ओर उन्मुख किया है। जीवन के समान साहित्य में भी युवापीढ़ी को नवीन और मौलिक कार्य करने से नहीं रोका जा सकता। यदि ऐसा हुआ तो साहित्य क्या मानव-जाति का विकास ही अवरुद्ध हो जायेगा। हमारे शरीर के लिये जैसे नित नये रक्त की आवश्यकता होती है, वैसे ही समाज और साहित्य-शरीर को भी नये विचार, नये चिन्तन, नये सन्दर्भ और नयी कलात्मक चेष्टाओं की आवश्यकता होती है। नवीनता समाज और साहित्य को गति प्रदान करती है और नयी पीढ़ी को सार्थक और अर्थवान बनाती है।

मेरे विचार में लघुकथा के चर्चित एवं विवादास्पद होने के मूल में एक बड़ा कारण यही था कि इसे पिछले दर्शक के युवा-रचनाकारों ने अपनी रचनाधर्मिता का मूलाधार बनाया और इसे स्थापित एवं स्वीकृत कराने में उसी प्रकार का प्रयास किया, जैसा उसके पूर्व युवा-पीढ़ियाँ साहित्य के मैदान में कर चुकी थीं। मेरा कहना यह है कि यदि आठवें दशक से पूर्व और उस काल-खण्ड में प्रौढ़ और वयोवृद्ध पीढ़ी के लेखकों ने लघुकथा को उचित प्रश्रय दिया होता, उसकी रचना की एक सशक्त परम्परा बना दी होती तो आठवें दशक में लघुकथा का ऐसा विस्फोट आन्दोलन आरम्भ नहीं होता और न वह इतनी चर्चित व विवादास्पद होती। हाँ, उसमें युगधर्म के अनुरूप विषय एवं शिल्प में परिवर्तन होता जो किसी भी विधा में काल के प्रवाह के साथ होते रहते हैं। लघुकथा के इस आन्दोलन के पीछे मुझे एक और कारण भी दृष्टिगत होता है। हम सब जानते हैं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी कहानी नयी कहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी, अकहानी, सक्रिय कहानी तथा कविता के क्षेत्र में अकविता आन्दोलन के उपरान्त साहित्याकारों में कुछ ऐसा वैक्यूम तथा शून्य छा गया कि किसी नये आन्दोलन की सम्भावना निर्मित होने लगी, किन्तु एक बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि जहाँ नयी कहानी तथा अकविता जैसे साहित्य-आन्दोलन अपने समय की साहित्यिक प्रवृतियों की प्रतिक्रिया से उत्पन्न अपनी-अपनी विधाओं को नयी दिशाओं की ओर उन्मुख करने वाले थे, वहाँ लघुकथा का आंदोलन उसे विधा के रूप में स्थापित तथा स्वीकृत कराने के मूल लक्ष्य को लेकर चल रहा था। इस प्रकार आठवें दशक का लघुकथा आन्दोलन इस अर्थ में विशिष्ट बन जाता है कि जिस रूप में लघुकथाकारों ने लघुकथा के अस्तित्व को स्थापित करने तथा उसे निरन्तर बलशाली, युगधर्म के अनुरूप एवं सन्दर्भों से परिपूर्ण

विधा बनाने का सफल प्रयत्न किया, वह साहित्य के इतिहास में एक अनूठा उदाहरण ही माना जायेगा। लघुकथा से पूर्व के साहित्य-आन्दोलन अपनी विधा को नयी गति दे रहे थे, उसे नया रूप दे रहे थे, जबकि लघुकथा-आंदोलन अपनी विधा को साहित्यिक मान्यता दिलाने के लिये उसके लेखक सामूहिक प्रयत्न कर रहे थे। इतनी बड़ी संख्या में, इतने एकमत से तथा इतनी विपुल रचनाओं के साथ पहली बार हिन्दी में कोई साहित्यिक-आन्दोलन हो रहा था, परन्तु यह निश्चय ही विचारणीय प्रश्न है कि जो परिणाम नयी कहानी, अकविता आदि आन्दोलनों के निकले, वे लघु-कथा को प्राप्त क्यों न हो सके ?

लघुकथा के उद्‌भव के सम्बन्ध में, जैसा कि अन्य आधुनिक विधाओं के सम्बन्ध में दृष्टिगत होता है, वैदिक काल से उसके आदि प्रेरणा-स्रोतों एवं उसकी परम्परा को खोजने का प्रयत्न किया गया है, लेकिन जैसा कि उपन्यास, कहानी आदि आधुनिक विधाओं के सम्बन्ध में सत्य है कि उनका वर्तमान विधागत रूप पश्चिम से आया है, वैसा ही लघुकथा के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है, क्योंकि हिन्दी कहानी का जिस कहानी से आरम्भ माना जाता है वह वास्तव में एक लघु कहानी ही है। हिन्दी की प्रथम कहानी के सम्बन्ध में यद्यपि पर्याप्त विवाद है और 'रानी केतकी की कहानी', 'राजा भोज का सपना', 'इन्दुमती', 'ग्यारह वर्ष का समय', 'दुलाई वाली', 'प्रयणिनी परिणय' तथा 'एक टोकरी भर मिट्टी' आदि को प्रथम कहानी का गौरव दिया जाता है, किन्तु इसमें माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901) का दावा सबसे अधिक तर्क संगत एवं मान्य है। एक प्रकार से देखें तो यह हिन्दी की पहली लघु कथा भी है, क्योंकि इसका सम्वेद्य, आकार, घटना, चरित्र, तनाव, द्वन्द्व, परिणाम आदि लघु कथा के बहुत निकट है। केवल आकार की दृष्टि से देखें तो यह कहानी कुल 610 शब्दों की कहानी है, जो वर्तमान लघु कथा का ठीक आदि रूप है। यहाँ यह कहानी प्रस्तुत है। मूल रूप में यह कहानी 'छत्तीस गढ़ मित्र' मासिक में 1901 में छपी थी और फिर देवीप्रसाद वर्मा ने सारिका के फरवरी 1968 के अंक में 'हिन्दी की पहली कहानी : एक महत्वपूर्ण प्रश्न' लेख के साथ प्रकाशित करायी। कहानी इस प्रकार है—

एक टोकरी भर मिट्टी

लेखक : माधवराव सप्रे

किसी श्रीमान् जमींदार के महल के पास एक गरीब अनाथ विधवा की झोपड़ी थी। जमींदार साहब को अपने महल का हाता उस झोपड़ी तक बढ़ाने की इच्छा हुई। जमींदार ने बहुतेरा कहा कि अपनी झोंपड़ी हटा ले, पर वह तो कई जमाने से वहीं बसी थी। उसका प्रिय पति और इकलौता पुत्र भी उसी झोंपड़ी में मर गया था। पतोहू भी एक पाँच बरस की कन्या को छोड़कर चल बसी थी।

जब कभी उसे अपनी पूर्व स्थिति की याद आ जाती तो मारे दुख के फूट-फूट कर रोने लगती थी और जबसे उसने अपने श्रीमान पड़ौसी की इच्छा का हाल सुना, तब से वह मृत प्राय हो गयी थी। उस झोंपड़ी में उसका मन लग गया था कि बिना मरे वहाँ से वह निकलना ही नहीं चाहती थी। श्रीमान के सब प्रयत्न निष्फल हुये, तब वे अपनी जमींदारी चाल चलने लगे। बाल की खाल निकालने वाले वकीलों की थैली गरम कर उन्होंने अदालत से झोंपड़ी पर अपना कब्जा कर लिया और विधवा को वहाँ से निकाल दिया। बिचारी अनाथ थी ही। पास-पड़ौस में कहीं जाकर रहने लगी।

एक दिन श्रीमान झोंपड़ी के पास टहल रहे थे और लोगों को काम बतला रहे थे कि इतने में वह विधवा हाथ में एक टोकरी लेकर वहाँ पहुँची, पर वह गिड़-गिड़ाकर बोली कि 'महाराज अब तो यह झोंपड़ी तुम्हारी हो ही गयी है। मैं उसे लेने नहीं आयी हूँ। महाराज क्षमा करें तो एक विनती है।' महाराज के सिर हिलाने पर उसने कहा कि "जब से झोंपड़ी छूटी है, तब से मेरी पोती ने खाना पीना छोड़ दिया है। मैंने बहुत समझाया, पर वह एक नहीं मानती। यही कहा करती है कि अपने घर चल, वहीं रोटी खाऊँगी अब मैंने यह सोचा है कि इस झोंपड़ी में से एक टोकरी भर मिट्टी लेकर उसी का चूल्हा बना कर रोटी पकाऊँगी। इससे भरोसा है कि वह रोटी खाने लगेगी। महाराज कृपा करके आज्ञा दीजिये तो इस टोकरी में मिट्टी ले आऊँ।" श्रीमान ने आज्ञा दे दी।

विधवा झोंपड़ी के भीतर गयी। वहां जाते ही उसे पुरानी बातों का स्मरण हुआ और उसकी आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। अपने आन्तरिक दुख को किसी तरह सम्हालकर उसने अपनी टोकरी मिट्टी से भर ली और हाथ से उठाकर बाहर ले आयी। फिर हाथ जोड़कर श्रीमान से प्रार्थना करने लगी कि 'महाराज, कृपा करके इस टोकरी को जरा हाथ लगाइये जिससे कि मैं उसे अपने सर पर धर लूँ। जमींदार साहब पहले तो बहुत नाराज हुये, पर जब वह बार-बार हाथ जोड़ने लगी और पैरों पर गिरने लगी तो उनके मन में कुछ दया आ गयी। किसी नौकर से न कह आप ही स्वयं टोकरी उठाने को आगे बढ़े। ज्यों ही टोकरी को हाथ लगाकर ऊपर उठाने लगे, त्यों ही देखा कि यह शक्ति के बाहर है। फिर तो उन्होंने अपनी सब ताकत लगाकर टोकरी को उठाना चाहा, पर जिस स्थान पर टोकरी रखी थी, वहाँ से वह एक हाथ भी ऊँची न हुई। लज्जित होकर वह कहने लगे कि नहीं, यह टोकरी हमसे न उठायी जायेगी।'

यह सुनकर विधवा ने कहा, "महाराज नाराज न हों, आपसे तो एक टोकरी भर मिट्टी नहीं उठायी जाती और इस झोंपड़ी में तो हजारों टोकरियाँ मिट्टी पड़ी

हैं, उसका भार आप जनम भर क्यों कर उठा सकेंगे ? आप ही इस बात पर विचार कीजिये।

जमींदार साहब धन-मद से गर्वित हो अपना कर्त्तव्य भूल गये थे, पर विधवा के उपरोक्त वचन सुनते ही उनकी आँखें खुल गयीं। कृतकर्म का पश्चाताप कर उन्होंने विधवा से क्षमा मांगी और उसकी झोंपड़ी वापस दे दी। ●

यह कहानी एक निर्धन अनाथ विधवा की कहानी है। इसमें जीवन का हृदय-स्पर्शी यथार्थ, निर्धनता एवं शोषण से पीड़ित जनता, जमींदारों की अमानवीयता तथा मनोवैज्ञानिक हृदय-परिवर्तन, सहज-सरल भाषा आदि आधुनिक लघुकथा की चेतना का आदि रूप है। इस कहानी का मानवीय एवं सामाजिक सन्दर्भ, शोषण के विरुद्ध बोलने की शक्ति, आम आदमी का अपनी धरती से सम्बन्ध आदि प्रवृत्तियाँ हिन्दी कहानी को आधुनिक चेतना से परिपूर्ण करती हैं, और यदि इस लघुकथा से हिन्दी कहानी का भी आरम्भ माना जाता है तो इसमें लघु कथाकारों तथा समीक्षकों को क्या आपत्ति हो सकती है ? यह कहानी अपने आकार, एकोन्मुखता, मानवीय एवं सामाजिक आधार, शोषण का विरोध, धनी-निर्धन का वर्गीय अन्तर, मिट्टी से अपनत्व एवं अस्तित्व की सम्बद्धता तथा प्रभावन्विति के कारण हिन्दी की पहली लघु कथा मानी जानी चाहिये। इसे इस रूप में स्वीकृति देने पर हमें यह भी स्पष्ट होना चाहिये कि हिन्दी कहानी का आरम्भ भी प्राय इसी कहानी से माना जाने लगा है। अत: यदि हिन्दी कहानी तथा हिन्दी लघु कथा एक ही बीज तत्व से जन्म ले रहे हैं, तब इससे लघु कथा की न तो कोई हेठी है और न एक अलग विधा के बनने एवं विकसित होने के सत्य पर कोई आघात लगता है। हाँ, यहाँ एक आपत्ति हो सकती है कि यह कहानी एक लोक कथा पर आधारित है, लेकिन पाठक यह देखेंगे कि इसके लेखक माधव राव सप्रे ने अपनी मौलिकता एवं कल्पना से इसे एक मौलिक लघु कथा का संस्पर्श दे दिया है और वह पूर्ण रूप से हमारे आधुनिक जीवन को प्रतिबिम्बित करती है। वैसे भी, कहानी के लिये लोक-कथायें उतनी आवश्यक नहीं है, जितनी लघु कथाओं के लिये। मेरे विचार से लोक कथायें लघु कथा के लिये प्रेरणा–स्रोत एवं शक्ति–स्रोत हैं। लघु कथा वहाँ से ऐसी संजीवनी शक्ति प्राप्त करती रह सकती है, जिसका स्रोत कभी समाप्त नहीं होगा, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वह पुरानी बोध–कथाओं, धार्मिक-कथाओं, उपदेश पूर्ण–कथाओं, आश्चर्य जनक कथाओं के युग में लौट जायें। लघु कथा को अपने समकालीन मानवीय जीवन को केन्द्र में रखना अनिवार्य है, लेकिन उसे जीवन्त तथा प्रभावशाली रूप में अभि-

व्यक्त करने के लिये कहीं से और किसी भी प्रकार की सामग्री लेने में कोई संकोच नहीं होना चाहिये।

इस कहानी के उपरान्त प्रेमचन्द के आगमन तक कितनी लघु कथायें प्रकाशित हुई होंगी, यह खोज का विषय है, लेकिन प्रेमचन्द के सन्दर्भ से लघु कथा के सम्बन्ध में उनके योगदान को अवश्य ही रेखांकित करना चाहता हूँ। मैंने कई वर्ष पूर्व 'प्रेमचन्द्र—लघु कहानी के जनक' शीर्षक से एक लेख लिखा था, जिसे अब संशोधित करना चाहता हूँ। समय के साथ नये तथ्य सामने आने पर अपने निष्कर्षों बदलने में कोई संकोच नहीं होना चाहिये। माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' के प्राप्त होने पर प्रेमचन्द को लघुकहानी का जनक कहना सर्वथा अनुचित होगा, लेकिन यहाँ उनकी लघुकथाओं का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रेमचंद ने लगभग 300 कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें कम से कम सात लघुकथायें अवश्य ही प्राप्त होती हैं। इनमें से छह उर्दू में तथा एक हिन्दी में है। उर्दू में पहली लघुकथा 'दरवाजा' शीर्षक से 'अलनाजिर' के जनवरी 1917 के अंक में छपी थी। उसके उपरान्त उर्दू में 'बांसुरी' उर्दू मासिक 'कहकशां' के जनवरी 1920 'शादी की वजह' उर्दू मासिक 'जमाना' के मार्च 1927 तथा 'राष्ट्र का सेवक' 'बन्द दरवाजा' एवं 'देवी' उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेम चालीसी' के प्रथम एवं द्वितीय भाग में संकलित हैं और अमृतराय ने उनका हिन्दी लिप्यंतर (भाषा में यत्र-तत्र परिवर्तन के साथ) करके 'गुप्तधन'-2 में प्रकाशित किया। हिन्दी में उनकी 'मनोवृति' कहानी ऐसी है जो लगभग दो हजार शब्दो में लिखी गयी है। यह कहानी 'हंस' के मार्च, 1934 के अंक में छपी थी। ये कहानियाँ इसका प्रमाण हैं कि प्रेमचंद लघुकथा की विधा से परिचित थे और उन्होंने इसकी रचना करने का प्रयत्न भी किया। 'दरवाजा' एक ऐसी लघुकथा है जो दरवाजे पर लिखी गई है। इसमें दरवाजे के अनुभव, मान-सम्मान, सुख–दुख की कहानी है जो दरवाजे को पात्र बनाकर स्वयं उससे कहलायी गई है। अभी तक यह कहानी हिन्दी में अप्राप्य थी, किन्तु अब भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से शीघ्र प्रकाश्य पुस्तक 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' (खण्ड 1) में प्रकाशित हो रही है। 'बांसुरी' कहानी में कुल 85 शब्द हैं और यह भी उपर्युक्त पुस्तक में संकलित है। उर्दू कहानियों में 'राष्ट्र का सेवक' मैं यहां उद्धृत करना चाहता हूँ जो 'गुप्तधन'-2 के माध्यम से हिन्दी पाठकों तक पहुँच चुकी है—

राष्ट्र का सेवक

राष्ट्र के सेवक ने कहा, 'देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है नीचों के साथ भाई-चारे का सुलूक, पतितों के साथ बराबरी का बर्ताव। दुनिया में सभी भाई हैं, कोई नीच नहीं है, कोई ऊँचा नहीं।'

दुनिया ने जय-जयकार की—कितनी विशाल दृष्टि है, कितना भावुक हृदय!

उसकी सुन्दर लड़की इंदिरा ने सुना और चिंता के सागर में डूब गयी।

राष्ट्र के सेवक ने नीची जात के नौजवानों को गले लगाया।

दुनिया ने कहा, "यह फरिश्ता है, पैगम्बर है, राष्ट्र की नैया का खेवैया है।"

इन्दिरा ने देखा और उसका चेहरा चमकने लगा।

राष्ट्र का सेवक नीची जात के नौजवान को मन्दिर में ले गया, देवता के दर्शन कराये और कहा, 'हमारा देवता गरीबी में है, जिल्लत में है, पस्ती में है।'

दुनिया ने कहा, 'कैसा शुद्ध अंतःकरण का आदमी है! कैसा ज्ञानी!'

इन्दिरा ने देखा और मुस्करायी।

इन्दिरा राष्ट्र के सेवक के पास जाकर बोली, 'श्रद्धेय पिताजी, मैं मोहन से ब्याह करना चाहती हूँ।'

राष्ट्र के सेवक ने प्यार की नजरों से पूछा, 'मोहन कौन है?'

इन्दिरा ने उत्साह भरे स्वर में कहा, 'मोहन वही नौजवान है, जिसे आपने गले लगाया, जिसे आप मन्दिर ले गये, जो सच्चा, बहादुर और नेक है।

राष्ट्र के सेवक ने प्रलय की आँखों से उसकी ओर देखा और मुँह फेर लिया। ●

इस लघुकथा में कुल २१६ शब्द हैं तथा मेरे विचार में इसे एक श्रेष्ठ कलात्मक लघुकथा माना जा सकता है। इसके शीर्षक 'राष्ट्र का सेवक' में जो व्यंग्य है, वह लघुकथा में आद्योपांत विद्यमान है। साथ ही, यह लघुकथा एक युग के सत्य को अपने अन्दर समेटे हुये है। समाज में ऊँच नीच का भेद, नेताओं की अछूतोद्धार की चेष्टाओं में कथनी और करनी में अन्तर, राष्ट्र सेवकों का दोहरा चरित्र और खोखलापन, युवा पीढ़ी का अपने व्यवहार तथा क्रिया-कलाप से भेद भाव को मिटाते हुये पुरानी पीढ़ी की तुलना में ईमानदार होना आदि सामाजिक यथार्थ इस लघुकथा से साकार हो जाता है। यह लघुकथा दासत्य काल के एक वर्ग विशेष की मानसिकता को संक्षिप्त घटना एवं संवाद से उद्घाटित कर देती है और एक बड़े सत्य को पाठक के सम्मुख निरावृत्त कर देती है। यह लघुकथा सामाजिक उद्देश्य को सिद्ध भी करती है। पाठक इसे पढ़कर राष्ट्र सेवक का आलोचक तथा इन्दिरा एवं मोहन का समर्थक बन जाता है और उनके विजातीय विवाह को ऊँची तथा नीची जातियों के एकात्म के लिये उचित मानता है। इस प्रकार प्रेमचंद इस लघुकथा में समस्या के साथ उसके समाधान का मार्ग भी सुझाने का प्रयत्न करते हैं, यद्यपि कुछ पाठकों

की दृष्टि में यह समाधान उनके 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' के अनुरूप होने के कारण व्यावहारिक नहीं हो सकेगा, लेकिन इससे यह तो स्पष्ट ही है कि प्रेमचन्द मनुष्य-मनुष्य के भेद को समूल रूप से मिटाना चाहते थे और इसके लिये वे ऊँच-नीच के बीच वैवाहिक सम्बन्ध आवश्यक समझते थे।

'लघुकथा' में दो शब्द हैं–'लघु' तथा 'कथा', अर्थात ऐसी कथा जो लघु है। इस प्रकार लघुकथा का अभिप्राय हुआ "कथा का लघु रूप।" स्पष्ट है, लघुकथा में कथा अनिवार्य तत्व है, लेकिन उपन्यास, कहानी आदि की तुलना में इसका रूपाकार लघु होगा। लघु का रूप शब्द-संख्या के आधार पर ठीक-ठीक निर्धारित नहीं किया जा सकता कि लघुकथा में ४०० से अधिक शब्द नहीं होने चाहिये या उसकी अधिकतव शब्द संख्या २००० शब्द है। 'लघु' का अर्थ यह है कि वह कहानी की तुलना में निश्चय ही ऐसी विधा है जिसका आकार लघु है और लघु आकार के लिये उसकी कथा का लघु होना अनिवार्य है, क्योंकि कथा की लघुता की प्रमुख रूप से 'लघुकथा' को एक विशिष्ट कथागत विधा का स्वरूप प्रदान करती ह। अब प्रश्न यह है कि लघुता का भी कोई रूप होगा कि नहीं? मेरे विचार में 'लघुकथा' की लघुता उसकी निकटतम विधा 'कहानी' को समक्ष रखकर ही तय की जा सकती है, क्योंकि 'लघुकथा' उपन्यास से नहीं बल्कि कहानी से ही स्वयं को अलग करती हुई एक स्वतन्त्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित एवं सम्मानित होना चाहती है। अब देखें, कहानी का अपना आकार क्या है? क्या उसकी शब्द-संख्या की सीमा निर्धारित है? हम सभी जानते हैं कि ऐसा अभी तक नहीं हो पाया है और भविष्य में भी 'कहानी' की शब्द-संख्या को ठीक-ठीक तय करना कठिन है, क्योंकि साहित्य व्यापार की तरह नहीं चलता, जहाँ धन का लेन-देन संख्या में निर्धारित होता है और न साहित्यशास्त्र के नियमों के अनुसार सदैव साहित्य को रचा जा सकता है। साहित्य-शास्त्र निर्मित होता है और फिर खण्डित होता है, फिर बनता है और पुनः खण्डित होता है और यही क्रम चलता रहता है। अतः लघुकथा की शब्द संख्या को जिन्होंने ठीक-ठीक निश्चित करने का प्रयत्न किया है, वह देख सकते हैं कि लघुकथाकारों ने उसकी उपेक्षा ही की है, क्योंकि शब्दों की सीमा में बंधकर साहित्य-सृष्टि कला का रूप ग्रहण नहीं कर सकती, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि लघुकथा को कहानी बन जाने देना है। यदि वह लघुकथा है तो उसे लघुकथा के रूपाकार में ही रहना होगा और इसके लिये उसे कहानी की तुलना में लघु रूप में ही अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाकर चलना होगा। उसकी यह सत्ता किसी भी कहानी के सामान्य आकार से आधे से अधिक कतई नहीं होनी चाहिये, लेकिन इसकी लघुतम सीमा भी क्या निर्धारित नहीं होनी चाहिये? मेरे विचार में न तो लघुकथाकारों ने और न समीक्षकों ने लघुकथा के लघुतम स्वरूप पर विचार किया, जिसके कारण दो–चार पंक्तियों के

चुटकुले, मिनी-कथन भी लघुकथा के नाम से बराबर छपते चले आ रहे हैं। लघुकथा की प्रतिष्ठा एवं विधा के रूप में स्वीकृत होने में एक बड़ी बाधा यह रही है कि दो पंक्तियों के संवाद, चुटकलों, परिहास, विनोद-उक्तियों आदि को भी लघुकथा की संज्ञा के साथ प्रस्तुत किया जाता रहा है। मेरे विचार में लघुकथा को ऐसी अराजकता, ऐसी मनमानी, ऐसी घोषणाओं से स्वयं को बचाना होगा और अपने विधागत स्वरूप की रक्षा करने के लिये सभी प्रकार की बचकानी हरकतों पर अंकुश लगाना होगा। अब स्थिति यह है कि जिसे कलम पकड़ने की तमीज नहीं है, वह भी सुने-सुनाये चुटकले को लघुकथा का तावीज पहनाकर बजरबट्टू की तरह पेश कर देता है और आफत की मारी लघु-पत्रिताएँ उन्हें छाप भी देती हैं और वह कलम बहादुर स्वयं को एक लघुकथाकार घोषित कर देता है। आज ऐसे लघुकथाकारों की ऐसी फसल उग आयी है, जिसे काटकर साफ करना कठिन हो रहा है। यह फसल न केवल भूमि की उर्वरा शक्ति कम कर रही है, बल्कि अपने झाड़-झंकार में लघुकथा के वास्तविक पौधों की प्राण-शक्ति को सोखते हुए उसे छिपाकर-दबाकर मार देना चाहती है। जो लघुकथाकार, पत्रिकाओं के सम्पादक, समीक्षक या पाठक लघुकथा को फलते-फूलते देखना चाहते हैं, उन्हें लघुकथाओं के ढेर में से वास्तविक लघुकथाओं को चुनकर शेष को भूसे के समान फटकार कर फेंक देना होगा। जब तक यह नहीं होगा, लघुकथा की वास्तविक रूपाकृति, उसकी ऊर्जा और शक्ति, तथा उसका तेजस्वी अस्तित्व स्थापित नहीं हो पायेगा।

मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि लघुकथा में जैसी आपाधापी, अराजकता तथा भीड़-भाड़ है, वैसी हिन्दी में किसी विधा के साथ नहीं रही। काव्य में महाकाव्य, खण्डकाव्य, लम्बी कविता, कविता, गीत, दोहा आदि का अन्तर बिल्कुल स्पष्ट रहा है और वहाँ दोहा को लम्बी कविता में सम्मिलित करने की कोई सम्भावना नहीं है। इसी प्रकार गद्य में भी उपन्यास, लघु-उपन्यास, लम्बी कहानी: कहानी की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है और एक विधा के दूसरी में प्रवेश की सम्भावना अत्यल्प है, लेकिन लघुकथा में विधा की पवित्रता एवं उसकी स्वतन्त्र सत्ता को बनाये रखने का कोई प्रयत्न दृष्टिगोचर नहीं होता। इसमें गद्य में लिखी कोई भी लघु-रचना सम्मिलित होने का गौरव प्राप्त कर सकती है। मेरे विचार में लघुकथा से गद्य की अन्य लघुविधाओं से भी अन्तर पूर्णतः स्पष्ट होना चाहिये और यह किसी भी प्रकार के मोह, पक्षपात एवं दुराग्रह से मुक्त होना चाहिए। मेरे विचार में इस इस पर अंकुश रखने का एक आधार हो सकता है, यदि हम लघुकथा में कथा की अनिवार्य सत्ता को स्वीकार कर लें। जब लघुकथा में कथा होगी, चाहे वह लघु ही हो, तो उसे चुटकुलों, हास-परिहास आदि से स्वतः मुक्ति मिल जायेगी और वह एक कथात्मक विधा, अर्थात अपने कथा-कुल की वास्तविक सन्तान बनकर पाठकों के बीच अपनी स्वतन्त्र सत्ता बना सकेगी।

समीचीन : 12

लघुकथा की विचार–गोष्ठियों, लेखों आदि में बार-बार यह चर्चा की जाती है कि वरिष्ठ एवं प्रतिष्ठित, लेखकों को भी लघुकथा–लेखन की ओर प्रवृत्त होना चाहिये। इस मांग के पीछे कई कारण हैं। एक तो यही कि वरिष्ठ लेखकों की लघु कथाओं से लघुकथा समृद्ध होगी तथा उसकी प्रतिष्ठा में मदद मिलेगी। दूसरे, वरिष्ठ लेखकों द्वारा इसे अपेक्षणीय विधा समझनेका दुराग्रह टूटेगा, लेकिन मेरे विचार में इसमें एक और बात छिपी हुई है, जिस पर प्रत्येक लघुकथा को गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिये। असल में यह मांग उन वरिष्ठ लेखकों से ही है जो महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, आदि लिखते रहे हैं, अर्थात अन्य विधाओं में जिन्होंने श्रेष्ठ रचनायें दी हैं, उन्हें भी लघुकथायें लिखनी चाहिएँ। मैं यही मांग लघुकथाकारों से करना चाहता हूँ कि उन्हें लघुकथा तक ही सीमित न रहकर अन्य विधाओं में भी कलम उठानी चाहिये, क्योंकि काव्य, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं में रचना करके वे जीवन को भिन्न एवं व्यापक दृष्टिकोण से न केवल ग्रहण करेंगे, बल्कि अभिव्यक्ति की भिन्न–भिन्न शैलियों से अवगत होकर लघुकथा में उनका सफल प्रयोग कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त वह रचनाकार श्रेष्ठ माना जाता है जो जीवन की व्यापकता के साथ जीवन की सूक्ष्मता का चित्रण करता है। लघुकथा में प्रायः जीवन की सूक्ष्मता एवं महत्व का उद्घाटन होता है। यदि लघुकथाकार जीवन को व्यापक धरातल पर भी ग्रहण करने का अभ्यासी है तो वह जीवन के लघु रूप को अधिक कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता विकसित कर सकता हैं और उसके लिये लघुकथा एक चेलैंज बन सकती है, क्योंकि जीवन को रूप देना या लघु रूप की कलात्मक रूप देना दोनों ही कलात्मक श्रेष्ठता के बिना सम्भव नहीं है। जो लघुकथाकार केवल लघुकथा तक ही सीमित रहते हैं, वे अपने को एक दायरे में बन्द कर लेते हैं और उससे उनकी रचनाधर्मिता भी सीमित होकर रह जाती है, जो लघुकथा के हित में नहीं है। यदि हम साहित्य का इतिहास देखें तो कबीर, सूरदास, बिहारी, गालिब जैसे कम ही रचनाकार मिलेंगे जिन्होंने काव्य के सबसे छोटे छन्द में लिखकर बड़ा यश प्राप्त किया हो। ये साहित्यकार अपवाद ही माने जा सकते हैं, जबकि इसके विपरीत ऐसे अनेक यशस्वी लेखक मिलेंगे, जिन्होंने अनेक विधाओं को अपनी सर्जनात्मकता का आधार बनाया हो। अतः लघुकथाकारों को अन्य विधाओं में भी पूरा जोर आजमाना चाहिये और अपनी रचनाधर्मिता को विस्तार देना चाहिये। लघुकथा तो उनकी अपनी ही है। दूसरी विधाओं में कलम चलाने का लाभ, वे देखेंगे लघुकथा को अवश्य ही मिलेगा।

लघुकथा की परिभाषा को लेकर कई लघुकथाकारों तथा समीक्षकों ने बड़ा परिश्रम किया है, लेकिन इसकी अभी तक कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकी है। असल में यह अभी तक यह सम्भव भी नहीं है। साहित्य में जो विधा अभी युवा

भी न हो पायी है, उसे परिभाषा में बांधना उचित नहीं है और वैसे भी विधाओं की क्या कहें, साहित्य की कोई भी सर्वमान्य, सर्वस्वीकृत परिभाषा नहीं दी जा सकी है। भारतीय काव्य-शास्त्र इसका प्रमाण है कि प्रत्येक आचार्य ने काव्य की परिभाषा को बदलकर अपनी नई परिभाषा दी है, और यह क्रम शताब्दियों तक चलता रहा है। आधुनिक काल में जिस प्रकार मानवीय परिस्थितियां बदली हैं, वैसे ही साहित्य की परिभाषा भी बदली है। प्रेमचन्द ने अपने एक लेख में साहित्य को परिभाषित करते हुये लिखा है कि साहित्य जीवन की आलोचना है मुझे आज भी यह परिभाषा सबसे उपयुक्त लगती है। अतः यदि मुझे लघु कथा की परिभाषा देनी ही हो तो मैं कहूँगा कि लघुकथा जीवन की आलोचना है। मेरे विचार में इसकी यही सबसे उपयुक्त परिभाषा हो सकती है। लघुकथा की जो परिभाषाएँ दी गई हैं, उनमें प्रायः लघुकथा की विशेषताओं तथा उपकरणों को गिनाने की चेष्टा अधिक है, उसकी मूल आत्मा को पकड़ने की कम। असल में लघुकथा भी साहित्य की एक विधा है और उस पर भी साहित्य के सभी सामान्य नियम लागू होते हैं। यह ठीक है, वह एक स्वतन्त्र विधा है, परन्तु है तो वह साहित्य की ही न, तब वह साहित्य की मूल प्रवृत्तियों से स्वयं को मुक्त नहीं कर सकती। कुछ लघुकथाकारों तथा उनके समीक्षकों ने लघुकथा की संवेदना एवं शिल्प के सम्बन्ध में ऐसे नियमों की कल्पना करली है कि उनका प्रयास हास्यास्पद बनकर रह गया है। प्रत्येक लघु कथाकार अपनी ओर से कोई नई अनिवार्यता जोड़ देता है और अन्यों से आशा करता है कि वे उसका पालन करें। लघुकथाकारों के ऐसे प्रयासों ने भी लघुकथा को अपयश ही दिलाया है और 'अपनी—अपनी ढपली अपना—अपना राग' जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी है। यह स्थिति तब है, जब लघुकथाकारों ने अनेक बार साथ-साथ विचार-विमर्श किया है और एक जुट होकर लघुकथा—आन्दोलन को अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाने का व्रत लिया है, लेकिन लघुकथाकारों को दस-बीस लघु कथा लिखकर प्रतिष्ठित होने की इतनी जल्दी है कि वे अपने बचकाने प्रयासों से न केवल स्वयं हास्यास्पद बनते हैं, बल्कि लघु कथा-आन्दोलन को भी बदनाम करते हैं। मेरे विचार में इसके लिये लघु-पत्रिकाओं के सम्पादक सबसे अधिक उत्तरदायी हैं जो किसी भी चुटकुले, रिर्पोटिंग, घटना, पहेली आदि को लघु कथा का शीर्षक देकर छाप रहे हैं कुछ जिम्मेदारी प्रतिष्ठित लघु कथाकारों की भी है जो ऐसी लघु कथाओं की भर्त्सना करने से कतराते रहे हैं।

लघु कथा जैसा मैंने ऊपर कहा है, जीवन की आलोचना या व्याख्या है। मानवीय जीवन इसका उत्स बिन्दु ही नहीं है, बल्कि इसके बीज से वृक्ष बनता है, उस पर जो फूल-पत्तियाँ जन्म लेती हैं, वे सब मानव मानव-जीवन को स्थापित करती हैं। लघु कथा मानव-जीवन से ओत-प्रोत है, उसे आत्मसात किये है, उसका वास्तविक

प्रतिबिम्ब है। मानव–जीवन की सभी परिस्थितियां, उसके संकल्प–विकल्प, तनाव–संघर्ष, सत्य–असत्य, नीति–अनीति, दमन–शोषण एवं विद्रोह सभी लघुकथा के विषय हो सकते हैं। लघुकथा महाकाव्य तथा नाटक के समान जीवन के किन्हीं विशिष्ट पक्षों तथा क्रिया–कलापों से बन्धी नहीं है, वह तो हर उस क्षण, हर पल, अनुभव तथा मानवीय चरण की कथा कह सकती है जो इस धरती पर क्या ब्रह्माण्ड के किसी भी ग्रह पर मनुष्य द्वारा रखे गये हों। मनुष्य जहाँ–जहाँ है, चाहे वह धरती पर है या समुद्र की अतल गहराइयों में अथवा महाशून्य आकाश में, वहाँ–वहाँ की कथात्मक सम्वेदना लघुकथा का विषय हो सकती है। इसलिये यदि आप लघुकथा-कार से केवल भोगा हुआ सत्य ही देने की मांग करते हैं, तो आप उसके रचनात्मक धरातल को बहुत सीमित कर देते हैं। इसलिये जब लकघुथा–लेखक लोककथाओं, मिथकों, पशु-पक्षियों, वृक्षों आदि माध्यमों से लघुकथा की रचना करता है, तब चाहे उसका सत्य केन्द्र में हो, जीवन सत्य अवश्य ही उसका प्रतिपाद्य होता है और मेरे विचार में लघुकथा की सबसे बड़ी कसौटी यही है कि क्या वह जीवन सत्य का उदघाटन कर सकी है ? जो लघुकथा जीवन सत्य को अभिव्यक्त करती है, चाहे वह लेखक के भोगे जीवन से भी न निकली हो, वह अवश्य ही साहित्य की स्थायी वस्तु है।

कुछ युवा रचनाकारों ने लघुकथा का शास्त्र बनाने का प्रयत्न किया है। इसके लिये परिचर्चाएं आयोजित की गयीं बैठकें हुईं; वक्तव्य प्रसारित हुये और प्रस्ताव पारित हुये और फिर लघुकथा का शास्त्र निर्मित हुआ। यह आधुनिक हिन्दी साहित्य में पहली बार नहीं हुआ था। छायावादी, प्रगतिवादी, नयी कविता तथा अकवितावादियों और नयी कहानी, अकहानीवादियों ने भी इस प्रकार के वक्तव्य दिये थे, लेकिन हम सब जानते हैं कि रचना अपने शास्त्र से अनुशासित नहीं होती। यह सच है कि कुछ लोग साहित्य शास्त्र बना सकते हैं परन्तु वे रचनाकारों को उन पर चलने के लिये विवश नहीं कर सकते। अतः लघुकथा को भी किसी शास्त्र में जकड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। शास्त्र प्रतिभाहीन लेखकों के लिये होता है, जो एक भीड़ की तरह प्रत्येक विधा के चरम विकास के दौर में एकत्र हो जाते हैं, अन्यथा प्रतिभावान लेखक परम्परागत शास्त्र का भंजन करके अपनी रचनाओं के द्वारा एक नये शास्त्र का निमःण करके अपनी रचना-विधा को विकास के नये मोड़ तक पहुँचा देता है। आज लघुकथा को ऐसे ही रचनाकारों की प्रतीक्षा है।

और अन्त में, कुछ लघुकथाकारों ने समीक्षकों की उदासीनता तथा अन्य अवरोधक शक्तियों की बार–बार चर्चा की है। मेरा उनसे निवेदन है कि समीक्षकों का दुराग्रह एवं उदासीनता से भयभीत तथा क्रुद्ध होने की आवश्यता नहीं है, क्यों कि साहित्य संसार में बार–बार ऐसा होता रहा है। यदि आप साहित्य का इतिहास

देखेंगे तो पायेंगे कि समीक्षकों ने कालजयी रचनाओं के साथ ऐसे अपराध किये हैं, लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिये कि कोई भी जनप्रिय विधा समीक्षकों की उदासीनता और किन्हीं साहित्यिक षड़यन्त्रों से मर नहीं सकती। लघुकथा को असंख्य पाठकों से प्राण-शक्ति प्राप्त होती है और अब वह इतनी ऊर्जावान एवं सशक्त हो चली है कि वह बड़ी शान से अवरोधों का मुकाबला कर सकती है। बस आवश्यकता इस बात की है कि लघुकथा-लेखक स्वयं अपनी लघुकथाओं के आलोचक बनें और श्रेष्ठ रचनाओं को ही प्रकाशनार्थ भेंजे तथा शीघ्र ही प्रतिष्ठित होने के चक्कर में न पड़ें। साहित्य एक साधना है और इस मैदान में उन्हें ही यश मिलता है, जो साधना की सीढ़ी पर चढ़कर ऊपर पहुँचते हैं।

—ए–98, अशोक विहार, फेज प्रथम,
दिल्ली–110052

●

॥ ५ ॥

□ रतीलाल शाहीन

आभास, सम्बद्धता और लघुकथा

कहावत है कि बहता हुआ पानी अपने लिये रास्ता बना ही लेता है उसके मार्ग में चाहे जितने रोड़े आएं, हिन्दी की लघुकथा भी बहते हुये पानी ही की तरह है लेकिन इसका बहाव अचानक तेज हुआ, यह तेजी इसके आंदोलनात्मक रूख अख्तियार कर लेने के कारण आई, इस अचानक आयी तेजी से लघुकथा ने अपने लिये रास्ता ही नहीं बनाया, पूरी नहर बना ली है और इस नहर में अब साफ पानी कम, मिट्टी, कचरा और गन्दगी ज्यादा बहने लगी है। यह सच्चाई धड़ाधड़ छपने वाले लघुकथा संग्रहों और लघुकथा-गोष्ठियों से उजागर होती है।

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य को एक अरसे तक केवल एक शैली के रूप में ही माना जाता रहा। अब व्यंग्य को भी एक विधा के रूप में माना जाता है। उसी ढर्रे पर 'लघुकथा' को भी मनवाया गया और लघुकथा को कहानी की शैली और

प्रकार न मानकर 'विधात्मक रूप' देने की हलचल को मान्यता मिली। और यह कहने में कोई संकोच नहीं कि आज लघुकथा एक विधा के रूप में सिर ऊँचा किये हुये खड़ी है।

यदि उपमा के आधार पर लघुकथा की व्याख्या की जाय तो कह सकते हैं कि उपन्यास एक बगीचा है, कहानी इस बगीचे का एक पौधा और लघुकथा इस पौधे का एक फूल, मगर अब फूल कम रहे, या तो बिना गंध वाले फूल इस विधा में मिलते हैं या फिर कांटे, इसी वजह से इस विधा के प्रति पाठकीय रुचि भी कम हुई है। देखा जाय तो किसी विचार, कथ्य या भाव को व्यंग्य, चुटीलेपन, तल्खी या झुंझलाहट से कम से कम शब्दों में व्यक्त करना ही लघुकथा का मूल उद्देश्य है। मगर हरेक विधा की सीमाएँ होती हैं। जिस प्रकार हर विधा की विशेषताएँ होती हैं, मगर हमारे लघुकथाकार भाई लोग यही बात भूल गये। व्यंग्य कविता केवल पुलिस, नेता, राजनीति और दंगे तक सीमित होकर रह गयी उसी प्रकार लघुकथा का भी हश्र हुआ, तो आप नयापन कहाँ से लायेंगे। एक बहुत नामी-गिरामी लघु-कथा की पत्रिका के संपादक की एक लघुकथा पढ़ने को मिली। आशय था कि दो बहनें हैं, एक विवाहित और दूसरी अविवाहित। विवाहित बहन के एक नवजात बच्चा है। वह बच्चे को घर में छोड़कर बाजार जाती है। अचानक दंगा हो जाता है। बच्चा दूध के लिये रोता है। छोटी बहन अपनी छाती बच्चे के मुँह में लगाकर दूध पिलाने लग जाती है। यह लघुकथा मन्टो की एक प्रसिद्ध कहानी का संक्षिप्तीकरण है। उस कहानी का कथ्य इस प्रकार है कि बहनें दो ही हैं। विवाहित बहन बाजार जाती है और उसका बच्चा रोने लगता है तो अविवाहित बहन अपनी छाती बच्चे के मुँह में देती है मगर दूध नहीं आता तो वह अपनी छाती काट देती है और कहती है कि, देखो तो, 'बच्चा रोये जा रहा है और छाती में दूध ही नहीं आ रहा है।' मगर नकल के लिये भी अकल चाहिये। हमारे नकलची लघुकथाकार को यह नहीं पता कि अविवाहित महिला की छाती में दूध नहीं आता। शादी होने के बाद जब महिला मां बनने वाली होती है तो आठवें या नवें महीने से छाती कड़क हो जाती है और उसमें से दूध फूटता है। कहने का आशय यह है कि वास्तविक धरातल को छोड़कर ख्याली पुलाव पकाने वाले इस विधा में ज्यादा पैदा हो गये हैं जिससे यह विधा अब अरुचि का शिकार हो गयी है। कम से कम शब्दों और जगहों में कोई बात कह दी जाती है तो उसे फैलाया क्यों जाय। आज का आदमी हर चीज में शॉर्टकट चाहता है। बड़ी पत्रिका के किसी संपादक ने अपनी कैंची चलाई और

न जाने किसकी कथा को दस पृष्ठों से काटकर आधे पृष्ठ की बना दी। वह हो गई लघु कथा। जो भी संपादन से जुड़े होंगे, मेरी बात से सहमत होंगे। बस लोगों ने सोचा, आसान तो है। सौ शब्दों मे लिख लो। चाहे चुटकुला ही क्यों न हो। मगर साहित्य में शार्टकट नहीं चलता। जो चलाते हैं वे शार्ट होकर रह भी गये हैं। लघु कथा इसी दोष की मारी हो गई है। केवल आभास से कोई चीज भासित नहीं होगी जब तक कि भासित तत्व गहराई तक पैठ कर न उकेरा जाय। गहराई में जाने पर कम से कम नहीं, अधिक से अधिक शब्दों का सहारा लेना होगा। कभी कथ्य तो कभी तथ्य, कभी शैली तो कभी अंदाजे-बयां ही किसी विधा की विशेषता होती है। वह चाहे कहानी हो, कविता या लघु कथा। मगर ढेरसारा थोक में लिखा जाएगा तो भूसा ज्यादा और अन्न का दाना कम ही निकलेगा। आचार्य चतुरसेन, रांगेय राघव, प्रेमचन्द और शरत बाबू से लेकर मन्टो तक ने खूब लिखा मगर उनके नाम एक-दो साहित्य मोतियों से चमके हैं। समुद्र के किनारे खड़े होकर लहरें गिनने वाले हमारे हिन्दी के साहित्य में ज्यादा लोग हैं। समुद्र के भीतर गहरे जाकर सीप, मोती, रेत आदि खंगालने वाले कम हैं। जो खंगालते हैं, वे दूर की कौड़ी ले भी आते हैं।

सबसे पहले किसने लघु कथा लिखी, इस बारे में मतभेद हैं, कुछ रावी को पहला लघु कथाकार मानते हैं तो कुछ किसी और को। लेकिन समाज में व्याप्त सड़ांध, अनैतिकता, वर्जना, अनाचार आदि को व्यंग्यात्मक, तीखेपन और सक्षिप्त रूप से लघु कथा प्रकट कर सकती है अगर कथाकार शैली और अनुभव से समर्थ और सक्षम है। चूँकि कम जगह में बात कही जा सकती है, पत्र-पत्रिकाओं ने भी इस विधा को आश्रय दिया। लघु आघात [संपादक–विक्रम सोनी], मिनीयुग [संपादक–जगदीश कश्यप] तारिक [संपादक–डा० महाराज कृष्ण जैन], क्षितिज [संपादक–सतीश राठी], अयन [संपादक–कमल चोपड़ा, चन्द्र प्रभा] सुपर–ब्लेज [संपादक कमलेश भारतीय, कुमार राज] आदि तो इस विधा के प्रति पूर्णतः समर्पित पत्रिकायें रही हैं, कथाबिंब, सारिका, पृष्ठभूमि, दिशा वीणा, विचार, सम्बोधन, ग्रहण, गायत्री संदेश, प्रगतिशील समाज, दिशा चिंतन, चम्बल पोस्ट, केशव प्रयास आदि कई पत्रिकाओं ने लघुकथा पर विशेषांक निकाले, समीक्षात्मक, मूल्यांकन-परक लेख भी दिये, विधा का आकलन भी करवाया, मिनीयुग ने तो चोरी करके लिखी गई कथा और मूल कथा को भी देकर टिप्पणी देने की अच्छी प्रथा डाली। कुछ लोग सर्वश्री रमेश बत्रा, बलराम, कमल चोपड़ा, विक्रम सोनी, बलराम अग्रवाल, सतीश राठी, पृथ्वी नाथ पांडेय, शमीम शर्मा, विकेश निझावन, राजकुमार निजात, सुरेन्द्र मंथन, सतीश राज पुष्करणा, राजकुमार चावला, हीरालाल नागर, मनीषराय यादव, नरेंद्र प्रसाद

नवीन, रमाकांत श्रीवास्तव, राजेन्द्र परदेशी, डा० सतीश चन्द्र, तारिक असलम तस्नीम, शंकर पुणतांबेकर, माधव नागदा आदि ने इस विधा पर काफी काम किया, अंकों के सम्पादन किये चर्चायें करवायीं।

"हस्ताक्षर" नाम से शमीम शर्मा ने एक डायरेक्टरी ही बना दी है इस विधा की। अजमेर की डा० शकुन्तला किरण ने सर्व प्रथम लघु कथा पर पीएच० डी० की। प्रा० कमलेश, शकील शर्मा, पृथ्वीराज अरोड़ा आदि भी लघु कथा पर शोध ग्रंथ प्रस्तुत कर चुके हैं। कहने का तात्पर्य, यह विधा अब अपनी ऊँचाइयों को छू रही है। मगर इसके आंदोलनात्मक रुख के कारण इसमें भी दलबंदियां और गलबहियां शुरू हो गई हैं। कुछ लोग एक लघु कथा और दस से लेकर सौ रुपये तक अंशदान लेकर संग्रह छपवा रहे हैं और स्वयं को मठाधीश सम्पादक बनाने और मनवाने पर तुले हैं। इधर एक गुट सतीशराज पुष्करणा है तो दूसरा विक्रम सोनी का। मगर डा० कमल चोपड़ा, विक्रम सोनी, सतीश राठी आदि ऐसे लोग हैं जो अब भी समर्पित भाव से इस विधा के प्रति निष्ठावान हैं। जो सीमित साधनवाली पत्रिकायें हैं जैसे कि लखनऊ की 'अवध पुष्पांजलि' मासिक, वे लघु कथा पर विशेषांक निकाल कर अपना धर्म निभा रही है। मगर वे संपादन में आपने को प्रतिष्ठित करने की कमर कसने वाली भावना और विरोधियों को गिरा देने की लंगोट कसने वाली भावना से निस्पृह हैं जिससे गलत लोगों का प्रवेश होते चले जा रहा है, ऐसे में यों लगता है कि······

नागफनी बोई है, सड़कों के हैधर-उधर।
सुस्ताने कोई जाये भी तो जाए कहाँ, कहां।
दास्मां हिन्दी कवियों की बड़ी ही अजीब है,
कुल जनम लिखी एक गजल, सुनाए कहाँ-कहाँ।

और इधर एक ही लघु कथा बार-बार छपवायी जा रही है। अपने को वक्तव्यबाजी का साहित्य देकर स्थापित करने–कराने की परम्परा लघु कथा लिखने से ज्यादा बढ़ चली है। आप सभी जानते हैं कि वक्तव्यबाजी के ही कारण हिन्दी का साहित्य मराठी, बंगला और अन्य साहित्य से पिछड़ता जा रहा है। लघु-कथा की वही हुआ है। केवल पैसा लगाने से साहित्य में अमर हुआ जा सकता था तो बिरला और टाटा अभी से अमर हो सकते हैं। हमारे लेखक बन्धुओं से मेरा यही सादर निवेदन है कि आज का आदमी और आज का पाठक बेवकूफ नहीं रह गया है। अगर ऐसा होता तो मंचीय कवियों को हूट करने की परम्परा न चलती। अगर ऐसा होता तो साहित्य में प्रदूषण का मामला कभी भी उठाया नहीं जाता। आप लघु कथा के माध्यम से कुछ भी अंट–शंट लिख देंगे तो आपकी अपनी पत्रिका में तो छप जाएगा, मगर वह सराहा कहीं भी नहीं जायेगा। आप स्थापित करने के

लिये चाहे जितने ग्रंथ अपने ऊपर लिखवा लीजिये, वह दीमकों को ही भेंट होगी। जीवन, समाज, समय और जीवंतता से जुड़े बिना निस्तार नहीं है, वह चाहे कोई भी चीज हो। लघुकथा तो इस समय संक्रमण काल से गुजर रही है और बड़े–बड़े सम्मेलन कराकर अपने और अपने मित्रों को स्थापित करने के लिये जितने भी प्रचार माध्यम अपना लें, समय की धारा में सब कुछ बह जाएगा, तात्कालिक संतोष भले ही मिल जाय, बाद में यह आभास आत्मछलना बनकर मुँह चिढ़ायेगी। अतः जरूरत है, नये–नये, प्रतिभा–संपन्न लोगों को ढूँढ–ढूँढकर छापने, प्रकाशित करने और इस विधा को समृद्ध करने की। कोई भी विधा कालजयी रचनाओं से समृद्ध होती है, यह सर्वविदित सत्य है और इसे दुहराने की कोई जरूरत महसूस नहीं हो रही है। लघुकथा चूंकि लघुकाय विधा है, उसमें हमें अपनी अलग पहिचान बनाने के लिये और भी सतर्क होने की आवश्यकता है, इसे मैं बार–बार कहूँगा।

—37, नवपाढ़ा, बाँदरा पूर्व,
बम्बई—400051

●

॥ ६ ॥

□ डॉ० बी० डी० मिश्र

लघुकथा : एक समसामयिक परिप्रेक्ष्य

'लघुकथा' के बारे में कुछ कहने से पहले यह स्पष्ट हो जाना जरूरी है कि यह शब्दावली अंग्रेजी के 'शार्ट स्टोरी' के समानार्थक नहीं है। इसका उद्‌भव हिन्दी की उन कथाओं के सार्थक नामकरण के लिए हुआ है जो अपने कलेवर की लघुता में प्रभावशाली ढंग से कुछ कहने का प्रयास करती हैं और जो आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से लोकप्रियता प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हो रही हैं। कोई आश्चर्य नहीं होगा, यदि लघुकथा की यह विधा समय की माँग के अनुरूप किसी दिन लोकप्रियता के शिखर पर पहुँच जाय। दरअसल हर आधुनिक अन्वेषण का उत्स-बिन्दु पश्चिम में ढूँढ़ने के हम इतने आदी हो गए हैं कि लघुकथा के अपने अन्यतम स्रोत को भी भूल जाते हैं। इसलिए रेखांकित करना असमीचीन न होगा कि पश्चिम की 'शार्ट स्टोरी' शब्दावली हमारे यहाँ की 'कहानी' के समानार्थक है। दूसरे शब्दों में हमने 'कहानी' को 'शार्ट स्टोरी' का पर्याय माना है और तदनुसार उसका विश्लेषण-मूल्यांकन किया है। और 'शार्ट स्टोरी' के अन्तर्गत पश्चिमी आलो-

चकों ने कुछ वाक्यों की लघुतम कलेवर वाली कहानी से लेकर 'नावलेट' के निकट तक पहुँचने वाली लम्बी कहानी तक का समावेश किया है। यानी पाश्चात्य साहित्य में 'मिनी स्टोरी' जैसी विधा की कल्पना नहीं की गई है, जबकि 'लघुकथा' के पर्याय के रूप में 'मिनी स्टोरी' की अवधारणा ही सार्थक होगी।

प्रश्न उठता है कि लघुकथा को कथा या कहानी के अन्तर्गत समाविष्ट कर अंग्रेजी की परम्परा का पालन करना क्या बुरा है कि हम कहानी से लघुकथा को अलगाने की सोच रहे हैं? जबकि कथा-तत्व दोनों में शामिल है। साथ ही यह भी साहित्यालोचना के लिए कितना शुभ है कि मात्र कलेवर के आधार पर एक ही विधा को दो में विभाजित किया जाय और निरर्थक श्रेणियाँ बढ़ाई जाएँ? ये ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें दरकिनार करके लघुकथा को एक अलग अस्तित्व वाली विधा के रूप में स्थापित करने का प्रयास महज हठधर्मिता के अतिरिक्त और कुछ न होगा। हमें यह भी ध्यातव्य रखना होगा कि यदि लघुता अपनी गुणात्मक अर्थवत्ता के कारण मूल्यवान नहीं बनती तो निखालिस विशेषण के रूप में विधात्मक अलगाव के लिए वह नाकाफी होगी। क्योंकि विधात्मक अलगाव मूल्यधारित होते हैं, मात्र विशेषणा-धारित नहीं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दी में लघुता को एक मूल्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास निरर्थक नहीं है। उससे इतना बोध तो अवश्य हुआ है कि लघु आकार केवल 'स्ट्रक्चर' भर नहीं होता, बल्कि उस 'टेक्सचर' के आकार ग्रहण करने की समूची प्रक्रिया का ठोस रूपायन होता है जिससे वह 'टेक्सचर' प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त होता है। इस तरह आकार की लघुता उस कथ्य के रूपायन की अनिवार्यता है, जो विस्तार के साथ अपनी प्रभावान्विति खो देता। हमारे यहाँ दोहा अपनी लघुता के कलात्मक उपयोग का अनूठा उदाहरण है। कथा में भी 'पंचतंत्र' और 'जातक' कथाएँ अपने लघुत्व में जो कुछ कहती हैं, उसे फैला तो सकते हैं, लेकिन प्रभाव की 'इंटेंसिटी' या घनता समाप्त हो सकती है जो लघुकथा का लक्ष्य होता है। आशय यह कि साहित्य में आकार की लघुता आकस्मिक नहीं, कथ्य को सम्प्रेषित करने की चेतना की अनिवार्य उपज है अतः लघुकथा को कहानी से अलगाने के लिए एक ठोस पृष्ठभूमि तो यह बनती ही है। मेरी समझ से विधात्मक अलगाव के लिए यह पृष्ठभूमि ही वह प्रस्थान-बिन्दु है जहाँ से कहानी का बिम्ब अपना आकार निश्चित कर लेता है। रचनाकार की दृष्टिगत मानसिकता निरन्तर उस आकार की निर्मिति में अपना योग देती रहती है।

लेखक की रचना-दृष्टि देश-काल निरपेक्ष नहीं रहती। परिवेशगत स्थितियों का उस पर गहरा असर पड़ता है। समकालीन स्थिति में लघुकथा के प्रति प्रकाशकों का रुझान तथा 'समीचीन' जैसी पत्रिकाओं का 'लघुकथा विशेषांक' निकालने का

आयोजन इस तथ्य का प्रमाण है कि लघुकथा का अपना एक अलग अस्तित्व बन चुका है। आवश्यकता है तो उसे आलोचकों की स्वीकृति की। यानी रचनाकारों और सम्पादकों ने उसे एक विधा के रूप में कहानी से अलगा लिया है, आलोचक जाँचें-परखें और अपना निर्णय दें। इसमें शक नहीं कि आलोचकों में परस्पर मतभेद की पूरी गुंजाइश है और रहेगी; किन्तु पाठक की दृष्टि से इतना मान लेने में उन्हें संकोच न होगा कि व्यस्ततम दुनिया के लिए आकार की लघुता सर्वथा आवश्यक है। किसके पास फुरसत है कि बात की डिटेल में जाय और उसकी कांप्लेक्सिटी के कारण मानसिक तनाव से गुजरे, तब जाकर कुछ उपलब्ध कर पाये। सभी चाहते हैं कि संक्षेप में पर प्रभावशाली ढंग से बात उन तक पहुँच जाय। क्या कहानी जैसी विधा अपने पाठकों की इस माँग की अवहेलना करके सक्रिय रह सकती है ? निश्चय ही नहीं। अतएव लघुकथा के प्रति अतिरिक्त जागरूकता पैदा करने के लिहाज से पाठकों की अपेक्षा का महत्वपूर्ण योग है। कहना गलत न होगा कि रचनाकार इस अपेक्षा को पहले पहचानता है और आलोचक बाद में। सो रचनाकार अपनी रचनाएँ कर रहे हैं। उनकी रचनाओं से कतिपय ऐसी बातें उभर रही हैं जिन्हें पहचानना आलोचना के लिए अहितकर न होगा। मैंने इसी दिशा में चलने की विनम्र कोशिश की है।

किसी विधा या प्रवृत्ति की साहित्य में अलग पहचान स्थापित करने के लिए सबसे पहली जरूरत होती है उसको परिभाषित करना—ऐसी शास्त्रकारों की मान्यता है। परन्तु समूचे कथा-साहित्य को लेकर इस दिशा में कठिनाई का एहसास हर दौर के समीक्षकों को रहा है। परिवर्तनशील सामाजिक यथार्थ से गहरी जुड़ी और फलत: निरन्तर गतिशील इस विधा का उपन्यास, कहानी, लघुकथा आदि चाहे कोई भी स्वरूप रहा हो, उसने एक संकुचित परिभाषा में बँधने से इन्कार किया है। क्यों, उसकी तफसील में जाना यहाँ मुनासिब न होगा। अत: ऐसी स्थिति में लघु-कथा जैसी हाल में ही अपनी क्षमता का गहरा एहसास कराने वाली विधा को परिभाषा में बाँधना भी जोखिम भरा है। क्योंकि विकासमान परिदृष्टि को बाँधना एक विशेष कालावधि तक तो ठीक है, पर उसके आगे बंधन चरमरा जाते हैं। हिन्दी की इस दौर की लघुकथाओं के परिप्रेक्ष्य में यह कहना सम्भव है कि हिन्दी की लघु-कथा ने अपने लघु स्वरूप में परिदृश्य के किसी एक आयाम को लेकर लक्ष्यकेन्द्रित दृष्टिकोण को जिस तरह विविध रूपों में प्रस्तुत किया है, उसे नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। कहानी के औसत स्वरूप द्वारा यह उसी रूप में सम्भव नहीं। वहाँ अनजाने ही सश्लिष्टता के आ जाने की पूरी गुंजाइश बनी रहती है, अन्यथा अनुभव के सतही हो जाने का खतरा बना रहता है। कोई आधुनिकता प्रेमी कथा-कार शायद ही यह खतरा उठाना चाहे। किन्तु एकायामी होना लघुकथा के लिए

वरदान है। इस विधा की शक्ति इसका लक्ष्यबेधी दृष्टिकोण है जो केवल प्रस्तुत ही नहीं प्रक्षेपित होना चाहिए। यही कारण है कि व्यंग्य स्थितियों के लिए यह लघुरूपा विधा एक कारगर औजार बनकर अवतरित हुई है। दरअसल लघुकथा की असली क्षमता उसके व्यंजनात्मक या आधुनिक भाषा में व्यंग्यात्मक संप्रेषण में निहित होती है। जहाँ उसको केवल सीधे कथन तक सीमित कर दिया जाता है, वहाँ वह केवल लघुता तक सीमित रह जाती है, उसकी मूल्यवत्ता नहीं स्थापित हो पाती। बिहारी के दोहे अपने लघुत्व में नाविक के तीर इसलिए कहे गए क्योंकि उनकी लक्ष्यबेधी क्षमता उनकी व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति है, जो हमारे मर्म को बेधती है। अतएव लघुकथा के लिए लक्ष्यकेन्द्रित कलात्मक नियोजन बड़ी सतर्कता से किया जाना आवश्यक है।

कहानी के सन्दर्भ में एडगर एलन पो ने आरम्भ से ही सतर्क रहकर उसकी अन्विति तक सुसंगठित संयोजन की जो बात कही थी, लघुकथा के लिए वह और भी प्रासंगिक है। कहानी में तो थोड़ा इधर-उधर हटने का अवकाश भी होता है; किन्तु लघुकथा की नितान्त लक्ष्योन्मुखता जरा भी इधर-उधर हटने से क्षरित हो सकती है। इसलिए लघुकथाकार को एक-एक शब्द के प्रयोग के प्रति पूरी तरह सावधान रहना पड़ता है। अन्तरालों को भरने के लिए उसे इस तरह की शैली अपनानी पड़ती है जिसके बीच से कथ्य इस प्रकार प्रक्षेपित हो जैसे आकर्षक पृष्ठ-भूमि के बीच सुन्दर चित्र की सुन्दरता द्विगुणित होकर प्रस्फुटित होती है। निश्चय ही लघुकथा-रचना को कथ्य के विशिष्ट विन्दु पर केन्द्रित रखने के लिए सायास प्रयत्न की आवश्यकता होती है, अन्यथा संयोजन के किसी भी अंग के घट या बढ़ जाने का खतरा बना रहता है। अतः लघुकथा किसी चरित्र के किसी विशेष पक्ष या कोण को अभिव्यक्त करने वाली हो या किसी विचार या भाव को दिग्दर्शित करने वाली अथवा यथार्थ परिदृश्य के किसी बिम्ब को व्यंजित करने वाली, उसकी बुनावट ऐसी होनी चाहिए कि लक्ष्य-बिन्दु समूची प्रक्रिया से छनकर उभरने वाला अभिव्यंग्य बनकर प्रस्फुटित हो। लघुकथा को प्रभावोत्पादक बनाने में कथन-भंगिमा और मित कथन का महत्वपूर्ण योग रहता है। इसी से लघुता मूल्यवान बनती है।

कहा जा चुका है कि लघुता के प्रति यह आकर्षण आज की व्यस्तताभरी जिन्दगी की एक महती आवश्यकता है। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि कला के क्षेत्र में एकमेव यही कारण है जिससे लघु आकार वाली रचनाओं के विकास को गति मिली। बल्कि प्रतीति यह होती है कि लघु आकृति की रचनाओं के उद्भव एवं विकास में रचनाकारों की उस अनुभूति की महत्तम प्रेरणा रही है जिसे संक्षेप में प्रस्तुत करके ही उसे प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है। इस अनुभूति के साथ इतर प्रासंगिक आयाम अवान्तर रूप से जुड़े होते हैं। उनका सापेक्ष महत्व तो होता है,

पर किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं। यही कारण है कि किसी काल की सामाजिक पृष्ठभूमि में किसी तरह की सक्रियता के लिए चाहे वह भावात्मक हो या वैचारिक; लघु रचनाएँ खासतौर से कथाएँ, एक कारगर औजार के रूप में इस्तेमाल के लिए सर्वथा अनुकूल पड़ती हैं। गहरे सांस्कृतिक-सामाजिक बोध के सन्दर्भ में जातक और पंचतंत्र की कथाओं का सार्थक उपयोग इसका स्वस्थ प्रमाण है। लघु कथाओं के प्रति आज बढ़ रही जागरूकता भी इसी तथ्य को रेखांकित करती है कि लघुता के अन्तर्गत कथ्य को जिस तरह धारदार बनाया जा सकता है, उस तरह उसे विस्तार देकर नहीं।

कहना न होगा कि आज किसी साहित्यिक विधा का सर्वथा निरपेक्ष मूल्य कोई माने नहीं रखता। उससे कुछ देर के लिए जीवन-वास्तव से पलायन तो किया जा सकता है, लेकिन निजात नहीं पाया जा सकता। अत: आज के रचनाकार से अपेक्षा की जाती है कि वह जीवनगत समस्याओं के रू-ब-रू खड़ा होकर उनका रचनात्मक समाधान खोजने की दिशा में सक्रिय हो और संघर्षक्षमता का परिचय दे। साहित्यकार का यह सामाजिक दायित्व है जिसका निर्वाह तभी हो सकता है, जब साहित्यकार जीवनगत स्थितियों से खुद को 'इन्वाल्व' करके उनका पूर्वग्रहमुक्त विश्लेषण-परीक्षण करेगा। इस प्रक्रिया के पश्चात् जो रचना-बिम्ब निर्मित होता है उसको जन-मन तक पहुँचाने के लिए ही आज के रचनाकार की सबसे बड़ी समस्या सम्प्रेषण है। कथ्य को सम्प्रेषणीय बनाकर ही आज कोई रचनाकार लोकप्रिय हो सकता है। यह अर्जित लोकप्रियता सस्ती लोकप्रियता से अलग चीज है और माध्यम को निरन्तर माँजने से अर्जित होती है। इसी के निमित्त लेखक कथ्य के अनुरूप विधात्मक माध्यम चुनता और उसमें विविध प्रयोग करता है। आज रचनाकार केवल यह कहकर छुट्टी नहीं पा सकता कि उसने जो कहना था कह दिया, लोग समझें या न समझें। बल्कि उसे तो बराबर सचेत रहना पड़ता है क्योंकि कथ्य की सम्प्रेषणीयता माध्यम से अद्वैतरूप से जुड़ी रहती है। कथ्य को सम्प्रेषणीय बनाने की तलाश से ही विविध विधाओं एवं रचना-शैलियों का उद्भव तथा विकास हुआ है। लघु रचनाओं की सार्थकता और मूल्यवत्ता उनके सम्प्रेषणीयता में साधक बनने में है, न कि उसे बाधित करने में। इसीलिए आधुनिक समस्या संक्रांत युग के लिए लघुता बड़ी मुफीद पड़ती है। लघुकथा के बारे में विचार करते समय इस परिप्रेक्ष्य को कतई नकारा नहीं जा सकता।

सम्प्रेषणीयता में सहायक होकर लघुकथा ने प्रासंगिक विषयों पर परस्पर संवाद को बढ़ाया ही नहीं, अपितु द्विगुणित किया है। इसीलिए इसके प्रति पाठकों का आकर्षण बढ़ा है। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से लघुकथाएँ बड़ी मार्मिकता से पाठकों को प्रभावित कर रही हैं। खासतौर से समकालीन विसंगत स्थितियों पर

व्यंग्यात्मक दृष्टि से विचार करने के लिए लघुकथा से बड़ी सम्भावनाएँ हैं। आज देश की भयावह एवं विकट समस्याओं की जड़ पर प्रहार करने के लिए हमें जिस तरह के जन-मानस की दरकार है, उसके निर्माण में लघुकथा की भूमिका बड़ी सार्थक होगी। इतना ही नहीं, जीवन के किसी भी खास बिन्दु को गहराई से प्रभावोत्पादक बनाने के निमित्त लघुकथा के व्यंजनात्मक पहलू को बखूबी इस्तेमाल किया जा सकता है। लघुकथा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके लिए किसी भी कथन शैली—कथन, वार्ता, चेतना-प्रवाह, पत्र, डायरी, एकालाप आदि का प्रयोग किया जा सकता है। शर्त बस इतनी है कि कथ्य बिम्ब कुछ इस तरह सम्प्रेषित हो कि सीधे पाठक को प्रभावित करके उसकी मानसिकता को सही दिशा में सक्रिय कर सके। कारण लघुकथा का उद्भव ही पाठकों से सरोकारयुक्त संवाद स्थापित करने और उनकी त्वरित अनुक्रिया-प्रतिक्रिया को उकसाने के लिए ही हुआ था। और उसकी यह शक्ति अद्यतन सुरक्षित है। संवादिताहीन और प्रभावहीन लघुकथा की सारी कलावत्ता प्राणहीन स्ट्रक्चर भर बन कर रह जायगी। इस कलात्मक विधा को यदि खतरा है, तो यही कि इसके लक्ष्यबेधी स्वरूप का दुराग्रहपूर्ण और दंभी प्रचार-मात्र के लिए दुरुपयोग किया जा सकता है। किन्तु प्रजातन्त्र के लिए तो यह आम खतरा है। इसे तो किसी भी कला-विधा को झेलना और बचना होगा।

लघुकथा के प्रति आलोचकों और पाठकों का ध्यान आकर्षित करने की दिशा में 'समीचीन' का प्रयास निश्चय ही इस विधा से सम्बद्ध विषयों के प्रति संवाद को उकसाने की सार्थक पहल करेगा। जहाँ तक मेरा अपना विचार है, उसके बारे में इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि जनोन्मुख साहित्य-रचना के लिए 'लघुकथा' एक समुचित और प्रासंगिक माध्यम है जिसका उपयोग जातीय समाज और संस्कृति की बेहतरी के लिए एक औजार के रूप में सफलता से किया जा सकता है। और तुलसी की 'अमित कहौं लिखि आखर थोरे' की साहित्यिकता भी अक्षुण्ण रखी जा सकती है। लघु चीजों के प्रति आधुनिक मानस की ललक को देखते हुए लघुकथा के कलात्मक उपयोग की असीम सम्भावनाएँ हैं। अस्तु···

हिन्दी विभाग
गोवा विश्व विद्यालय
गोवा

॥ ७ ॥

☐ सतीश पाण्डेय

हिन्दी लघुकथा - पक्षधरता के संदर्भ में

लघुकथा पर चर्चा करते हुए अधिकतर यह देखा जाता है कि लोग आज भी इसके विधा या उपविधा के प्रश्न पर उलझे रह जाते हैं। उनकी सारी चिन्ता या तो 'लघुकहानी', 'लघुव्यंग्य', 'चुटकुला', 'प्रेरक प्रसंग', 'बोध कथा' या 'संक्षिप्त अखबारी रपट' आदि सन्दर्भों में लघुकथा की चीर-फाड़ करने की होती है, नहीं तो इसकी लम्बाई की सीमा निर्धारित करने अथवा इसकी उपदेशात्मकता पर खेद प्रकट करने की। वस्तुत: ऐसी चर्चाओं के माध्यम से लघुकथा की सामर्थ्य को नजरंदाज करके इसकी 'आइडेंटिटी' के सन्दर्भ में भ्रम उत्पन्न किया जाता है। मेरी दृष्टि में लघुकथा अपनी विकास-यात्रा के उस दौर तक पहुँच चुकी है, जहाँ उसका एक अलग स्वरूप निर्धारित हो गया है। अब वह साहित्यिक प्रतिष्ठा दिलाने वाले किसी मसीहा की मोहताज नहीं है। यदि उसे खतरा है तो मात्र उन तथाकथित रचनाकारों से, जो साहित्य में स्वयं को प्रतिष्ठापित करने के लिए इसे 'शार्टकट' के रूप में अपनाते हैं। ऐसे रचनाकारों की लचर रचनाओं के कारण लघुकथा की साहित्यिक सामर्थ्य

को नकारा नहीं जा सकता। अतः इस तरह की बहसों में उलझने के स्थान पर आज आवश्यकता लघुकथा का वस्तुपरक विश्लेषण कर इसकी सामर्थ्य को पहचानने की सही समझ पैदा करने की है क्योंकि समीक्षक तो रचनाकार और पाठक के बीच की कड़ी होता है।

कुछ समीक्षकों ने आज के आपाधापी भरे जीवन में, जब समय की इतनी कोताही है, उस सीमित समय में पढ़ने के लिए उपयुक्त मानते हुए लघुकथा का महत्त्व स्वीकार किया है। वस्तुतः यह भी लघुकथा के प्रति अन्याय ही है। यह ठीक है कि संक्षिप्तता लघुकथा की अनिवार्य शर्त है किन्तु इसमें संवेदना की वह सघनता भी होती है, जो पाठक पर अपनी अमिट छाप छोड़ती है, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। दूसरे, लघुकथा का जो स्वरूप आज निर्मित हुआ है वह वर्तमान परिस्थितिजन्य है। इसके आरम्भ का स्रोत पंचतंत्र और पुरानी लोककथाओं में भले ही ढूँढ लिया जाए किन्तु आज की लघुकथाओं का स्वरूप आजादी के बाद की विभिन्न स्थितियों के आधार पर निर्मित हुआ है। भारतेन्दु, माखनलाल चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' या प्रेमचन्द की लघुकथाओं और आज के लघुकथाकारों की लघुकथाओं के बीच प्राप्त कथ्यगत एवं शिल्पगत अन्तर से इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

आज की लघुकथाएँ न तो पौराणिक कथाओं की तरह कोरी उपदेशात्मकता से युक्त हैं और न ही काल्पनिक या चमत्कारयुक्त। वे तो युगीन सत्य से साक्षात्कार कराने वाली एवं समसामयिक यथार्थ से परिपूर्ण हैं, जो न सिर्फ जीवन की विसंगतियों-विद्रूपताओं का अवलोकन कराती हैं, बल्कि अन्याय, शोषण और दमन से जूझने एवं इन्सान को बेहतर इन्सान बनाने की प्रेरणा भी देती हैं। इस तरह इनकी पक्षधरता समाज के प्रति एवं मानव-जीवन की बेहतरी के लिए है। इसी कारण इनका विषय जीवन के समान ही विस्तृत एवं बहुआयामी है। लघुकथाकार जीवन के जिस क्षेत्र में भी विद्रूप का अनुभव करता है, उसे अपनी सम्पूर्ण संवेदनात्मकता एवं सृजनात्मक प्रतिभा द्वारा सार्थक अभिव्यक्ति देता है। इसके लिए उसे व्यापक परिवेश या विस्तृत भावभूमि की आवश्यकता नहीं होती। किसी छोटी-सी घटना या घटना के एक अंश के माध्यम से भी जीवन के एक व्यापक सत्य को उद्घाटित कर देने की सामर्थ्य वह इसमें भर देता है। इसके लिए आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण तथ्य यह होता है कि उस घटना को कितनी तीव्रता एवं गहराई से अनुभव किया जाता है क्योंकि अनुभव की यह तीव्रता एवं गहराई ही लघुकथा को प्रभावी बनाती है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि वर्तमान लघुकथाएँ स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों की उपज हैं। हमें आजादी तो मिली किन्तु

स्थितियाँ पनपती गई कि सामान्य व्यक्ति की जीवन-स्थितियों में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। इतना ही नहीं, वह मँहगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, शिक्षित वर्ग में विद्यमान अंग्रेजियत की मानसिक दासता तथा राजनेताओं की कथनी-करनी में व्याप्त अन्तर का भी शिकार होता चला गया। यह स्थिति मोहभंग की स्थिति थी। आजादी-प्राप्ति के बाद सुखमय जीवन की जो कल्पना की गई थी, वह धूल में मिलती प्रतीत होने लगी। ऐसी स्थितियों ने भारतीय साहित्यकारों के सोच को ही बदल दिया। उनका चिन्तन व्यवस्था-विरोधी एवं उनका साहित्य जीवनगत सच्चाइयों की ओर झुकता चला गया। इसी दौर में लघुकथाकारों ने भी अपनी लघुकथाओं को नए आयाम दिए। उनकी रचनाओं का केन्द्र वह सामान्य व्यक्ति बना, जो बेरोजगारी, भूख, विवशता, गरीबी, अभाव, शोषण, अन्याय एवं दमन का शिकार था। इनमें ग्रामीण, शहरी, कृषक, मजदूर, भिखारी, मध्यवर्गीय आदि सभी तरह के व्यक्ति-जीवन को विभिन्न पहलुओं से अभिव्यक्त किया गया। इन रचनाओं में रचनाकारों की मूल संवेदना मानवीय भावनाओं को स्थापित करने की ही रही है। इसीलिए किसी विशेष विचारधारा से प्रतिबद्ध न होकर इन रचनाकारों की मूल चिन्ता मानव जीवन की बेहतरी के प्रति रही।

आजादी के बाद की स्थितियों को अनेक लघुकथाकारों ने सफल अभिव्यक्ति दी है 'पगला' (खान अब्दुल रशीद 'दर्द'), 'आजादी' (हरेकृष्ण), जागरूक (कृष्णानंद कृष्ण) ऐसी ही कुछ लघुकथाएँ हैं। यह स्थितियों की विडम्बना ही है कि आजादी प्राप्त किए ४० वर्ष बीत गए परन्तु गरीबी-भुखमरी नहीं मिट पायी। आजादी के बाद जन्मी पीढ़ी बाल-बच्चों वाली हो गयी, इतने वर्ष बीत गये, फिर भी हमारे जन-प्रतिनिधि आजादी को किशोरावस्था में ही मानते हैं। इतना ही नहीं, आजादी के लिए संघर्ष करने वाला एवं इन स्थितियों के प्रति जागरूक स्वतन्त्रता सेनानी 'पगला' समझ लिया जाता है। इस तरह की स्थितियों का प्रभावी चित्रण 'पगला' में हुआ है। यही नहीं, दूर-देहात से स्वतन्त्रता का जलसा देखने आने वाले भोले-भोले किसान को आजादी सिर्फ निशाचर, चोर-डकैतों को ही मिली प्रतीत होती है क्योंकि १२ बजे रात को तो ये ही जागते रहते हैं। ('आजादी', हरेकृष्ण)। आज गरीबों के हक की लड़ाई लड़ने के प्रति जागरूक व्यक्ति का मजाक उड़ाया जाता है—'जागरूक' (कृष्णानन्द कृष्ण)।

भूख से तड़पते व्यक्ति की स्थितियों का सार्थक चित्रण करने वाली लघुकथा 'विधवा' (रामयतन प्रसाद यादव) है। भूखा बेटा माँ से पूछता है कि तुम भी वहाँ क्यों नहीं चली जाती हो, जहाँ रामप्यारी चाची रहती हैं। वहाँ खाने-पीने की कोई कमी नहीं है। माँ समझाती है कि वहाँ सिर्फ विधवाएँ ही रहती हैं तो बेटे का सीधा-सहज उत्तर होता है कि 'तू भी विधवा क्यों नहीं बन जाती?' स्थितियों के प्रति

'अनजान' छोटे बच्चे का यह मासूमियत-भरा प्रश्न समूची व्यवस्था पर एक करारी चोट कर जाता है।

भूख की पीड़ा का अहसास कराने वाली कुछ अन्य लघुकथाएँ भी हैं, जिनमें भूख ने मानवीयता की सीमा को भी तोड़ दिया है। रमेश बत्तरा की 'माँएँ और बच्चे' ऐसी ही रचना है। इतना ही नहीं विजय कुमार सिंह की 'भूख' के लड़के को टिफिन के लिए कुत्ते की प्रतिद्वन्द्विता में दौड़ना पड़ता है। 'इस बार' (पारस दासोत) का लड़का अपनी भूख मिटाने के लिए होटल के पीछे जूठन फेके जाने की प्रतीक्षा करता है। जब जूठन भी फेंकी जाती है तो उसे रोटी छीनने के लिए कुत्ते से लड़ना पड़ता है—"अब वह एक तरफ बैठा ··रक्तरंजित हाथों से रोटी खाते हुए कुत्तों की तरफ··· इस तरह देख रहा था, मानो कह रहा हो···इस बार ··अगर उससे रोटी छीनने की कोशिश की गई तो वह उन्हें काट खाएगा।" 'एक मौत' (रंजीत राय) का बालक आवारा कुत्तों को मारने के लिए जहर-चुपड़ी रोटी खाकर मर जाता है। उस पर भी लोगों की यह प्रतिक्रिया—'मरने के समय कम से कम भर पेट खाकर तो मरा'—वर्तमान व्यवस्था पर करारा तमाचा है।

राजनेताओं के जबानी आश्वासनों एवं कागजी प्रयासों के बावजूद गरीबी आज भी सामान्य व्यक्ति के जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना है। गरीबी की विविध स्थितियों को इन लघुकथाकारों ने अपनी रचनाओं में पूरी शिद्दत के साथ उकेरा है। यह गरीबी ही है कि किसी रामधन को बेटे के जन्म लेने पर कोई खुशी नहीं होती क्योंकि 'गरीब के लिए क्या बेटा···क्या बेटी ··पेट तो दोनों के ही लगा रहता है।' ('कोई फर्क नहीं', अमरीक)। कोई कल्लू मन्त्री जी के दौरे के इश्तहार के कागज बटोरकर शाम को जब थका-हारा घर लौटता है तो उसे संतुष्टि होती है कि उसके बीमार बापू को रोज की तरह पानी पीकर नहीं सोना पड़ेगा। रद्दी बेचकर दो मुट्ठी आटे का इन्तजाम हो सकता है—(निश्चिंत, जया नर्गिस) गरीब बीमार माँ को बेटी की शादी के लिए सरकारी अस्पताल से प्राप्त दवाइयाँ बेचनी पड़ती हैं (साँसों का विक्रेता, कमल चोपड़ा)। 'भ्रूण हत्या' (कमल चोपड़ा), 'यह भी मिल सके तो' (शैल सहाय) आदि लघुकथाएँ भी गरीबी की विभीषिका को अभिव्यक्त करती हैं।

भूख और गरीबी के साथ-साथ बेरोजगारी की स्थितियों को प्रभावी अभिव्यक्ति देने वाली सार्थक लघुकथाएँ भी हैं। 'मजबूरी' (पवन शर्मा) में जहाँ बेरोजगार प्रेमी की व्यथा है, वहीं 'श्रम' (महावीर प्रसाद जैन) में बेरोजगारी से निराश करने के स्थान पर रचनाकार ने एक सही दृष्टि के तहत हमें संघर्ष के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया है।

इस तरह वर्तमान लघुकथाकारों की स्पष्ट सहानुभूति उस वर्ग के प्रति है, जो परिश्रम करने के बावजूद अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। इसी

क्रम में इन रचनाकारों ने समाज की वर्गीय स्थितियों का सफल अंकन भी किया है। लाख प्रयत्नों के बावजूद गरीबी क्यों बढ़ रही है, इसके पीछे कौन-सी मानसिकता कार्यरत है, इसका सार्थक चित्र 'गरीबी क्यों बढ़ रही है ?' (अनिला वर्मा) में खींचा गया है। उच्चवर्गीय मानसिकता और संस्कारों को अभिव्यक्ति देने वाली अनेक अन्य लघुकथाएँ भी हैं—'संस्कार की बात' (रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु') 'निशानदेही' (राजकुमार सिंह), 'मातृत्व' (मोहन राजेश) तथा 'सिर उठाते तिनके' (तारीक असलम तस्नीम)। अन्तिम दोनों लघुकथाएँ प्रतिकार के स्वर से आपूर्ण होने के कारण अधिक प्रभावी बन पड़ी हैं। 'मातृत्व' में उच्चवर्गीय मानसिकता के कारण बच्चे को अपना दूध न पिलाने का निर्णय तो हमें उद्वेलित करता ही है किन्तु उससे भी अधिक उद्वेलन उत्पन्न करता है, ५० रुपये बढ़ोत्तरी के साथ दूध पिलाने के मेमसाहब के प्रस्ताव का रंधिया द्वारा ठुकराया जाना। वह कहती है—'मैं अपना खून तो बेच सकती हूँ पर दूध नहीं, बच्चे का नहीं''मालिक।' इसी तरह 'सिर उठाते तिनके' में जमींदार के विरुद्ध किशनू का विरोध तथा उसके जैसे लोगों की एकता का स्वर अधिक प्रभावकारी है।

वर्गीय स्थितिवों का एक प्रमुख पहलू है शोषण। वस्तुतः स्वातन्त्र्योत्तर भारत की स्थितियाँ कुछ इस तरह पनपीं कि अमीरी और गरीबी का अन्तर निरन्तर बढ़ता ही गया। इतना ही नहीं स्थितियों की जटिलता कुछ इस तरह विकसित हुई कि हर वर्ग का व्यक्ति छोटे-बड़े पैमाने पर एक दूसरे का शोषण करता रहा किन्तु स्वयं शोषण करते हुए भी वह अपने से अधिक अनुभवी अजगर के पेट में चलता चला गया। इस प्रक्रिया की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मदन क्षर्मा की 'अनुभव' लघुकथा में हुई है।

ग्रामीण जीवन की विसंगतियाँ आज भी उसी तरह विद्यमान हैं। वही महाजनी शोषण, सामंशाही और अत्याचार आज भी नए-नए रूपों में मौजूद हैं। बल्कि सवर्ण और हरिजनों के झगड़े ने एक नया रूप ग्रहण कर लिया है ('असल बात', राजकुमार गौतम)। शोषण और महाजनी अत्याचार का यथार्थ रूप 'किसान' (कमलेश भारतीय) और 'उसका दुख' (तारीक असलम तस्नीम) में अंकित हुआ है। इस सन्दर्भ में 'हाथ-पर-हाथ' (मधुकांत, विशेषतः उल्लेखनीय रचना है। इसमें भोले-भोले ग्रामीणों का शोषण करने वाले जमींदार की साजिशों के चित्रण के साथ-साथ विरोध में उठने वाले तेज एवं धारदार नाखूनों वाले हाथों का प्रतीक इसे एक 'पॉजिटिव एप्रोच' वाली रचना बना देता है। 'शिनाख्त' (प्रबोध कुमार गोविल) नागरिक (जगदीश कश्यप), बेदख़ल (भगीरथ) माध्यम (बलराम) आदि लघुकथाएँ भी ग्रामीण जीवन की विसंगतियों को विभिन्न पहलुओं से उजागर करने वाली रचनाएँ हैं।

मौजूदा प्रजातांत्रिक व्यवस्था यद्यपि कहने के लिए तो सामान्य व्यक्ति द्वारा निर्मित एवं सामान्य लोगों के लिए ही है। किन्तु यह भी एक कटु सत्य है कि इस व्यवस्था में सबसे अधिक परेशान एवं जटिलताओं, विसंगतियों का शिकार सामान्य व्यक्ति ही है। समकालीन लघुकथाकारों ने वर्तमान व्यवस्था की असंगतियों और कुव्यवस्थाओं को उद्‌घाटित करने वाली अनेक सशक्त रचनाएँ दी हैं। इस अव्यवस्था के कारणों की ओर संकेत करते हुए, साथ ही, एक सही समाधान प्रस्तुत करने वाली परम्परागत शैली में लिखी हुई ऐसी ही एक रचना है 'दूध का दूध, पानी का पानी' (रामनारायण उपाध्याय)। इसके अतिरिक्त 'कानून और व्यवस्था' (श्याम सुन्दर व्यास) 'आँखें' (अशोक मिश्र), 'बेताल और सरकारी आदेश' (रतीलाल शाहीन) जैसी अनेक रचनाएँ हैं, जिनमें व्यवस्था की कार्य-पद्धति के दोषों की ओर संकेत किया गया है। अनेक 'लूप होल्स' के कारण इस व्यवस्था में जो अच्छी योजनाएँ बनती हैं, उनका लाभ भी कुछ खास किस्म के लोगों को ही मिल पाता है—'पटवारी की लिस्ट' (हीरालाल नागर)।

व्यवस्था का एक प्रमुख अंग है पुलिस विभाग। आज यह रक्षक ही भक्षक बन बैठा है। पुलिस-विभाग के अत्याचारों का चित्रण तो बड़ी ही बेबाकी से सम्पूर्ण कथा-साहित्य में हो रहा है। लघुकथाकारों ने भी पुलिस के वर्तमान स्वरूप का सफल अंकन करने वाली रचनाएँ दी हैं। धीरेन्द्र शर्मा द्वारा सम्पादित 'आतंक' नामक पूरा संग्रह पुलिस-विभाग को केन्द्र में रखकर लिखी रचनाओं का है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि 'आतंक' की कुछ रचनाएँ उत्तम कोटि की हैं किन्तु इसकी सभी रचनाओं को एक साथ पढ़ने से विषयगत दोहराव-सा अनुभव होने लगता है। दूसरे, पुलिस विभाग के अमानवीय रूप को ही अधिक 'ग्लोरीफाई' किया गया है। विसंगतियों का चित्रण उचित स्थिति है किन्तु इस विभाग की मानवीय सम्भावनाओं को पूरी तरह नकारना उचित नहीं है। इस विभाग के नैतिक-चारित्रिक पतन की लघुकथाएँ ही विशेष रूप से लिखी गयी हैं किन्तु कुछेक रचनाएँ इनके दूसरे पक्ष को भी उजागर करती हैं—'चुनाव' (शंकर पुणतांबेकर), 'वापसी' (आशापुष्प), 'नागरिक' (रमेश बत्तरा), 'रिपोर्ट' (मोहन राजेश), 'बेताल का बयान' (जया नर्गिस), 'कमाई' (प्राणेश कुमार), भीड़ (अशोक भाटिया), शातिर (कमलेश भट्ट 'कमल') और 'औरत' (भगीरथ)। इनमें अन्तिम तीन लघुकथाओं का जिक्र मैं विशेषतः करना चाहूँगा। 'भीड़' उस आम आदमी की मानसिकता को उजागर करती है जिसने यह मान लिया है कि पुलिस का सिपाही हर स्थिति में रिश्वत लेता ही है, जब कि इस लघुकथा का सिपाही मानवीय भावनाओं से युक्त होकर अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है। इसी तरह 'शातिर' के आई० जी० नगर कोतवाल की सेवाएँ जन-उत्पीड़न के आधार पर समाप्त करने का निर्णय लेते हैं। इस तरह ये

रचनाएँ पुलिस के मानवीय पक्ष को उजागर करने वाली रचनाएँ हैं। 'औरत' इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचना है कि इसमें पुलिस के घिनौने कृत्य का चित्रण मात्र नहीं है बल्कि असहायता, लाचारी, लज्जा और कलंक की खोल में ढकी औरत अपने अपमान का बदला लेने का साहस करती है। वस्तुत: आज आवश्यकता उन अत्याचारों का चित्रण मात्र करने वाली रचनाओं की नहीं बल्कि इस तरह का कोई समाधान प्रस्तुत करने वाली रचनाओं की है।

आज के व्यक्ति-जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला तत्त्व है राजनीति। इस राजनीति और राजनीतिज्ञों को केन्द्र में रखकर लिखी गयी रचनाओं का प्रमुख स्वर व्यंग्यात्मक रहा है। इनमें नेताओं की चरित्र-हीनता, चुनाव जीतने की तिकड़में, दलबदल, सामान्य व्यक्ति की उपेक्षा आदि विडम्बनाओं पर तीखा प्रहार किया गया है।

आज राजनीतिज्ञों की प्रमुख समस्या किसी तरह सत्ता में बने रहने की है। आज की इस राजनीतिक शिक्षा में सफलतम शिष्य वही है जिसे सिर्फ कुर्सी दिखाई देती हो। (दीक्षा, पुष्पलता कश्यप)। 'कुर्सी देवी' भी अपना उत्तराधिकारी उसी व्यक्ति को चुनौती है, जो स्वार्थी एवं किसी से कोई वास्ता न रखने वाला हो—(कुर्सी, नारायण लाल परमार)। चुनाव में विजय मिलने के बाद दूसरे की संपत्ति हथियाने का अधिकार ठीक उसी तरह मिल जाता है, जैसे दाग कर छोड़े गये साँड को किसी की भी फसल चरने का—(सांड, रंगनाथ दिवाकर)। राजनीतिज्ञों के नैतिक पतन की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति देने वाली रचनाएँ हैं—'दोस्ती' (विष्णु प्रभाकर) और 'उतार लो' (पारस दासोत)। सरकार और पूँजीपतियों के अवैध सम्बन्धों की सूक्ष्म और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति शंकर पुणतांबेकर की लघुकथा 'अवैध सन्तान' में हुई है।

वर्तमान राजनीतिज्ञों का कवच है जांच-आयोग का गठन करना। बड़ी-से बड़ी दुर्घटनाओं पर जाँच-आयोग बैठाकर विरोधियों की जबान बन्द कर दी जाती है। फिर जाँच आयोग की रिपोर्ट का विस्तृत अध्ययन सरकार स्वयं करती है और फिर 'देशहित को ध्यान में रखते हुए जाँच के विषय में बताने में असमर्थ' कह कर इतना समय नष्ट कर दिया जाता है कि विरोध के स्वर की आग स्वयं बुझ जाती है। इस राजनीतिक विडम्बना की सार्थक अभिव्यक्ति 'मन्त्र' (राजेश देशप्रेमी) में हुई है। इसी तरह 'उनसे कहना' (आनन्द बिल्थरे) में राधा-ऊधो और गोपियों की संवाद शैली में लघुकथाकार ने 'उम्मीदों का सब्ज बाग दिखाकर चुनाव जीतने वाले नेताओं द्वारा सामान्य जन की उपेक्षा' के साथ-साथ सामान्य लोगों में इस उपेक्षा के कारण उत्पन्न असंतोष को भी परिलक्षित कराया है, जो सामान्य व्यक्ति में स्थितियों के प्रति जागरूक होने की प्रवृत्ति का भी परिचायक है।

राजनीतिक क्षेत्र में उपजी स्वार्थपरता और कुटिलता ने कुछ ऐसे तत्त्वों को भी प्रोत्साहित किया जिन्होंने धर्म-सम्प्रदाय और जाति की भावनाओं को उकसा कर अपना स्वार्थ-सिद्ध करना आरम्भ कर दिया। धार्मिक कट्टरता आज दंगा-फसाद की जड़ है। साम्प्रदायिकता का ज़हर आदमी को आदमी से अलग करने का राजनीतिज्ञों का कारगर हथियार बना हुआ है। समकालीन लघुकथाकारों ने जाति-धर्म और सम्प्रदाय के आधार पर आदमी-आदमी को बांटने के इन षड्यन्त्रों के विरुद्ध अपनी कलम की शक्ति का भरपूर उपयोग किया है। इन रचनाओं में रचनाकारों की चिन्ता सामान्य व्यक्ति के प्रति ही रही है क्योंकि ऐसे रूप में भड़कने वाले दंगे-फसाद में निरपराध सामान्य व्यक्ति ही प्रमुख रूप में शिकार बनता है। मामूली समाचार (मार्टिन जॉन 'अजनबी'), 'पहचान' (ज्योतिर्मय आनन्द), अवसर (राजश्री रंजीता) आदि लघुकथाएँ इसी तथ्य को अभिव्यक्ति देती हैं। धर्म किस तरह दंगा-फसाद का कारण बना हुआ है, वजह (रमेश बत्तरा), मजहब (उपेन्द्र प्रसाद राय) में बखूबी देखा जा सकता है।

मनुष्य-मनुष्य के बीच खाई उत्पन्न करने वाले तत्त्वों में धर्म के साथ-साथ जातिगत संकीर्ण भावनाएं भी कार्यरत हैं। कहीं यह जाति विशेषता बन जाती है, (विशेषता, शैल अखौरी) तो कहीं विवशता। राजेन्द्र राकेश की 'विवशता' का भंगी सूअर पालना गलत मानते हुए भी इसलिए पालता है कि यदि वह गाय पालेगा तो उस भंगी के घर का दूध खरीदेगा कौन? 'संस्कार' (महावीर प्रसाद जैन। की भिखारिन ट्रेन में माँगी हुई रोटियाँ इसलिए फेंक देती है कि उसे रग्घू भंगी ने छू दिया था। आज भी ऐसे लोग हैं जो गंगा में पैसे फेंक देते हैं किन्तु किसी भिखारी को नहीं देते; 'अपवित्र लोगों' से बचते हुए देवता को मन्दिर में खुश करने चले जाते हैं। मनुष्य को मनुष्य न समझने वाले इस वर्ग पर कठोर प्रहार करती हुई लघुकथा है—'पवित्र लोग' (नीलम सिन्हा)। विसंगतियों के चित्रण के साथ-साथ सांप्रदायिक सद्‌भाव की लघुकथाएं भी हैं—'फर्क' (फजल इमाम मल्लिक) एवं 'दिली रिश्ते' (खान अब्दुल रशीद 'दर्द')। जातिगत संकीर्ण अवधारणाओं के साथ-साथ कुछ अन्य सामाजिक असंगतियाँ भी हैं, जिन्होंने मानव-जीवन को मुश्किल बना दिया है। अन्धविश्वास आदि इन बुराइयों पर व्यंग्यात्मक प्रहार करने वाली लघु-कथाओं—'जूते की जात' (विक्रम सोनी) तथा 'नजर अपनी-अपनी' (रतीलाल शाहीन) में भी मानवीय सरोकार ही दृष्टिगत होता है।

अर्थ तत्त्व की प्रधानता एवं वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों के कारण आज सम्बन्धों में एक अजीब-सी शिथिलता एवं बिखराव आ गया है। घर में नौकरानी इसलिए नहीं रखी जाती कि पत्नी घरेलू काम करते हुए बीमार भी पड़ेगी तो उसकी दवा का खर्च नौकरानी रखने के खर्च से कम ही होगा (बचत, कृष्णशंकर भटनागर)। इन्जीनियर दामाद से सम्बन्ध जमीन-जायदाद बेच कर भी

इसलिए पक्का किया जाता है कि ठेके तो मिलते रहेंगे 'ठेका' (साबिर हुसैन) पदोन्नति के लिए पत्नी को मैनेजिंग डायरेक्टर के पास पति स्वयं भेजता है (स्थिति, बालकृष्ण नीमा)।

इसी तरह पिता-पुत्र के सम्बन्धों में भी तनाव आ गया है। पत्नी की इच्छा (सतीश राज पुष्करणा), जल्लाद (कृष्ण शंकर भटनागर) एवं पापा (केदारनाथ) इसी तथ्य को संप्रेषित करती हुई लघुकथाएँ हैं। इतना ही नहीं, माँ की ममता भी आज महत्त्वहीन हो गयी है। माँ-बेटे की विविध स्थितियों को व्यक्त करने वाली कुछ अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी लघुकथाएँ हैं—'खू-खाता' (कमल चोपड़ा), मृत्यु की आहट (अशोक लव) एवं माँ (प्रबोध कुमार गोविल)।

असंगतियों के इस दौर में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध भी अछूता नहीं है। नकली प्रेम, आर्थिक कारणों से टूटते सम्बन्ध आदि अनेक पहलुओं पर लघुकथाकारों ने अपनी लेखनी चलाई है। वरदान (नरेन्द्र मौर्य) क्षितिज (सतीशराज पुष्करणा), बहू का सवाल (बलराम), खेल (कमल चोपड़ा), और शीतयुद्ध (धीरेन्द्र शर्मा) नारी जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर लिखी गई लघुकथाएँ हैं। नारी-स्वतन्त्रता की बात चाहे जितनी कर ली जाए किन्तु नारी के प्रति पुरुष की धारणाएँ आज भी नहीं बदलीं हैं। हाँ, थोड़ा अन्तर जरूर आया है। फिर भी वह आज भी अकेले अपने ढंग से जीने नहीं पाती, भले ही वह आत्मनिर्भर हो (अनुत्तरित सवाल, निशा व्यास)। कई बार उसे शरीर ढकने के लिए शरीर को ही बेचना पड़ता है अनावृत्त, (तेजपाल) और खेल (कमल चोपड़ा)। खेल में नारी-स्थिति का चित्रण कुछ इस तरह हुआ है कि वीनू की माँ को गलत कार्य करते हुए जान कर भी उसके प्रति घृणा नहीं उपजती बल्कि बेटे वीनू द्वारा पूछा गया प्रश्न पूरी व्यवस्था के समक्ष एक प्रश्नचिह्न खड़ा कर देता है। इसी तरह 'शीत युद्ध' की महिला इन्स्पेक्टर को अपनी और उस देह-रूप-जीवा लड़की की जीवन-स्थितियों में कोई विशेष अन्तर नहीं प्रतीत होता। दोनों एक ही तरह का नरक भोगने के लिए विवश हैं—घर न बसा पाने का नरक और वह भी मात्र परिवार का पेट भरने का इन्तजाम करते हुए।

जीवन की जटिलताओं और विवशताओं से घिरा आज का व्यक्ति अमानवीय स्थितियों के बीच जीने के लिए अभिशप्त है। यह अमानवीयता उच्चवर्गीय संस्कारों की भी हो सकती है—मनोरंजन (कमल चोपड़ा) और सामान्य व्यक्ति की अपनी मजबूरियों की भी—'सुरक्षारोग' (शेखर पागे)। 'मनोरंजन' के चौधरी साहब अपने बच्चे के मनोरंजन के लिए सती को मार-मार कर उसकी हत्या कर देते हैं और मृत्यु के बाद यह समाचार फैला दिया जाता है कि वह आम चुराते हुए पेड़ पर से गिरकर मर गया। 'सुरक्षा रोग' का बूढ़ा बेटे की पत्नी को स्वैराचार करते हुए जानकर भी आहत नहीं होता, खुश होता है क्योंकि उसे पुरुषत्वहीन बेटे का बुढ़ापा

सुरक्षित प्रतीत होने लगता है। यही नहीं आज का जीवन मानवीय अवमूल्यन के उस कगार तक पहुँच गया है, जहाँ आदमी शब्द का अर्थ ही जैसे खो गया है—'आदमी' (विनय कुमार सिंह)। ईमानदार, सच्चरित्र और नैतिक व्यक्ति 'पागल' की महिमा से मंडित होता है—'तलाश' (राघवेन्द्र वर्मा)। इस मानवीय अवमूल्यन के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि मानवीयता पूर्णतया समाप्त ही हो गयी है। मानवीय भावनाएँ आज भी लोगों में जिन्दा हैं, मात्रा भले ही कम हो गयी हो। 'आहट' (अनिल रिसबुड 'बजरंगी'), पहला उपदेश (कृष्ण किसलय), व 'सहानुभूति' (अशोक भाटिया) इसी तथ्य की प्रतिष्ठा करने वाली लघुकथाएँ हैं।

इस वस्तुपरक विश्लेषण के बाद यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वर्तमान लघुकथाएँ जीवन की सच्चाइयों से संपृक्त तथा जनमानस में यथास्थिति के विरुद्ध अँकुराते आक्रोश को वाणी देने वाली हैं। इनमें स्वरूप की वह सुदृढ़ता है, शैली और भाषा का वह प्रखर एवं प्रभावकारी रूप है कि ये सामाजिक बोध के अनेक प्रश्नों के साथ-साथ विसंगत सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों, मानसिक विकृतियों, शोषण, अन्याय, अराजकता और चारित्रिक-नैतिक मूल्यों के ह्रास पर तेज प्रहार करती हुई, उस रचनात्मक पड़ाव की ओर बढ़ रही हैं, जहाँ उनकी मूल चिन्ता व्यवस्था के कुचक्र में पिस रहे सामान्य व्यक्ति के संघर्ष को वाणी देना और इस तरह मानव-जीवन की बेहतरी के संघर्ष में अपना योग देना है।

हिन्दी विभाग,
सोमैया विनय मन्दिर,
विद्याविहार, बम्बई–७७

॥ ८ ॥

☐ श्रवण कुमार गोस्वामी

लघुकथा : सम्भावनाएं एवं आशंकाएं

वे दिन मुझे अच्छी तरह याद हैं, जब हिन्दी की पत्रिकाओं में केवल खलील जिब्रान की अनूदित लघुकथाएँ पढ़ने को मिला करती थीं। बाद में रावी की मौलिक हिन्दी लघुकथाएँ भी दिखाई पड़ने लग गयीं। पर, आज तो स्थिति यह है कि प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में लघुकथाओं को स्थान मिलने लग गया है और लगता है कि लघुकथाओं तथा लघुकथा लेखकों की बाढ़-सी आ गयी है। केवल लघुकथा प्रकाशित करने वाली कई छोटी पत्रिकाओं का उदय और अस्त साथ-साथ ही हुआ और जो पत्रिकाएँ अभी निकल भी रही हैं, उनकी सांस उखड़ने लगी है। पिछले दो दशकों में अनेक लघुकथा संग्रह प्रकाशित हुए और कुछ विवादों को जन्म देकर एक किनारे लग गये। अब लघुकथा के नाम पर प्रतियोगिताओं, शिविरों, सम्मेलनों एवं उत्सवों का एक नया दौर शुरू हो गया है। बहसों एवं आन्दोलनों की सहायता से लघुकथा को उछालने के प्रयास तेज हो गये हैं। लघुकथा लेखकों के अनेक क्षेत्रीय शिविर बन गये हैं और हर शिविर के सूत्रधार ने अपने को "लघुकथा का जनक" घोषित कर दिया

है। परिणाम यह है कि ये सभी जनक अब एक दूसरे से भिड़ने के लिए ताल ठोंक रहे हैं और अपने को "चक्रवर्त्ती" सिद्ध करवाने में लगे हैं। ये लोग पुराने साहित्य-शास्त्र को नकारते हुए लघुकथा के लिए एक स्वतन्त्र शास्त्र गढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। कुछ लोगों की दृष्टि में तो लघुकथा नाम ही गलत है। चूँकि लघुकथा में व्यंग्य की प्रधानता होती है, इसलिए कुछ लोग इसे व्यंग्यकथा कहना पसन्द करते हैं। कुछ लोगों को "लघु" विशेषण से ही चिढ़ है, फलतः ये लोग "लघु" के स्थान पर "अणु" विशेषण का प्रयोग करते हुए इसे "अणुकथा" कहने की जिद पाल रहे हैं। इस तरह अभी इसका भी निश्चिय होना शेष ही है कि लघुकथा के नाम पर आज जो हजारों रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं उन्हें किस नाम से अभिहित किया जाये—लघुकथा अथवा व्यंग्यकथा अथवा अणुकथा ?

"लघुकथा" क्या एक विधा नहीं है ? इस प्रश्न ने भी लघुकथा के आन्दोलन-कारियों को विचलित बना रखा है। इनका आग्रह है कि "लघुकथा" कहानी, उपन्यास, नाटक आदि की तरह ही एक स्वतन्त्र विधा है। परन्तु, इनके विरोधी लघुकथा को स्वतन्त्र विधा मानने को तैयार नहीं हैं। वे इसे कथा की ही एक उप-विधा मानते हैं। लघुकथा के उन्नायकों को क्यों तो यह एक गलतफहमी-सी हो गयी है कि जब तक लोग लघुकथा को स्वतन्त्र विधा नहीं मान लेते—लघुकथा की अस्मिता बराबर खतरे में रहेगी।

लघुकथा के आन्दोलनकारी क्या कहते और मानते हैं, उन पर ध्यान न देते हुए यह देखना ज्यादा उचित है कि आम पाठक ने लघुकथा को किस रूप में स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में मैंने अनेक पाठकों से बातचीत की है, जिनमें परिष्कृत साहित्यिक रुचि के लोग भी सम्मिलित हैं। प्रायः सबने यह स्वीकार किया कि वे पत्रिकाओं में कुछ पढ़ें या न पढ़ें, पर वे लघुकथा अवश्य पढ़ते हैं। एक प्रबुद्ध प्राध्यापक ने तो यहाँ तक कहा—"सबसे पहले मैं लघुकथाएँ खोज-खोजकर पढ़ता हूँ और फिर उसके बाद किसी रचना की ओर ध्यान देता हूँ।" स्पष्ट है कि लघुकथा ने पाठकों को बहुत तेजी से अपनी ओर आकृष्ट किया है और इसकी लोकप्रियता निरन्तर बढ़ती ही जा रही है। चन्द मिनटों में एक पूर्ण अनुभूति को सूत्र रूप में व्याख्यायित करने की जो क्षमता लघुकथा में है, उसी ने पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। यह ध्यान देने की बात है कि जो लघुकथाएँ पाठकों के द्वारा पसन्द की जा रही हैं, वे किसी आन्दोलन या खेमें की उपज नहीं हैं। यह शुभ लक्षण है कि अब तक लघुकथा का किसी "वाद" से गठबन्धन नहीं हुआ है। मेरे जानते यही लघुकथा की प्राणशक्ति है। लघुकथा को यदि अपने स्वाभाविक विकास का इसी प्रकार अवसर मिलता रहा, तो मैं यह स्पष्ट देख रहा हूँ कि यह रचना पाठकों की पहली पसन्द भी हो सकती है। लघुकथा की ओर केवल लम्बी-लम्बी कहानी से ऊबे हुए पाठक ही आकृष्ट नहीं हो रहे हैं; बल्कि ऐसे पाठक भी इसे स्वीकार कर रहे हैं,

जो "अबूझ" कविताओं के भार से अपने को बचाना चाह रहे हैं। मेरी दृष्टि में लघुकथा—कहानी, कविता और व्यंग्य तीनों के बीच से अपने लिए एक स्वतन्त्र राह बहुत तेजी से बना रही है। यह तो समय ही बतायेगा कि इन तीनों के संगम से निकलने वाली धारा कालान्तर में किस नाम से पुकारी जायेगी। यहाँ यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि जब से व्यंग्य को पत्र-पत्रिकाओं में "साप्ताहिक राशि-फल" तथा "फिल्मी समाचार" की तरह अनिवार्य बना दिया गया है—व्यंग्य की धार भोथर पड़ने लगी है और व्यंग्य के नाम पर गाली-गलौज तक लिख डालने की प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी है। अनिवार्यता से उत्पादन तो सम्भव है, पर सर्जना नहीं।

मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि लघुकथा का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। परन्तु, इसका अर्थ यह कभी भी नहीं लिया जाना चाहिए कि लघुकथा से कविता, कहानी तथा व्यंग्य को किसी प्रकार का कोई खतरा भी है। परन्तु, लघुकथा के सम्बन्ध में, मेरे मन में, कुछ आशंकाएँ भी हैं। मेरे जानते लघुकथा को सबसे अधिक खतरा लघुकथाकारों एवं इसके क्षेत्रीय ठेकेदारों से ही है। इनमें से प्रत्येक ठेकेदार के साथ लघुकथा लेखकों का एक बड़ा हुजूम भी है। यह हुजूम लघु-कथा के नाम पर कुछ भी लिख रहा हैं। नयी कविता के जमाने में जैसी अराजकता देखी गयी थी, लगभग वैसी ही अराजकता आज लघुकथा के क्षेत्र में भी देखने को मिल रही है। अधिकांश लघुकथा लेखकों को प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में स्थान नहीं मिल पाता और यह सम्भव भी नहीं। परिणाम यह है कि प्रत्येक गुट अपनी स्वतन्त्र पत्रिका प्रकाशित कर अपने को उद्‌घाटित, स्थापित तथा बहुचर्चित कर रहा है। इनमें से जो बहुत "तेज" हैं, उन्होंने तो लघुकथा को "खाने-कमाने" का एक अच्छा धन्धा ही मान लिया है। यहाँ मैं अपने को एक दृष्टान्त देने से रोक नहीं पा रहा हूँ। यह बताना इसलिए आवश्यक है ताकि लोगों को यह मालूम हो सके कि लघु-कथा के नाम पर कैसे-कैसे कारनामे चल रहे हैं। शायद यह सन् १९८० की घटना है। हरियाणा की श्रीमती शमीम शर्मा ने लघुकथा लेखकों से रचनाएँ मँगवायीं। एक पत्र मुझे भी मिला। मैंने भी एक लघुकथा भेज दी। फिर मार्च १९८३ में श्रीमती शर्मा का एक पत्र मिला, जो इस प्रकार है—

द्वारा पं० सीता राम शर्मा
९५–ए, हेतराम कालोनी,
हिसार
दिनांक : ९–३–८३

प्रिय महोदय,

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि लघुकथा का वृहद् ग्रन्थ "हस्ताक्षर" प्रकाशित हो चुका है। अप्रत्याशित सकारणीय विलम्ब के लिए मुझे अति खेद है।

दो सौ चालीस पृष्ठों के इस लघुकथा संग्रह में १६४ लेखकों की लघुकथाएँ संकलित हैं और साथ ही लघुकथा के स्वरूप व विकास को प्रस्तुत किया गया है। चर्चित ६२० लघुकथा-सर्जकों की लघुकथाओं की सूची है। अब तक प्रकाशित एवं कतिपय प्रकाश्य कुल ७१ लघुकथा संग्रहों का परिचय है। इसके अतिरिक्त ३२० व्यावसायिक/अव्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं की सूची पतों सहित दी गई है, जो लघुकथाएँ प्रकाशित करती हैं।

आपकी एक लघुकथा पृष्ठ १८२ पर प्रकाशित है। एक सौ रुपए की यह कृति आपको ७०% छूट पर मात्र तीस रुपए में प्रदान की जाएगी। पाठकों के लिए यह छूट २०% है। इस संग्रहणीय ग्रन्थ की संप्राप्ति हेतु यथाशीघ्र तीस रुपए केवल मनीआर्डर द्वारा निम्न पते पर भेजें ताकि पुस्तक प्रेषित की जा सके।

कृपया अपने से सम्बन्धित पत्रिका में उक्त सूचना विज्ञापित कर कृतार्थ करें।

सम्पूर्ण सहकार की आशा में।

भवदीया :

हस्ताक्षर अस्पष्ट

[शमीम शर्मा]

मैंने तीस रुपये भेजकर ग्रन्थ की एक प्रति मंगवा ली। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि यह एक उपयोगी प्रकाशन है और इसके लिए श्रीमती शर्मा की प्रशंसा की जानी चाहिए। पर, इस प्रकाशन के साथ कुछ सवाल भी जुड़े हुए हैं, जिन पर भी ध्यान देना बहुत जरूरी है। नियमतः जिन लेखकों की रचनाएँ इस ग्रन्थ में सम्मिलित हैं, उन लेखकों को इस पुस्तक की एक-एक प्रति मानार्थ निःशुल्क मिलनी चाहिए थी। मगर, ऐसा न कर श्रीमती शर्मा ने निजी स्वार्थ के लिए लघुकथा को तिजारत का माध्यम बना लिया। सबसे मजे की बात तो यह है कि श्रीमती शर्मा ने पूरे ग्रन्थ के कॉपीराइट की अधिकारिणी भी अपने को ही घोषित कर दिया। भारत के लोग बड़े सहनशील और इससे ज्यादा लापरवाह किस्म के होते हैं, इसलिए यहाँ सब चल जाता है। लेकिन, यदि कोई श्रीमती शर्मा पर यह मुकदमा ठोक दे कि उसकी लघुकथा का कॉपीराइट उन्हें कहाँ से और कैसे प्राप्त हो गया, तो श्रीमती शर्मा को आटे-दाल का सही भाव मालूम हो जाये। यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं कि श्रीमती शर्मा ने "हस्ताक्षर" के माध्यम से कितनी कमाई की होगी। सन् १६८२ में राजकमल प्रकाशन ने मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास "कसप" अच्छे कागज पर छापा। कसप में ३०६ पृष्ठ हैं। इसका मूल्य चालीस रुपये रखा गया। "हस्ताक्षर" भी अगस्त १६८२ में प्रकाशित हुआ। इसमें २४० पृष्ठ हैं, फिर भी घटिया कागज पर छपे इस ग्रन्थ का मूल्य एक सौ रुपये रखा गया। इसके लेखकों पर श्रीमती शमीम शर्मा ने बड़ी मेहरबानी करके सत्तर प्रतिशत छूट दे

दी । वस्तुत: पच्चीस रुपये की किताब तीस रुपये में बेचकर श्रीमती शर्मा ने लेखकों का कैसा शोषण किया—यह विचारणीय है ।

यदि सहकारिता के आधार पर कोई प्रकाशन किया जाता है, तो उस पर किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती । ऐसे प्रकाशन होते रहे हैं और कभी-कभी ऐसा करना आवश्यक भी हो जाया करता है । लेकिन, किसी से रचना मंगवाकर उसे पुस्तक की एक प्रति भी न दी जाये और उससे यह कहा जाये कि आप एक प्रति खरीदें [सहयोग के नाम पर सही] यह ऐसी बेशर्मी है, जिसके सामने बेशर्मी भी लज्जित है । यहाँ मैंने इस घटना का उल्लेख इसलिए कर दिया है ताकि लोगों को यह मालूम हो सके कि लघुकथा की सेवा के नाम पर कैसे-कैसे नाटक किये जा रहे हैं ।

कुछ क्षेत्रीय लघुकथा सम्मेलनों एवं उसके उत्सवों के जो समाचार मिलते हैं, उनसे यही पता चल सका है कि लघुकथा के उन्नायकों को वास्तव में लघुकथा के उन्नयन की चिन्ता कम है । उनकी मुख्य चिन्ता यही है कि उन्हें पूरा हिन्दी-संसार जल्दी-से-जल्दी "महान्" मान ले और यह भी घोषित कर दे कि आज की सर्वोपरि विधा लघुकथा है ।

लघुकथा जहाँ एक ओर अनन्त सम्भावनाओं से युक्त है, वहाँ दूसरी ओर इसके साथ-साथ अनेक आशंकाएँ भी जुट गयी हैं । इन आशंकाओं के जन्मदाता राजनीतिज्ञ नहीं, अपितु लघुकथा के ऐसे ठेकेदार हैं, :जो शीघ्र से शीघ्र अपने को पहले और लघुकथा को बाद में महिमामण्डित देखना चाहते हैं । बस, इन्हीं लोगों से लघुकथा को खतरा है । यह कहना अनुचित नहीं होगा कि साहित्य के क्षेत्र में न तो कोई पूर्वनिर्धारित योजना ही काम आती है और न षड्यन्त्र ही । साहित्य का विकास-चक्र अपनी चाल में ही चलता है । इसे तेज करने के लिए न तो तेल की जरूरत होती है और न ग्रीस की । इसे गतिमान बनाये रखने के लिए किसी गति-वर्द्धक की भी आवश्यकता नहीं पड़ती । साहित्य-चक्र के ऊपर न तो आन्दोलनों का प्रभाव पड़ता है और न जिन्दाबाद और मुर्दाबाद का । इसलिए लघुकथा के कथित क्षेत्रपतियों से केवल यही आग्रह करना है कि लघुकथा के नाम पर वे अपनी उछल-कूद बन्द करने की कृपा करें । उनकी अनावश्यक उछल-कूद से लघुकथा का अहित ही होगा । उन्हें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि लघुकथा ने जमीन में जड़ें पकड़ ली हैं और भविष्य में ही यह स्पष्ट हो पायेगा कि इन जड़ों से विकसित होने वाली वनस्पति पेड़ कहलाने की अधिकारिणी होगी कि पौधा ? ●

—आश्रम, नई नगड़ा टोली, चौथी गली (पूरब)
राँची—८३४००१

॥ ९ ॥

□ राधेलाल बिजघावने

लघुकथा की आलोचना-पद्धति

क्या लघुकथाओं की कोई आलोचना–पद्धति है ? इस सवाल के अतल में जितने गहरे उतरा जाये, उतना ही ज्यादा हड़कंप लघुकथाओं के क्षेत्र में देखने को मिलता है। यह सवाल हर लघुकथा लेखक और उसकी लेखकीय दुनिया तथा हर आलोचक एवं उसकी समीक्षा–दृष्टि को बारीकी से जाँचता है और एक अलग तरह का हादसा, आंतक्र और चिंता पैदा करता है।

मूल चिंता की बात तो यह है कि अभी तक लघुकथा लेखन की पद्धति ही तय नहीं हुई। फिर आलोचना पद्धति के तय होने का सवाल ही कहाँ उठता है। आज लघुकथाकारों के समक्ष सबसे अहम सवाल यह है कि लघुकथाएँ कैसी लिखी जाएँ, उसकी परिभाषा व आकार क्या हो; उसकी पद्धति क्या हो। इस सम्बन्ध में

हर लघु कथा लेखक अपनी अलग लेखन–पद्धति ईजाद करता है। इसलिये लघु कथाओं की भाषा, शैली, शिल्प, कथन, कथोपकथन, कन्टेन्ट (कथ्य), कलात्मकता, लघु कथा, विधा अथवा उपविधा हैं, लघु कथाएँ, घटना-कथाएँ, व्यंग्यात्मक तेवर, आकार-प्रकार, लघुकथाओं में काल–सन्दर्भ, बिम्ब, प्रतीक आदि विषयों पर कई लेख आये हैं, जिन पर अभी तक कोई अंतिम, सर्वग्राह्य निर्णय नहीं हुआ है। सभी को अपना झंडा गाड़ने की पड़ी है। अपने जुलूस की तैयारी की चिंता है। मूल चिंता और चिंतन के विषय तो उनके लिये गौण हैं। लघुकथाएँ उनके लिये शतरंज की मोहरें या ताश के पत्ते हैं, जिन्हें वे केवल मानसिक संतोष के लिये खेलते हैं। अपना नाम उछालने के लिये इस्तेमाल करते हैं, अपने लेखकीय व्यक्तित्व की पहचान बनाने के लिये नहीं। इसकी वजह यह है कि हर लघुकथा लेखक की मूल विधा तो कहानी है अथवा कविता अथवा समीक्षा। इन मूल विधाओं में इस तरह का खेल उनके लिये सम्भव नहीं ! गुंजाइश भी नहीं क्योंकि इनमें गम्भीरता से काम किया जाता है। खोजों तथा अन्वेषणों को महत्व दिया जाता है अथवा खेल के मैदान में टिकने नहीं दिया जाता है। यही वजह है कि लघुकथाओं का खेल-मैदान हार और जीत का मैदान नहीं। ऐसा खेल नहीं जहाँ खेल-स्तर गिरने पर खिलाड़ी होने की मान्यता से ही बर्खास्त कर दिया जाये। यहाँ तो गैर लघुकथा लेखक को प्रथम श्रेणी का लघुकथा लेखक का सम्मान मिलता है और इसके विरूद्ध कोई आवाज नहीं उठती। वजह यह है कि लोग अपने जुलूस को बढ़ाना चाहते हैं। अपना दबदबा राजनैतिक क्षेत्र में बढ़ाकर सम्मानित होना चाहते हैं। इसलिये असली-नकली का सवाल नहीं है। सवाल अपने झण्डे की सुरक्षा और शक्ति-परीक्षण का है।

यही कारण है, लघुकथाओं को महत्त्वपूर्ण एवं गम्भीर लेखन में प्रवेश नहीं मिल सका है। आज कविता, कहानी, आलोचना का जो दबदबा है, लघु कथाओं का का नहीं। लघु कथा लेखक का भी नहीं। लघु कथा लेखक की स्थिति तो फुटपाथ पर रहने–बसने वाले लोगों की ही तरह है, जहाँ घृणा है, उपेक्षा व तिरस्कार है। हम-दर्दी किसी महत्त्वपूर्ण कवि या लेखक अथवा आलोचक द्वारा दिखायी जाती है तो इसलिये नहीं कि लघु कथा लेखक लेखक है, बल्कि इसलिये कि वह बेचारा है, छोटा-गरीब है, उसके हालात दयनीय हैं।

इसके बावजूद लघु कथा लेखकों की शिकायत है कि अच्छे लघु कथा आलोचक उपलब्ध नहीं, जो लघुकथाओं की गम्भीरता को समझें। दूसरी ओर आलोचक लघुकथाओं पर आलोचनात्मक लेख लिखने की जोखिम उठाने से इसलिये डरता है कि लघुकथाएँ ऐसी होती ही नहीं कि उन पर वे गम्भीरता से आलोचना करें। कूड़े-कर्कट में कलम घुमाने से उसकी आलोचनात्मक प्रतिष्ठा न

केवल कम होती है, बल्कि खतरे में पड़ जाती है। वे आलोचकों की लाबी में हेय हो जाते हैं।

आज लघुकथाओं की दुनिया में यह हो रहा है कि एक लघुकथा लेखक उन्हीं लघुकथा लेखकों का पारिवारिक आलोचक है, जो उसकी लघुकथाओं की गम्भीरता को पहचान कर उन पर बार-बार लेख लिखें। इस तरह आलोचना परस्पर एक्सचेंज का काम कर रही है, जिसमें दोस्ती तो अच्छी निभ रही है पर रचनात्मक गम्भीरता की उपेक्षा हो रही है।

सवाल यह है कि आलोचक की भूमिका क्या होनी चाहिये ? आलोचक को हॉन्ट डॉग होना चाहिये या बार्किंग डाग ? हांट डॉग रचनाकार को चोट पहुँचाता है। यह चोट अच्छे या घटिया दोनों ही स्तर के रचनाकारों के लिये समान रूप से सम्भव है। जबकि बार्किंग डॉग की वास्तविक जगत में उपयोगिता नहीं होती। उस के भौंकने से कोई गम्भीर खतरा नहीं होता। अतएव जरूरत यह है कि आलोचक की भूमिका बार्किंग डॉग की हो, जो समूचे कथा-लेखन पर वॉच रखे और थोड़ी भी कमी-बेसी हो अथवा कोई कथा लेखक गम्भीरता भंग करे तो फौरन उसे पकड़ ले, और फिर उसकी अच्छी तरह पेशी करे।

वास्तव में आलोचक की कार्यवाही छनना-कागज की तरह है। वह रचना को पानी की तरह छानता है या अनाज छानने वाले छनने की तरह। वह सभी लेखकों के लिये समान दृष्टि, समान व्यवहार करता है। इसके साथ ही वह कचरा अलग कर देता है अच्छा माल अलग निकाल देता है। उसकी ग्रेडिंग भी करता है कि माल कितने प्रतिशत शुद्ध या स्तरीय है। इस तरह की आलोचना कथा लेखक के लिये एक गाइड-लाइन होती है, जो निरपेक्ष रूप से बता देती है कि कथा-लेखक किस ऊँचाई पर खड़ा है। वर्तमान लेखन में उसकी स्थिति क्या और कहाँ है। यहाँ किसी कथा-लेखक के साथ पक्षधरता की बात नहीं रह जाती है। बात होती है सिर्फ समान दृष्टिकोण और समान ट्रीटमैंट की। यहाँ आलोचक न तो किसी कथा-लेखक का दोस्त होता है और न ही दुश्मन। वह पथ-प्रदर्शक होता है। उसकी आलोचना ऐसे समय समय क्रिएटिव होती है। उसे न तो किसी कथा लेखक की खुशी से वास्ता होता है और न ही उसके ऐंग्री मूड से।

आलोचना के फिल्टर प्लांट आज लघुकथा संसार में नहीं हैं। लघुकथाएँ भी ऐसी नहीं हैं, जिन्हें फिल्टर प्लांट में छानने योग्य समझा जाये। इसलिये आज की लघुकथाओं की स्थिति निश्चित ही गम्भीर है। लघुकथा लेखकों के लेखकीय व्यक्तित्व का न तो कोई प्रभाव है और न ही कोई लघुकथा लेखक व्यक्तित्व ही सही रूप

में कंस्ट्रक्ट हो सका है। दुकानदारी हर जगह है, जो अपने रद्दी माल को चोखा कर बेचने में गम्भीरता से सक्रिय हैं।

आलोचना का काम निश्चित ही गम्भीर तथा कठिन कार्य है जहाँ रिस्क ही रिस्क है। नाराजी ही नाराजी उसके पल्ले पड़ती है। दोस्ती एक ही झटके में टूट जाती है। दुश्मनी हर जगह। अतएव निरपेक्ष आलोचक की स्थिति चलन से बाहर निकाले गये सिक्के की तरह उपेक्षित ही होती है क्योंकि सामने कई चैलेन्ज होते हैं, जिसे स्वीकारना और निबटना भी होता है। बड़ा आलोचक छोटे आलोचक को तो उसी उसी तरह निगल जाता है, जिस तरह बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है।

आलोचना की भी अपनी भाषा होती है। आलोचक को जिसे अर्जित करना पड़ता है। आलोचना की भाषा अर्जित करना कठिन काम है। वर्षों भाषा की ट्रेनिंग लेनी पड़ती है और भाषा की तैयारी करनी पड़ती है। वर्षों बाद ही आलोचना की भाषा तैयार हो पाती है। आलोचक का आलोचना की भाषा मात्र अर्जित करने से काम नहीं चलता। उसे विषय का ज्ञान होना भी आवश्यक है। उसे संबंधित विधा के इतिहास का पूर्ण ज्ञान रखते हुये वर्तमान लेखन का सर्वे भी करते रहना चाहिये उसे उस ऊँचाई पर बैठ कर पूरे विश्व साहित्य का निरीक्षण-परीक्षण कर निर्णय देना चाहिये, जहाँ से सम्पूर्ण विश्व के कार्य कलापों की एक-एक पल की जानकारी मिल सके। इसके बाद भविष्य की चिंता और चिंतन के साथ-साथ आगामी पड़ाव उसके रास्ते की खोज भी उसे करनी पड़ती है जो अत्यन्त ही कठिन और जिम्मेदारी का कार्य है, जिसे हर कोई सम्पन्न नहीं कर पाता है।

आलोचक की अपनी एक दृष्टि, किंचनधारा तथा दर्शन भी होता है जो उसके आलोचनात्मक चरित्र की पहचान तथा मानदण्ड निर्धारित करता है, जिसमें उसका वैचारिक पक्ष तथा सोच दोनों ही अंतर्निहित होता है, जो उसके आलोचनात्मक चरित्र को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कंस्ट्रक्ट करता है।

मुक्तिबोध ने आलोचक को हवलदार के रूप में स्वीकार किया है जबकि अशोक बाजपेयी यह मानकर चलते हैं कि आलोचक एक थानेदार की तरह होता है, जहाँ रचनाकार की छोटी से छोटी गलती पकड़ी जाती है। वह गलत को स्वीकारता नहीं। अनियमितता बर्दाश्त नहीं करता। चोरी और जुल्म के खिलाफ उसकी कार्यवाही मुस्तैदी के साथ होती है। उसकी आलोचना के हंटर की मार कथा लेखक की तमाम भूलों का अहसास कराती है।

अतएव आलोचक निर्णय के दौर से जब गुजरता है तो उसकी भूमिका निश्चित ही विद्वान जज की तरह होती है, जिसके कटघरे में हर कथा लेखक को

आना पड़ता है। लेखक को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का पूरा-पूरा मौका देने के बाद ही अंतिम निर्णय दिया जाता है।

आज हिन्दी की लघुकथाओं की स्थिति यह है कि वे आलोचना के कटघरे में आना स्वीकार नहीं करतीं क्योंकि उनकी तमाम कमियाँ निश्चित ही खुलकर सामने आ जाती हैं। ये मित्र रचनाकार और मित्र आलोचना की तलाश में रहती हैं, जो इनकी रचनाओं में खूबियों की तलाश करते हैं। अतएव विश्व स्तर पर कोई भी लघुकथा नहीं आई है। और न ही कोई लघुकथा लेखक विश्व स्तर पर अपनी पहचान बना सका है। वर्तमान लघुकथाओं की आन्तरिक दुनिया में प्रवेश करने से बहुत साफ रूप में यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान लघुकथाओं का कोई सोच ही नहीं है। उनमें कोई वैचारिकता नहीं है। जो कुछ लिखा गया है, उसी का अंधा अनुकरण है। इसलिये केवल घटनाक्रमों का मात्र चिट्ठा प्रस्तुत करती हैं और व्यंग्य कसती हैं। इनमें समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व कतई नहीं है। ये मनुष्य के प्रति सचेतन भी नहीं हैं। वर्ग और वर्ण-चेतना की बात को ये ट्रेडमार्क के रूप में चलाती हैं। गरीबी-भुखमरी का झंडा खड़ा कर मांग जुलूस निकालती हैं जो एक साधन एवं माध्यम के रूप न इस्तेमाल होते हैं, समस्या और समाधान के रूप में नहीं।

लघुकथाओं में लघुकथाकारों ने कोई नई भाषा खड़ी नहीं की, जिससे यह पहचाना जा सके कि यह लघुकथा है और यह लघुकथा की भाषा है। ये तो व्याकरण के नियमों में डुबकी मार-मार कर थक गये हैं। लघुकथा लेखन के समय लेखक के दिमाग में व्याकरण नहीं आता, कथा वस्तु आती है, सोच आता है, वैचारिकता आती है और आदमी तथा समाज के प्रति उसका दायित्व होता है जो दर्शन के परिप्रेक्ष्य में उपस्थित होता है।

लघुकथा की भाषा की तैयारी में व्याकरण तो संपूर्ण रूप से उपस्थित होता ही है, कला, शिल्प और कला-सौन्दर्य भी उपस्थित होता है। ये सब कन्टेन्ट के साथ जरूरत के मुताबिक भाषा की साधना या उसकी तैयारी के प्रतिशत में ही आते हैं। कच्ची भाषा में कला, शिल्प, व्याकरण सभी कच्चे माल की तरह प्रयुक्त रहते हैं जबकि उत्कृष्ट भाषा में उत्कृष्टता के साथ।

लघुकथा का भाषा-शैली कैसी हो, इस सम्बन्ध में यह साफ रूप से कहना उचित होगा कि यह भाषा, शिल्प एवं शैली मकड़ी के जाले की तरह होनी चाहिये, जिसमें सम्पूर्ण कला-निपुणता हो। लघुकथाओं में अभी ऐसी निपुणता, गम्भीरता नहीं आई है। अतएव लघुकथा-लेखन-पद्धति ही अभी निश्चित नहीं हो सकी है।

मात्र अन्ध परम्परा, अन्ध लेखन चल रहा है, जो दिशाहीन ही कहा जा सकता है।

आलोचक का काम लघुकथाओं में गलती ढूँढना और रचनाकार को दोषी करार देना मात्र नहीं है। उसकी खूबियों की तलाश कर उन्हें रेखांकित करना भी उसका दायित्व है, जिसे वह करता भी है।

पालतू आलोचक तथा विरोधी खेमे के आलोचक अपनी आलोचना एक आँख बन्द कर एवं दूसरी आँख खोलकर करते हैं जो पूरी तरह एक पक्षीय होती है तथा जो कथा लेखक को मिसगाइड करती है क्योंकि उसे अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान कभी नहीं हो पाता। वह दिशाहीन ही भटकता रहता है तथा अपना व्यक्तित्व कायम नहीं कर पाता। ऐसी आलोचना घातक होती है, चोट पहुँचाने वाली भी। इस सम्बन्ध में मयाकोव्स्की का कथन प्रासंगिक है कि—"मैं दूसरों की आलोचना करना, उसका मजाक उड़ाना पसन्द करता हूँ परन्तु मुझ पर जो चोट की जाती है, उसकी बहुत दिनों तक कसक बनी रहती है। मैं हर चीज को नकारात्मक दृष्टि से देखता हूँ परन्तु मैं आदर्शों को नहीं जीवन के रूपों को अस्वीकार करता हूँ क्योंकि ये सब मुझे झूठे लगते हैं।"

रचनाकार और आलोचक को यह साफ रूप से समझ लेना चाहिये कि नकारात्मक दृष्टिकोण कहाँ अपनाना है। कहीं वे ऐसा तो नहीं कर रहे कि उनके नकारात्मक दृष्टिकोण से आदर्श, सच्चाई, मानवीय दृष्टिकोण, सामाजिक दायित्वों से दूर तो नहीं हो रहे हैं। मानवीय मूल्यों की हत्या तो नहीं कर रहे हैं क्योंकि मैक्सिम गोर्की के शब्दों में कहा जाये तो 'शब्दों की यन्त्रणा से बढ़ कर संसार में और कोई यन्त्रणा नहीं।'

तोलस्तोय ने आलोचक के सम्बन्ध में थोड़े से में लिखा है—"आलोचक को विचारक से अधिक चतुर और कलाकार से अधिक प्रतिभाशाली होना चाहिये।" स्पष्ट है कि आलोचक को कथा लेखक से कहीं ज्यादा ही खोजी, अन्वेषी, चतुर कलाकार होना चाहिये तभी वह सही आलोचक की हैसियत ग्रहण कर सकता है तथा अपनी गरिमा स्थापित कर सकता है।

जब तक लेखक आलोचना के हथियार से ठोक-पीट कर कलाकार को ठीक नहीं करता है तब तक वह सही रचना का सही साँचा-ढाँचा नहीं बना पाता है। वास्तविकता का द्वन्द्व भी वही कार्य करता है जो आलोचक का होता है। इसी द्वन्द्व के फलस्वरूप रचनाकार दुनिया का सत्यपूर्ण चित्र गढ़ता है। इस सम्बन्ध में नाओमी निचीसन ने लिखा है, विचारों के हिंस्र हथौड़े उस पर बरसाता है। सृजन की

समूची प्रक्रिया, कलाकार की सम्पूर्ण वेदना, वास्तविकता के साथ इसी हिंस्र द्वन्द्व में और दुनिया का एक सत्यपूर्ण चित्र गढ़ने के इस प्रयास में निहित है।"

लघुकथा संसार अभिव्यक्ति की दुनिया में सबसे गरीब और उपेक्षित दुनिया है। इसकी वजह अभी लघुकथा लेखन की पद्धति एवं आलोचना पद्धति विकसित नहीं हुई है जो एक गम्भीर तथा जरूरी समस्या है जिस पर रचनाकारों तथा आलोचकों का ध्यान केन्द्रित होना नितांत आवश्यक है अन्यथा लघुकथा लेखक अछूतों की ही तरह बार-बार कवियों और कथाकारों द्वारा अपमानित होते रहेंगे जो निश्चित ही दुखद यथार्थ होगा।

जी—13/22, नार्थ टी० टी० नगर
जवाहर चौक, भोपाल—462003

●

॥ १० ॥

☐ डा० वेदप्रकाश अमिताभ

हिन्दी लघुकथा, शिल्प संदर्भ

'हिन्दी लघुकथा कोश' में 'हिन्दी लघुकथा का सफरनामा' के अन्तर्गत बलराम ने लिखा है······जबकि छपे हुये शब्द पर संचार माध्यमों का जबरदस्त हमला हो चुका है। ऐसे में लघुकथा के प्रभावी विधा के रूप में स्थापित हो जाने की सम्भावनायें बहुत ज्यादा बढ़ गयी हैं। लोगों के पास जितना कम समय रह गया है, उसमें साहित्य के रूप में लघुकथा ही उनके करीब स्थान पा सकती है। लघुकथा की 'लघुता' जहाँ एक ओर उसका विशेष गुण है, वहीं दूसरी ओर उसकी सीमा भी बन जाती है। बहुत से दोयम दर्जे के रचनाकार केवल इसीलिये लघुकथा पर कलम चलाते देखे जा सकते हैं कि इसका आकार लघु है। लघु कलेवर के चलते लघुकथा को कथन पद्धति में एकरसता और वैविध्यहीनता की आशंका भी बल पकड़ती है। लेकिन हिन्दी

की बहुत सी लघुकथाओं को देखने पर यह सुखद आश्चर्य होता है कि छोटे से क्षेत्रफल के भीतर भी लघुकथाकारों ने शिल्प सम्बन्धी अनेक सार्थक प्रयोग किये हैं। लघु कथाओं में यदि प्रतीकात्मकता, व्यंग्यधर्मिता, नाटकीयता आदि का सफल उपयोग हुआ है तो फ्लैशबैक, फैंटेसी, मिथक, आदि के सहयोग से भी अभिव्यंजना को पुष्ट और प्रखर बनाया गया है।

कुछ लघुकथाओं में पंचतन्त्र, जातक कथाओं आदि के प्रतीकात्मक शिल्प का सीमित प्रयोग आधुनिक विसंगतियों को रेखांकित करने के लिये किया गया है। पशुओं और पक्षियों को प्रतीकों के रूप प्रयुक्त करते हुये अभिप्रेत अर्थ को खोलना इन लघुकथाओं का उद्देश्य है। 'शहीद बकरी' (अयोध्या प्रसाद गोयलीय), 'सीमा का अतिक्रमण' (सतीशराज पुष्करणा), 'आजादी' (बालेन्दु शेखर तिवारी), 'चाँद और रोटी' (देवी प्रकाश), 'अकाल' (नंदल हितैषी), 'सिंह न्याय' (रामनारायण उपाध्याय) आदि लघुकथाओं में प्रतीकात्मकता गझिन और दुरुह न होकर सरलता से ग्राह्य है। उदाहरण के लिये 'शहीद बकरी' में 'बकरी' और 'भेड़िया' शोषित और शोषक के चिरपरिचित प्रतीक हैं, इसलिये कथा इस बिन्दु तक सफलतापूर्वक ले जाती है कि अन्याय के विरोध का मूल्य होता है, भले ही यह व्यक्तिगत स्तर पर ही क्यों न हो। 'आजादी' में दो कुत्तों की बातचीत से स्वतन्त्रता के मूल्य की महनीयता व्यक्त हुई है—'अपना समाचार देते हुए फोनी ने फरमाया—'हमारे यहाँ खाने-पीने का तो बड़ा आराम है, लेकिन मेमसाब भौंकने नहीं दे रही हैं।' आजादी को लेकर एक अवसर-वादी रवैया 'अकाल' (नन्दल हितैषी) में उभरा है। लेकिन यह लघुकथा इस सत्य को किंचित् भी व्यंजित कर सकी है कि आजादी का सवाल भूखे पेट नहीं उठता। इन सभी लघुकथाओं में प्रतीकात्मक कथनपद्धति के साथ नाटकीय शिल्पविधि भी सम्बद्ध है। नाटकीय शिल्पविधि उन लघुकथाओं से खासतौर पर द्रष्टव्य है, जो केवल संवादों से बुनी गयी है।'खुसुर-पुसुर' (अशोक जैन), 'परदेशी-पाँखी' (कमलेश भारतीय), 'मोहभंग' (कृष्णशंकर भटनागर), 'नजरिया' (नासिरा शर्मा), 'आदमी के बच्चे' (प्रेम जनमेजय) आदि लघुकथाएँ इसी प्रकार की हैं। ये कहानियाँ अन्तिम पंक्तियों में औत्सुक्य की चरम सीमा पर चढ़ा देती हैं और अक्सर पाठक को स्तंभित कर देती हैं।

स्तंभित या स्तब्ध करने की शक्ति उन लघुकथाओं में भी हैं, जिनमें व्यंग्य की केन्द्रीय भूमिका है। व्यंग्य का इस्तेमाल कई रूपों में हुआ है। कहीं भावुकता-मिश्रित व्यंग्य है, जो पाठक को गहरे छूता है। कई लघुकथाओं में बच्चों के माध्यम से मार्मिक व्यंग्य की सृष्टि की गयी है। कमल गुप्त की 'कुत्ता,' पवन शर्मा कृत 'लँगड़ा,' घनश्याम अग्रवाल कृत 'हक', मंजू जैन कृत 'रोटी की ताकत,' प्रेमजनमेजय कृत 'ईश्वर की मृत्यु,' कमल चोपड़ा कृत 'छोनू' आदि लघु कथाएँ इस दृष्टि से

उल्लेखनीय हैं। 'कुत्ता' में बच्चा अमीरों के कुत्तों का ठाट देखकर कार मालकिन से कहता है। 'बीबीजी'......तुम मुझे अपना कुत्ता बना लोगी?' 'ईश्वर' की मृत्यु' में बच्चे की जिज्ञासा आखिर में आक्रोश का रूप धारण कर लेती है। 'छोनू' में भीड़ एक बच्चे को सिक्ख का बीज कहकर मार डालना चाहती है। वह डरा हुआ बच्चा कहता है...'मैं सिक्ख...उक्ख नई अूँ......मैं बीज उज नई अूँ......मैं तो छोनू हूँ। व्यंग्य के इस्तेमाल का सबसे प्रचलित तरीका दो स्थितियों या दो से अधिक स्थितियों के 'कंट्रास्ट' को उभारना है। 'कंट्रास्ट' से व्यक्त विद्रूप बहुत व्यापक है। कभी यह पारिवारिक संदर्भ में श्रद्धा, कर्त्तव्य आदि धारणाओं के ध्वस्त होने का प्रमाण देता है, जैसा कि प्रेम गुप्ता मानी की लघुकथा 'तीर्थ' में है। माँ के साथ पुत्र का व्यवहार बेहद रूखा है जबकि पत्नी के साथ अत्यन्त मधुर। कभी देशव्यापी शोषण, राजनीतिक आपाधापी, जनसामान्य की निरीहता आदि मुद्दे तुलनात्मक पद्धति से प्रस्तुत किये गये हैं। 'कीमत' (पुष्कर द्विवेद्वी), 'श्रम' (तरसेम गुजराल)' 'बाजी' (चन्द्रभूषण सिंह चन्द्र'), 'फर्क' (सुनील कौशिक), 'उपभोग' (सतीश दुबे), 'न्याय' (वेदप्रकाश अमिताभ) आदि लघुकथाओं की बुनावट इसी प्रकार की है। 'कीमत' में वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था की विकृति शिक्षित बेरोजगार के शोषण के सन्दर्भ में द्रष्टव्य है। एक युवक अपने इन्टरव्यू के लिये एक बोतल खून सिर्फ पचास रु० में बेच देता है, जबकि उसी बोतल को दुकानदार दो सौ रुपये में बेचता है। सतीश राठी की लघुकथा 'जन्मदिन' में चौकीदार की पत्नी को अपने बच्चे के जन्म-दिन की याद इसलिए आ जाती है कि उसी दिन जन्मे साहब के अल्सेशियन पिल्ले का जन्म-दिन ठाठ से मनाया जा रहा होता है। विक्रम सोनी कृत 'बनैले सुअर' में परिवर्तन की आहट के बावजूद कछुआ धर्म अपनाने वाले रुढ़िवादियों की क्रूर मानसिकता केन्द्र में है। दो ब्राह्मण चिट्ठी नहीं पढ़ पाते, बिसुआ चमार का लड़का पढ़कर सुना देता है। चिट्ठी का मतलब जान लेने के बाद उनके रुढ़िवादी संस्कार फन उठाते हैं—'पंडित जी धिक्कार है हमारी कौम पर। अरे पंडित जाति की चिठ्ठी चमार पढ़े? इसकी इतनी हिम्मत......?' चिठ्ठी पढ़े जाने के पूर्व और बाद की स्थितियों का विपर्यय व्यंग्य को घनीभूत करता है, कथा के मर्म को तीखेपन के साथ खोलता है।

पौराणिक आख्यानों और मिथकों का आश्रय लेकर आज के मूल्य-संक्रमण को अभिव्यक्त करने वाली लघुकथाओं की संख्या खासी है। चूँकि ये आख्यान और चरित्र सामान्य पाठक के लिये परिमित हैं, इसलिये अभीष्ट को संप्रेषित करने में सुगमता होती है। 'भस्मासुर', 'राम', 'सुदामा', 'अर्जुन', 'द्रोणाचार्य आदि से सम्बद्ध कई अच्छी लघुकथाएँ द्रष्टव्य हैं। 'आलाकमान' (चन्द्रेश्वर कर्ण) में भस्मासुर रूपी एम० एल० ए० पार्टी के नेता शंकर जी पर हावी होने के प्रयास में स्वयं भस्म

हो जाता है। इस लघु कथा की अन्तिम पंक्तिया व्यंग्यगर्भित हैं, 'सुबह के सारे समाचार पत्रों में यह समाचार प्रमुखता से छपा था—भस्मासुर गिरफ्तार। गिरफ्तारी का कारण बताया गया था कि भस्मासुर ने एक क्लब की कैबरे डांसर के साथ बलात्कार का प्रयत्न किया।' रामनारायण उपाध्याय कृत 'मार्डन शंकुतला' में शंकुतला के व्याज से आज की नारी के बदले हुये तेवर को महसूसा जा सकता है। वह शंकुतला की तरह रोती-कलपती नहीं है, 'जो आदमी सामने से गुजरने वाले हाथी को तो पहचानने इनकार करे और उसके पदचिन्हों को देखकर सोचे कि अरे वह तो हाथी था, ऐसे आदमी से प्रेमसम्बन्ध निभाना मेरे भी बस की बात नहीं है। 'आधुनिका' (राजप्रिय ईश्वर लाल) में सुदामा की पत्नी को आधुनिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है, लेकिन यह गले नहीं उतरता। पुराख्यानों का इस्तेमाल वहीं अधिक सार्थक ढंग से हुआ है, जहाँ कोई विसंगति उधेड़ी गयी है। कुछ कथाओं में बेताल-विक्रम के संवाद की शैली अपनायी गयी है।

अभिव्यक्ति को प्रखर बनाने के लिये लघुकथाकारों ने पत्रशैली, विज्ञापन शैली, आदि का प्रयोग भी किया है। लेकिन इस तरह के प्रयोग सख्या में कम हैं। रोशन लाल सुरीरवाला की कई लघुकथाएँ इस तरह के प्रयोगों से लैस हैं। 'परीक्षा पोस्टर' १९९० ई० में एक एजेन्सी द्वारा इस तरह का विज्ञापन दिया गया है कि निराश विद्यार्थी निर्धारित राशि देकर मनचाहे ढंग से परीक्षा उत्तीर्ण कर सकते हैं। राघवेन्द्र वर्मा कृत 'तलाश' में एक विज्ञापन और एक पत्र दोनों का मिलाकर लघुकथा पूरी की गयी है। कुमार नरेन्द्र कृत 'बिरादरी का दुख' में भी एक छोटे से पत्र की मुख्य भूमिका है।

पारस दासोत कृत 'सुनो लघुकथा' में 'लोककथा' के स्थान पर 'लघुकथा' को प्रतिष्ठित किया गया है। इसमें 'लोककथा' के प्रति रुचि न होने का कारण उसमें काल्पनिकता की प्रधानता मानी गयी है—'लघुकथा। बेटे लघुकथा में न तो राजा होता है, न रानी होती है और न दोनों मरते हैं।' लेकिन बहुत सी लघुकथाओं में लोककथा की कथन पद्धति अपनायी गयी है। 'सिंहासन के दावेदार' (मनीषराय), 'सफेद कबूतर की भाषा' (बलराम) इसी प्रकार की लघुकथाएँ हैं। यहाँ स्मरणीय है कि इनमें लघुकथा का शिल्प सीमित रूप में ही लिया गया है। लोककथाओं की संयोग बहुलता और अतिमानवीय तत्वों की उपस्थिति को बहुत कम स्वीकारा गया है। कुछ लघुकथाओं में लोकजीवन में प्रचलित कथाओं, किंवदंतियों आदि को देकर उसी मनोभूमि पर आज के किसी सन्दर्भ या सवाल को चस्पाँ किया गया है। आमतौर पर आज का सन्दर्भ पिछले सन्दर्भ की तुलना में तकलीफदेह और विडम्बनापूर्ण दर्शाया गया है। उदाहरण के लिये, 'सवाल दर सवाल' (प्रेम गुप्ता मानी), बादशाह बाबर का नया जन्म' (भृगु तुण्करी) द्रष्टव्य हैं।

'फ्लैशबैक', 'फैंटेसी', 'चेतनाप्रवाह' आदि के इस्तेमाल की गुंजाइश लघु-कथा में कम होती है। लेकिन लघु कथाकारों ने इन्हें आत्मसात् करने की कोशिश बराबर की है। 'बेगाना ताजिर' (नासिरा शर्मा) में फैण्टेसी का सहयोग लिया गया है। 'व्यापारी' (कुमार नरेन्द्र) में 'फ्लैशबैक' की कौंध है। सिगरेट का एक गहरा कश खींचते हुए मुझे अभी पिछले इतवार को एक समाचार पत्र में छपे लेख 'फकीर बादशाह' का स्मरण हो आता है कि किस तरह फकीर बादशाह के एजेंट इन भिखा-रियों से भीख से पैसों की वसूली कर ले जाते हैं और इनके लिए छोड़ जाते हैं चन्द रुपये ताकि मर न सकें। रावी की कुछ लघु कथाओं में 'किस्सागोई' को नये अन्दाज में प्रस्तुत किया गया है। 'अठादसबगोयम फकीरी गुहार', 'सेवा तस्य निरंकुशा' आदि रचनाओं में किस्सा बयान करने के बाद कथाकार अथवा कथागुरु की टिप्पणी अलग से नत्थी की गयी है। कुछ लघुकथाकारों ने 'मार्क' किया है कि महा-नगरीय परिवेश में व्यक्ति की 'अस्मिता' गुम हो गयी है। उसका नाम तक उसका नहीं रहा है। वह नम्बरों और सर्वनामों से जाना जाता है। अतः 'क' 'ख' और एक बच्चे की माँ '(माहेश्वर), 'नहले पर दहला' (विनायक कराड़े), 'रोबट' (अनवर शमीम) आदि लघु कथाओं में पात्रों के स्थान पर 'क' 'ख' आदि की उप-स्थिति आकस्मिक नहीं लगती। पात्रों का नाम न देने के पीछे एक धारणा यह भी है कि कथा में वर्णित नियति किसी की भी हो सकती है, यह व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं है। एकाध लघुकथा में किसी अमीर आदमी द्वारा दिये चन्दे की रसीद ही सारा मर्म उद्घाटित कर देती है। 'खाते बोलते हैं' (अशोक वर्मा) में एक दुकान के खाते के पृष्ठ लघु कथा का अंग बने हैं। कुछ लघु कथाओं में गद्य के साथ-साथ पद्य के उपयोग की प्रवृत्ति भी मिलती है। यह अवश्य है कि इस तरह की लघुकथाओं की संख्या नगण्य है। अयोध्याप्रसाद गोयलीय कृत 'झूठी शान' में ततैया और मधु-मक्खी के प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कहने के बाद यह शेर दिया गया है.........

खुदा की शान है नाचीज बन बैठे
जो बेशऊर थे यूँ बातमीज बन बैठे।

कृष्णकांत दुबे कृत 'सार' के अन्त में यह कविता पंक्ति उद्धृत है......

वन गूलर फूल कहीं नहीं
और फल ही फल लटके
भूखे खरगोश
कहीं और नहीं भटके

कुछ लघुकथाओं में पाठक को सीधे सम्बोधित करने की तकनीक अपनायी गयी है। मसलन, पृथ्वी राज अरोड़ा की 'आप की लय'। रावी भी अपनी कतिपय कथाओं के अन्त में इस पद्धति को अपनाते हैं। 'झील के किनारे' शीर्षक रचना में

वे लिखते हैं, 'सार्थकता और परिणाम। इस अध-पहुँची कथा की कोई सार्थकता और इसका कोई परिणाम इसके पाठक आप, क्या कुछ देख सकते हैं ?' 'आत्म-संभाषण' की पद्धति भी कई लघुकथाओं में है। राजकुमार गौतम कृत 'उधार लिया विश्वास' में इस पद्धति का प्रयोग हुआ है। 'कुर्सी संवाद' (रूपसिंह चंदेल) में दो कुर्सियों का मानवीकरण करते हुए उनकी बातचीत से यथार्थ का नुकीलापन उभरा है। 'आकाशदीप' (वेदप्रकाश अमिताभ) में कक्षा में व्याख्यान देने की शैली और छात्र-अध्यापक के प्रश्नोत्तर का मिश्रण हुआ है।

इधर लघुकथाकारों में पुराख्यानों, प्रतीकों आदि को लेकर लिखने की प्रवृत्ति कम होती जा रही है। वे यथार्थ की सीधी और ठेठ अभिव्यक्ति पर अधिक बल दे रहे हैं। कोई घटना प्रस्तुत करते हुये उनकी व्यंग्यात्मक 'फिनिश' अधिकतर लघुकथाकारों को प्रिय है। केवल संवादों के माध्यम से अपनी बात सफलतापूर्वक संप्रेषित करने की तकनीक भी पर्याप्त लोकप्रिय है। यह अवश्य है कि कुछ लघु-कथाएँ सपाट अभिव्यक्ति के कारण बहुत सामान्य जान पड़ती हैं। जिन लघुकथाओं में कथ्य 'बुलेट' में बारुद की तरह घनीभूत है, वह पाठक पर एक धमाके के साथ छा जाता है। शिल्प सम्बन्धी उपर्युक्त प्रयोगों को देखते हुए कहा जा सकता है कि बहुत से रचनाकार 'लघुकथा' को माँजने और इसकी कथनभंगिमा को वैविध्यपूर्ण तथा अधिक से अधिक पठनीय बनाने में निरन्तर सक्रिय हैं। केवल शिल्पगत चमत्कार प्रदर्शित करने के लिये लिखी गयी लघुकथाएँ न के बराबर हैं। कुछ लघुकथाकारों में देशी-विदेशी लघुकथाओं के शिल्प के यथावत् अनुकरण की प्रवृत्ति मिलती है यह श्लाघ्य नहीं है। लेकिन कहीं-कहीं इस अनुकरण से भी नयी बात बन सकी है। विश्व की सबसे छोटी कहानी कहकर प्रचारित की गयी भूत कथा के शिल्प का सार्थक प्रयोग 'बिना चेहरे का आदमी' (श्रीराम मीना) में द्रष्टव्य है।

द्वारिकापुरी
अलीगढ़।

॥ ११ ॥

□ प्रो० शशि मिश्रा

लघुकथा का शिल्प

कथात्मकता मनुष्य की सहजतम प्रवृत्तियों में से एक रही है। इसी से कथाओं के प्रारम्भिक अस्तित्व की कल्पना ४०० ई० पू० से ३००० ई० पू० तक की गई है। 'कथा' के अनन्त प्रकार दृष्टान्त, चुटकुले, बोध-कथाएँ, हितोपदेशी शिक्षाप्रद कथाओं के रूप में जीवन की सरलतम अभिव्यक्ति से लेकर जटिलतम व्याख्या देखी जा सकती है। भारतीय मानस का यही कथात्मक संस्कार कहानी-विकास एवं युग संक्षिप्तता के दौर में वर्णनात्मक सीमा से आगे निकल रूपात्मक प्रतीक-विधान का सहारा लेकर कलात्मक होता जा रहा है। कलापूर्ण अभिव्यक्ति की यह प्रक्रिया हिन्दी साहित्य की कथात्मक भूमिका पर लघुकथा का नवीनतम अभिधान धारण करती है। कथा-साहित्य में परिवर्तन का यह दौर शिल्प और कथानक के आधार पर आया है। नये लोग, नये शिल्प, नये मस्तिष्क, नयी संवेदनायें इसे निरंतर आगे बढ़ा रही हैं।

आज का सामाजिक जीवन असंगत, विरूप अथवा अशिव तत्वों से आक्रांत है। अनैतिकता, भ्रष्टाचार, आत्मकेन्द्रित स्वेच्छाचारिता मिलकर एक वीभत्स, विद्रूप का निर्माण करते हैं। इन विषम हालातों के मध्य जीवन को बचाये रखने के प्रयास में मनुष्य स्वयं प्रकृति का सबसे बड़ा विद्रूप बना हुआ है। मुक्ति की प्रक्रिया उसे उत्तरोत्तर बिखराव एवं टूटन की ओर धकेलती जा रही है। ऐसे में खण्डित सत्य के भोक्ता मानव के लिये 'समयता' की कल्पना वैचारिक चिंतना से आगे नहीं बढ़ पाती। जन-जीवन खण्ड-सत्यों को ही जीवन-सत्य मानने को ही अभिशप्त है। इन खण्ड-सत्यों एवं स्खलित-सत्यों की संप्रेषण-कामना ने साहित्यिक भूमिका पर मर्मभेदी सोद्देश्य एवं रचनाशील अभिव्यक्ति को प्रश्रय दिया। विखण्डित कथ्यों का आधार लिये यह आकारगत लघुता को विवश रहीं। आकार की यह लघुता इसे वर्तमान परिवेश में न सिर्फ प्रासंगिक बनाती है अपितु लोकप्रियता के शिखर पर भी पहुँचाती है। इसकी सर्वाधिक प्रासंगिकता इसी में है कि यह जीवन के खण्ड-सत्यों की पूर्ण तस्वीर प्रस्तुत करती है। जीवनगत पूर्णता के लिये लालायित मानव स्वयंमेव इन 'खण्डित-सत्यों की पूर्णता' के प्रति खिंचता चला जाता है। आज के चौतरफा दबाव एवं तनाव की स्थितियों ने लघुकथाओं की संक्षिप्त, लक्ष्यभेदी संप्रेषणीयता एवं मारक तेवर की उपयोगिता को स्वयं-सिद्ध कर दिया है। यांत्रिक होड़ के इस युग में रोजी-रोटी का जुगाड़ करते ही जिंदगी बीत जा रही है। लोगों के पास वक्त के लाले पड़ रहे हैं। यहाँ आदमी स्वयं उपकरणवत कुचला जा रहा है—ऐसे विषम और जानलेवा परिवेश में साहित्यिक आनन्द की गुन्जाइश न होते हुये भी उसके नैसर्गिक ललक को अनदेखा नहीं किया जा सकता। अनेकानेक विरूपताओं से जूझते मनुष्य की साहित्यिक, मानसिक खुराक की पूर्तिजन्य आवश्यकता ने कथाओं को संक्षिप्त किंतु धारदार और पुरअसर तेवर प्रदान किया है।

अपने विकास-क्रम की यात्रा में लघुकथाओं ने दृष्टांत, रूपक, लोककथा, बोधकथा, नीतिकथा, व्यंग्य , चुटकुले, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि अनेक मंजिलों को पार किया है। हर रचना की अपनी निजी प्रकृति और प्रवृत्ति होती है, उसका अपना एक इतिहास होता है। लघुकथाओं के इतिहास की ओर यदि दृष्टिपात किया जाये तो इनकी यात्रा प्राचीनतम साबित होती है। मौखिक भावभिव्यक्ति के युग से ही जीवन के आदर्शवादी काम्य पक्ष को कलात्मक एवं प्रभावी अभिव्यक्ति की गयी है। यांत्रिकता के इस युग में महाकाव्य, उपन्यास अथवा लम्बी कहानियों को पढ़ने का समय पाठक के पास नहीं रह गया है किन्तु अनेकानेक व्यस्तताओं के मध्य भी मानसिक सन्तुष्टि की कामना बरकरार है। अतः आज की इन संकुल परिस्थितियों में साहित्यकार के समक्ष संक्षिप्त अभिव्यक्ति का दायित्व आ पड़ा है; साथ ही चुनौती भी क्योंकि संक्षिप्तता मात्र आकारगत संक्षिप्तता ही हो सकती हैं। रचनात्मक

धरातल पर जीवन-संवेदनाओं की पकड़ एवं गहन-गूढ़ समस्याओं की साझेदारी की भूमिका साहित्यकार को आज पूरे कौशल के साथ निभाना है। पाठक को एक पूरी घटनात्मक प्रक्रिया से गुजारकर उसे बेहतरी की ओर अग्रसर करने का उसका साहित्यिक दायित्व भी यथावत् है। असंख्य टूटे परिवेशों में आज आदमी अपने खंडित-विखंडित रूपों में सामंजस्य ढूंढता हुआ पाया जाता है। ऐसी स्थिति में आज के साहित्यकार को बिखरे जीवन-सूत्रों में से एक सम्पूर्ण व्यापक कथानक जुटाना होता है। अपने इस प्रयास में कई विरोधी तथा असहयोगी स्थितियों से जूझते हुए उसे अनेकानेक प्रयोग करने पड़ते हैं। यही कारण है कि संक्षिप्ततम् साहित्यिक विधा होते हुए भी कई अवसरों पर इसमें विविध साहित्य रूपों की झलक मिल जाती है।

समकालीन लघुकथाओं का विश्लेषण हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि हम एक जीवन पद्धति में से निकलकर दूसरी जीवन पद्धति में प्रवेश कर रहे हैं। संक्रमण अवस्था की विविध समस्यायें अपने विविध रूपों में लघुकथा का स्वरूप धारण कर रही हैं। सीधे लक्ष्य तक पहुँचने की शीघ्रता इसे 'लघु' बनाए रखती है। किन्तु आकारगत अपनी लघुता के बावजूद यह साहित्यिक अवधारणाओं से युक्त है। शाब्दिक मितव्ययता तीक्ष्ण विचार एवं कलात्मक भाषाभिव्यक्ति द्वारा सम्पूर्ण जीवन की पकड़ इसकी अनिवार्य शर्त है। आज की मशीनी मनःस्थिति से उपजी कुण्ठा, संत्रास इसे स्वयं ही व्यंग्यात्मक त्वरा प्रदान करते हैं इस प्रकार इसके शिल्प-विधान, प्रस्तुतीकरण का विशिष्ट दायरा बनता जाता है इसका ढांचा पारम्परिक नीति कथाओं, लोक कथाओं से अलग होता है। यह अपने परिवेश में रचनात्मक मुद्दों को उठाते हुए सही सटीक उत्तर देती है।

आठवाँ दशक वर्तमान लघुकथाओं की साहित्यिक नींव का समय माना जाता है। आज स्थिति यह है कि कोई भी पत्रिका लघुकथाओं के अभाव में सम्पूर्ण पत्रिका नहीं मानी जाती इसका श्रेय लघुकथाओं की संरचना में अन्तर्निहित आनुभूतिक तीव्रता एवं संवेद्य क्षमता को है लघुता की अपनी एक उपयोगिता है जिसके लिए साहित्य-चिन्तकों को अध्ययन-मनन करना होता है। शाश्वत एवं सार्वभौमिक सत्यों की समग्री प्रस्तुत करनी होती है। व्यापक कथानकों को पूर्ण प्रभावी संक्षेप देना होता है।

साहित्यिक भूमिका पर लघुकथा के कथा साहित्य की सम्बद्धता से इन्कार नहीं किया जा सकता। साहित्य शास्त्र में कथा-साहित्य में छः तत्व माने गये हैं— कथानक, पात्र तथा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन वातावरण, भाषा शैली और उद्देश्य इन तत्वों के आधार पर ही लघुकथा की साहित्यिक, शैल्पिक संयोजना प्रस्तुत की जाती रही है।

कथानक का माध्यम जीवन जगत की घटनायें होती हैं। अनुभूति के फलक पर जीवन दृष्टि में जब कुछ एकाएक कौंधता हुआ अन्तर्आत्मा तक इस तेवर में पहुँचता है कि आत्मा क्यों, कैसे और कब तक के प्रश्न चिह्नों से बिंध उठती है तो लघुकथा का निर्माण होता है। ये घटनायें अपने भीतर औपन्यासिक विस्तार से लेकर कथात्मकता के विविध रूप संजोये होती हैं। युगीन जीवन धारा की माँग को मद्दे नजर रखते हुए कथाकार कसावपूर्ण, अर्थगांभीर्ययुक्त शब्दों का चयन करते हैं। घटनागत सत्वों को निथारकर प्रभावशाली अभिव्यक्ति प्रदान कर क्षणिक घटनाओं के भीतर निहित शाश्वत जीवनमूल्यों की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। मितव्ययता की बाध्यता के इस युग में प्रत्येक क्षण और क्षणानुभूति को साहित्यिक जामा प्रदान करते हैं। आज आदमी का पूरा परिवेश इस कदर अस्त व्यस्त एवं अव्यवस्थित हो चुका है कि वह चाहकर भी विस्तृत विश्लेषण का अवकाश निकाल नहीं पाता सार तत्वों के संग्रह मात्र से संतुष्ट रहना उसकी नियति बनी हुई है। लघुकथायें इन्हीं सार तत्वों को रेखांकित करती हैं। अनर्गल प्रलापों से बचाते हुए सहज एवं सरल उद्वेलन द्वारा पाठकों को मानवीय सर्वकारों से जोड़ती हैं।

पात्र और चरित्रचित्रण की भंगिमा प्रायः कहानी-विधा का साम्य लिये होती है। कहानी में पात्रों की विभिन्न मन:स्थिति का सम्पूर्ण ब्यौरा प्रस्तुत करना सम्भव होता है जबकि लघुकथा विशेष मन:स्थिति का विशेष प्रस्तुतीकरण होती है। पात्रों के माध्यम से वह कथावस्तु को उस मोड़ पर स्पर्श करती है, जो कथ्य के स्पष्टीकरण में सहायक हो। एक अन्य भेद चरित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग भी है। सम्प्रेष्य कथ्य को लघुकथाकार विभिन्न प्राकृतिक अवयव—नदी, पेड़, तालाब, अथवा अन्य पशु-पक्षियों के प्रतीकात्मक प्रयोग द्वारा भी स्पष्ट कर लेता है। अमूर्त विषयों, मनुष्य के आन्तरिक सौन्दर्य तथा मानसिक द्वन्द्व का चित्रण ये कथाएँ मर्मस्पर्शी ढंग से करने में सक्षम होती हैं—यशखन्ना की 'सोच' लघुकथा इसका उत्कृष्टतम प्रमाण है मानी जा सकती है, जहाँ मनुष्य की साम्प्रदायिक संकीर्णता, आत्मकेन्द्रित, स्वार्थी चिन्तन-धारा परलेखक मुर्गों के माध्यम से व्यंग्य करता है—

'छी:। ··तू भी लगा न आदमी की तरह सोचने ? ···दूसरे (मुर्गे) ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए समझाना चाहा, 'मैं तो सोचता हूँ, यही एक मौका है जब हम आदमी से बेहतर सोच सकते हैं···''

कहानी तथा लघुकथा में पात्रों की उपस्थिति की दृष्टि से मुख्य भेद यह है कि कहानी का चरित्र, कथानक-विवरण अथवा वातावरण-निर्माण के बाद भी आ सकता है, जबकि लघुकथाओं में पात्र की भूमिका प्रमुख होती है। पात्रों के व्यक्तित्व-विश्लेषण अथवा संवादों के इर्द-गिर्द पूरी कथा का ताना-बाना बुना जाता है।

कहानी के कथोपकथन उसकी विस्तार-सीमा के अनुरूप लम्बे अथवा अत्यधिक लम्बे हो सकते हैं जबकि लघुकथा का कलेवर 'लघु' होता है। अतः इस निर्धारित सीमा के अन्दर ही कथोपकथन की संरचना करनी होती है। संवाद-विहीन लघुकथा जहाँ लम्बी, वर्णनात्मक कहानी की भूमिका का भ्रम पैदा कर सकती है, वहीं संवेदना-विहीन, निरर्थक प्रलाप मात्र लघुकथा नहीं कहला सकता। सीमित, लक्ष्य-भेदी, सधे-सधाए वाक्य ही आदर्श कथोपकथन का रूप धारण करते हैं, जो पात्रों को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करते हुए उनकी प्रकृति को प्रत्यक्ष रूप में प्रकट करते हों। साथ ही, मूलभूत संघर्ष को गतिशीलता प्रदान करते हों।

कहानी के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने पात्र और कथानक के अनुरूप काल-विशेष अथवा स्थान-विशेष का वातावरण तैयार करे। लघुकथा की समस्या शाश्वत मानवीय मूल्यों की समस्या होती है। अतः वह स्थान-विशेष अथवा काल-विशेष के चित्रण की अपेक्षा नहीं रखती। कथ्य-सम्प्रेषण की सोद्देश्यता, वह परम्परागत नीति-कथाओं एवं प्रतीकों का सहारा लेकर जितनी दक्षता से पूरा करती है, उतनी ही दक्षता से सीधी, सपाटबयानीयुक्त आधुनिक सन्दर्भों में भी पूरा कर लेती है। तात्पर्य यह कि सार्वभौमिक, शाश्वत समस्याओं की प्रस्तुति हेतु किसी विशेष वातावरण-निर्माण की आवश्यकता नहीं होती। अतः लघुकथाओं में वातावरण-तत्त्व प्रायः उपेक्षित ही रहता है।

जहाँ तक भाषा-शैली का सवाल है, लघुकथा के प्रसंग आम जीवन से उठाये गये प्रसंग होते हैं। अतः आम जनजीवन में प्रचलित भाषा का व्यावहारिक प्रयोग ही एक प्रभावी लघुकथा के लिए अपेक्षित होता है। हाँ, संक्षेप में अधिकाधिक मजमून प्रस्तुत करने की अपेक्षा पूरी करने हेतु, सारगर्भित, मर्मभेदी, बहुआयामी शब्दों के चयन की आवश्यकता होती है ताकि अल्पतम शब्दों द्वारा व्यापक जीवन-सत्य उभर सके।

आज की लघुकथाएँ भाषा-शैली की इन आवश्यकताओं को बखूबी पूरा करने में सक्षम हैं। उनके पास एक ऐसी भाषा है जो ज्वलन्त यथार्थ के विभिन्न पक्षों को निरावृत करती है। इनमें भावों की गहराई के साथ ही 'टैक्नीक' की ऊँचाई भी है। पौराणिक फैंटेसी, प्रतीक-विधान, आत्मचरित से लेकर आधुनिकतम संस्मरण अथवा रिपोर्ताज शैली तक का कुशल-निर्वाह करने में यह भाषा पूर्णतः सक्षम है—आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री जब कहते हैं, 'ब्राह्मण हैं, बिना मांस-मछली के भी एकाध दिन भोजन कर ले सकते हैं···' तो ब्राह्मणों का पाखण्डपूर्ण आचरण स्वतः खुल जाता है।

इसी तरह नेता, पुलिस, अध्यापक, यहाँ तक कि आराध्य देवता भी आज के सन्दर्भों में पूर्ण परिवर्तित अर्थ प्रदान करते हैं। रक्षकों के वेश में छिपे भक्षकों

का पाखण्ड हो अथवा साम्प्रदायिकता विषव्याप्त घर-घर की व्यथा, भूख, गरीबी का प्रसंग हो अथवा अर्थ केन्द्रित आत्मीय सम्बन्धों का दुराव, चारित्रिक पतन, ओछापन, राजनीतिक शोषण, आतंक सभी कुछ को सहजतम एवं सरलतम भाव-भंगिमा के साथ मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति प्रदान करने में आज की भाषा सक्षम है। संक्षेप में, कहने योग्य पर्याप्त भाव एवं विचार-सामग्री इसके पास है। चरित्रगत त्रासदियों को आज की लघुकथाएँ सहजतम अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। तीखे शब्दों के प्रहार से स्थिति की मार्मिक जटिलता को उघाड़कर रखती हैं। यह भाषा-सामर्थ्य ही है कि आज की लघुकथाएँ अपने भावपक्ष की अभिव्यक्ति ऐतिहासिक शैली, आत्मकथात्मक शैली, पत्रात्मक शैली से लेकर डायरी शैली तक में कुशलता-पूर्वक कर लेती हैं।

अन्तिम तत्व उद्देश्य में लघुकथाओं की जीवन्तता एवं प्रासंगिकता समाविष्ट है। निरुद्देश्य लघु आकार का ताना-बाना चुटकुलाई मनोरंजन तो दे सकता है, लघुकथात्मक चिंतन-मनन की भूमिका नहीं। और निरुद्देश्य चुहलबाजी अथवा भोंडा मनोरंजन लघुकथा का लक्ष्य कतई नहीं है। हाँ, कुछ व्यावसायिक स्वार्थयुक्त कथाकार शब्दों के खिलवाड़ मात्र द्वारा रातोंरात ख्याति प्राप्त करने की मंशा से लघुकथा की गम्भीरता को क्षति अवश्य पहुँचा रहे हैं। लघुकथा को सबसे बड़ा खतरा इन्हीं यशाकांक्षी पिट्ठुओं से है। क्योंकि चुटकुला विशुद्ध हास्य का हो, बौद्धिक हो अथवा सामयिक प्रवृत्तियों को दर्शाने वाला, उसका प्रभाव चुटकुलाई ही होता है। आज यद्यपि ऐसे छुटभैयों की कमी नहीं जो मात्र दिल्लगीपूर्ण तुकबन्दियों को लघुकथा की मान्यता दिलवाना चाहते हैं तथापि लघुकथा की साहित्यिक सम्भा-वनाओं, उपलब्धियों एवं सामर्थ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता। साहित्य की अन्यान्य विधाओं में भी सतही दृष्टिकोण वाले टुच्चे रचनाकारों का अस्तित्व होता ही है, किन्तु ये अपने भरसक प्रयत्न के बावजूद साहित्य की विधागत तथ्यों को झुठला नहीं पाते और न ही पाठकों का प्रोत्साहन ही इन्हें मिलता है। ठीक यही बात लघुकथा के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है। लघुकथा सिर्फ सतह पर करवटें लेने वाली तरंगों के साथ नहीं बहती, बल्कि जिन्दगी की गहराइयों में जाकर उन खामोश, अदृश्य और मीठी धाराओं से भी संलग्न हैं, जो सतह से नीचे बहती हैं। इन गहराइयों को स्वर देने वाली लघुकथाएँ ही हैं जो कहानी, उपन्यास, कविता अथवा निबन्ध विधा की तरह साहित्य-समीक्षकों से विधागत तथ्यों के तलाश की मांग कर रही हैं। संवेदनशील कथाकारों के मानस-मंथन से उपजी वह कृश विधा विराट युग-सत्य अपने में समेटे हैं। सम्भवत: लघुता में छिपी इसकी विराटता ही है जो न सिर्फ कथा-निर्माताओं के लिए चुनौती बनी हुई है बल्कि समीक्षकों से भी नई दृष्टि एवं नई स्थापनाओं की माँग करती है।

कथागत सैद्धान्तिक विवेचन के प्रकाश में यदि आज की लघुकथाओं की परीक्षा की जाए तो हम देखेंगे कि जीवन-जगत की गहराइयों से निर्मित यह विधा भारी-भरकम कलेवर की बोझिलता से बचते हुए भी गहनतम तथ्यों को इस ढंग से निराबृत्त करती है कि मानवीय संवेदनाएँ झंकृत हो उठती हैं, मस्तिष्क एक अजीबो-गरीब ऊहापोह से भर उठता है और आत्मा चीत्कार उठती है। इस वैचारिक रचनात्मक अभियान के बावजूद आज की लघुकथाओं में मनोविनोद के पर्याप्त प्रसंग हैं तो सिर्फ इसलिए कि त्रासद यथार्थ की जानलेवा परिस्थितियों में से जीने योग्य सरस सूत्रों की खोज के साहित्यिक दायित्व से वह भली भाँति परिचित है। लघु-कथाओं का सर्वाधिक प्रखर स्वर व्यंग्य सजगता से आपूर्ण है। परिवेशगत अन्त-र्विरोधों की परिदर्शना इसे स्वत: ही व्यंग्यमय बना देती है। आज का जन-मानस एक ओर जन-तांत्रिक विफलताओं से हताश है तो दूसरी ओर व्यवस्थागत शोषण की त्रासदियों से क्षत-बिक्षत। इस विषम अवस्था का साहित्यिक प्रयोजन व्यंग्य ही हो सकता है, अत: साहित्य की अनेकानेक विधाओं की तरह ही आज की लघुकथा अपनी त्रासदियों, तकलीफों का बयान कुछ इस तरह करती है कि पाठक ऊपरी तौर पर हास्य का आलिंगन करते हुए भीतर से तिलमिला उठता है। तिलमिलाहट की यह अनुभूति आज की लघुकथाओं की उपलब्धि है।

जीवन-यथार्थ के बदलते ही जीवन-दृष्टि का बदल जाना जितना स्वाभाविक होता है, संवेदनाओं का बदलाव भी उतना ही स्वाभाविक होता है। साहित्य के सम्बन्ध में संवेदना मानवीय होती है इसलिए मानव के नैतिक-बोध से उसका सम्बन्ध सहज ही होता है। नैतिक-बोध का स्तर बदली हुई जीवन-दृष्टि के समानांतर परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरने लगता है। यही कारण है कि जीवन-मूल्यों के बदलते ही साहित्यिक संवेदनाएँ नया रूप धारण कर लेती हैं। साहित्य में इसे ही 'कला-बोध' की संज्ञा दी गई है। यही शैल्पिक संयोजन भी है।

आज अनुभवों की नवीनता इस हद तक तीव्र और आक्रामक हो गई है कि उसके लिए पारम्परिक शिल्प अपर्याप्त हो उठे हैं। पारम्परिक गौरव गाथाओं का विद्रूप नित नये तेवर बदल रहा है, जिसके मूल में राजनीतिक छद्म सर्वोपरि है। पारस दासोत की 'उतार लो' सुबोध श्रीवास्तव की 'कूटनीति', पृथ्वीराज अरोड़ा की 'सौदा', सतीश जैन की 'नेता बनाम मजमेबाज', एम० अनवार आलम कुमैसपुरी की 'धर्म है तो मैं हूँ' कथाएँ इसके उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में ली जा सकती हैं।

पारस दासोत की 'उतार लो' लघुकथा की 'वह' कुर्सी के लिए बांटी गयी साड़ी को कुर्सी पर ही उतरवाकर राजनीतिक नग्नता की नंगी तस्वीर पेश करती है।

सुबोध श्रीवास्तव की 'कूटनीति' आजकल के भरत-तुल्यों के ढोंग को निरावृत्त करती है। ऊपरी तौर पर पौराणिक दीखती हुई यह कथा वास्तव में में सामयिक परिवेश और राजनीतिक जीवन की मूल्यहीनता और अकर्मण्यता को वेनकाब करती है।

रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' की 'अंगूठे की खेती' इसी परम्परा की लघुकथा है, जिसमें पक्षपाती अध्यापक वर्ग की महत्वाकांक्षाओं की परिणति शिष्यों की उपेक्षा में दिखाई गयी है। द्रोणाचार्य एवं एकलव्य आज के सन्दर्भों में इसी सत्य की व्याख्या करते हैं।

राजनेताओं के अध:पतन के समानांतर समाज पतित होने को बाध्य हुआ है। तथाकथित राजनेताओं का ढोंग यदि चुनावी गहमा-गहमी तक सीमित है तो भला प्रजा ही झांसा देने में पीछे क्यों रहे ? पृथ्वीराज अरोड़ा की 'सौदा' जन-सामान्य की इसी सौदेबाजी को प्रतिपादित करती है।

सत्तासीन 'मदारियों' की लहलहाती समृद्धि आम सामाजिकों को लुभाती हैं। राजनेताओं के अनुकरण से समृद्धि मिले अथवा न मिले, चरित्र में मदारीपन तो आ ही जाता है। इसी सत्य को उजागर करती है सतीश जैन की 'नेता बनाम मजमेबाज'।

धर्म अनुप्राणित देश में धर्म, सत्ता प्राप्ति की अनन्त सुविधायें जुटाने में सक्षम है। एम० अनवार आलम कुमैसपुरी पत्रात्मक शैली द्वारा इसी धर्म केन्द्रित राजनीतिक तथा राजनीतिक धर्म का भेद खोलते हैं।

इसी तरह आज की लघुकथाएं अनेकानेक सामाजिक धार्मिक, नैतिक, आर्थिक विसंगतियों एवं शोषण को स्वर देती हैं। इनमें पस्त आत्मा का क्रंदन सहज ही ध्वनित किया जा सकता है तो शोषकों का क्रूर अट्टहास भी महसूस किया जा सकता है। इसी तरह इन विद्रूप त्रासदियों के प्रति विरोध तथा विद्रोह की विभिन्न मुद्रायें भी परिलक्षित की जा सकती हैं। आज की दोगली व्यवस्था रक्षकों को भक्षक बनने को मजबूर करती है। परिणामस्वरूप कानून के प्रहरी, समाज के रक्षक पुलिस का आतंक सर्वविदित ही है।

दोगली शासन व्यवस्था का एक रूप शंकर पुणताम्बेकर की 'चुनाव' लघुकथा में उभरता है—आत्मरक्षा की अनिवार्यता प्रबुद्धवर्ग को भी ग्रसे हुए है। रोटी और प्राण के बीच चयन की दुविधा का हल बताते हुए हेडमास्टर, स्कूल इन्स्पेक्टर से कहते हैं—'......मुझे अपना नतीजा तैयार करना था कि रोटी और प्राणों के बीच किसे चुनूं...और आखिर मैंने प्राणों को चुना।

सामाजिक परिवेशगत विवशताएं वैयक्तिक, आपसी पारिवारिक सम्बन्धों पर अनिवार्य रूपेण प्रभाव डालती ही हैं। आधुनिक परिवेश ने उपभोक्ता संस्कृति

को प्रश्रय दिया है। आपसी सम्बन्ध इसी उपयोगिता संस्कृति के कुर्बान है—कमलेश भारतीय रचित 'महत्त्व' के माँ की विवशता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है—"माँ जी समझ नहीं पा रही थीं कि (अखबार) किसे पहले दें ? कमाऊ-पूत को या बेकार सपूत को ???"

तात्पर्य यह कि लघुकथाओं का विषय एवं सम्पर्क क्षेत्र जीवन-सापेक्ष व्यापकता लिये हुए है। सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक आदि अनेक समस्याओं के विभिन्न पहलू को लघुकथाएँ उपमान, प्रतीकों, फंतासियों, कथन तकनीक, शैली विभिन्नता द्वारा सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति प्रदान करने में सक्षम हैं। शासकीय नीतियों के अमलीकरण की असफलता, आतंक, शोषण, संस्कारों से उबरने की कोशिश अन्ध-विश्वास, प्रथा के दुष्परिणाम, साम्प्रदायिक द्वेष आदि समस्याएँ अपनी अभिव्यक्ति हेतु कथाकारों की कलम से नित नये शिल्पों का आविष्कार कर रही हैं। मौजूदा सवालों से जूझने हेतु लघुकथा आक्रामक, वाचाल तुर्श तेवर धारण करती है। नये सवाल, नयी मानसिकता, नये समाधान इन्हें नूतन शैल्पिक प्रयोगों का आधार प्रदान करते हैं और ये कथाओं, घटनाओं और चरित्रों द्वारा निर्मित होने वाली कहानी के पिछले ढाँचे को तोड़ते हुए इन्सानी जिन्दगी के छोटे-छोटे टुकड़ों, तेजी से बदलते हुए परिवेश, छोटी-छोटी घटनाओं और अर्थपूर्ण शाब्दिक योजना द्वारा युगीन जीवन को रेखांकित करती हैं। न्यून से न्यूनतम शब्दों में विलक्षणतापूर्वक आस-पास के प्रसंगों, आये दिन घटित होने वाली घटनाओं को पूरी संवेदना के साथ आज की लघुकथाएँ परत-दर-परत उघाड़कर पाठक के मस्तिष्क को झकझोरती हैं, वैचारिक बेचैनी का निर्माण करती हैं। आज के परिवेश में पतन की सीमा दिखाई नहीं देती। लघु-कथाएँ अपने सीधे, सरल किन्तु मार्मिक तेवर में इन्हीं असीम सीमा रेखाओं की तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। यही इसकी लोकप्रियता का मूल है।

—हिन्दी विभाग
रामनिवास रूइया कॉलेज,
माटुंगा—बम्बई—४०००१९

लघुकथा : सृजन के धरातल

स्वातंत्र्योत्तर स्थितियां

पगला

—खान अब्दुल रशीद 'दर्द'

'पगला···पगला · ऽ··अरे·· ये बूढ़ा पगला है !' बच्चे और कुछ मनचले लोग उसे देखते ही चिढ़ाने लगे। वह बूढ़ा कभी उन्हें झिड़कता कभी उन्हें कुछ समझाईश देता अपने गंतव्य की ओर चला जा रहा था। पर भीड़ जैसे उसे चिढ़ाने के लिए हाथ धोके पीछे पड़ी हो। गांधी चौराहे तक आते-आते बूढ़े के इर्द गिर्द भीड़ मधुमक्खी के छत्ते की तरह जमा हो गई। भीड़ से फिर किसी मनचले ने जोर से चिल्ला कर कहा—'अरे ये बूढ़ा पागल··पगला है·· बूढ़े की टोपी देखो···कुरता··· धोती, चद्दर देखो··तार···तार···चिन्दे-चिन्दे हैं !'

भीड़ से फैंके गये अनर्गल शब्दों ने उसे आहत कर दिया। भावावेश में वह भाषण की मुद्रा में खड़ा होकर सहसा ही बोल उठा—'बच्चों ! मैं पागल नहीं, स्वतन्त्रता सैनानी हूँ। तुम्हें मेरा सम्मान करना चाहिए। पागल ··नासमझ तो तुम हो जो अपनी स्वतन्त्रता को स्वच्छन्दता में बदल रहे हो। तुमने ये···गांधी, गौतम के देश को आजादी के बाद से अब तक क्या दिया है···विचारो·· सोचो, अरे उस समय की जन्मी सन्तानें अब बड़ी हो बाल-बच्चों वाली हो गईं ··उस समय के नन्हें पौधे दरख्त बन कब हीं के फलने-फूलने लगे···पर इन छत्तीस सालों में देश की गरीबी-भुखमरी मिट न सकी···और···और तुम कहते हो भाषणों में अपने कि अभी तो आजादी किशोरावस्था में है·· छत्तीस साल···और किशोरा···वस्था···ऽ··· वाह-वाह···पागल··ना···ऽ ··दान···तो······!' बूढ़े की छाती बोलते-बोलते भर आई, गला रूंध गया। उसके कदम अब धीरे-धीरे सामने स्थापित गांधी प्रतिमा की ओर बढ़ चले। प्रतिमा के निकट पहुँच वह बूढ़ा फफक-फफक कर गांधीजी के चरणों में माथा टेक रो उठा। □

—पो० डेहरी (बाग)
जिला धार—४५४२२१

आजादी

—हरे कृष्ण

आज ही के दिन पन्द्रह अगस्त १६४७ को ठीक बारह बजे रात में हमें आजादी मिली थी। हम आजाद हुए। झंडा फहराकर सलामी देने के बाद नेताजी स्वतन्त्रता प्रेमी, देशवासियों को समझा रहे थे। दूर-देहात से स्वतन्त्रता-दिवस का जलसा देखने शहर आया एक बूढ़ा भोला किसान अपने बगल खड़े शहरी बाबू से पूछता है—'आजादी बारह बजे रात को क्यों मिली साहब ? रात में तो दिनभर के थके माँदे कामकाजू लोग सोये रहते हैं। बारह बजे रात में तो निशाचर, चोर-डकैत ही जगे रहते हैं। तो उस समय जो जगे रहे होंगे, आजादी उन्हें ही मिली होगी। अच्छा ! तो अब समझा। हम लोग नहीं जानते आजादी कैसी होती है ? शहर में रहने वाला वह आदमी उस बूढ़े किसान को घूरता हुआ आगे बढ़ गया।□

—सम्पादक—'सतत', हेला बाजार, हाजीपुर—८४४१०१

बचत

—कृष्णशंकर भटनागर

"यार, भाभी बीमार रहती है, बरतन साफ करने वाली क्यों नहीं लगवा लेता···" घर आए मित्र ने प्रताप से कहा।

चाय सिप करते हुए प्रताप बोला, "यार, माईयां मिलती ही कहां हैं ? सत्तर-पिचहत्तर से कम बात नहीं करती। तेरी भाभी महीने में एक-दो बार बीमार भी पड़ जाए तो भी तीस-चालीस में ठीक हो जाती है, तिस पर भी मेडिकल बिल क्लेम कर लेता हूँ माई न लगाने से बचत-ही-बचत है समझा।"

मित्र प्रताप की कैलकुलेशन की प्रशंसा करने लगा ! □

—८/३२१, कंबोह कटहरा, सहारनपुर—२४७००१

परिभाषा

—सतीश पांडेय

—यार, क्या जमाना आ गया। नैतिकता तो अब बिल्कुल रही ही नहीं।

—हाँ, देखो न ! सब जगह लूट मची है।

—इस सबकी जड़ में यह साली टुच्ची राजनीति है।

—मन की बात कही यार ! यह राजनीति तो वेश्याओं से भी गई–बीती है। कम से कम वे अपने ग्राहकों को तो पूरा-पूरा सन्तुष्ट करती हैं। यह तो वह भी नहीं करती।

—अरे यार, सबकी आँख अर्जुन की भाँति मछली की आँख पर ही लगी है कि कैसे कुर्सी मिले, चाहे राजू जी हों या राजा जी।

—हाँ, देखो न ! रोज दस-बीस मारे जा रहे हैं पर यहाँ समझौतों पर समझौते हुए जा रहे हैं।

—और करें भी क्या ? समझौते करके ही जब कुर्सी बची रह सकती है तो और कुछ करने की जरूरत ही क्या है ?

—सही कहते हो। ·· अच्छा ये दंगा-फसाद और आतंक फैलाने वाले लोग भी कैसे आदमी हैं यार ! किसी की जान लेते हुए भी इन्हें कुछ नहीं होता ?

—तुम भी क्या·· । अरे, ऐसे लोग आदमी कहाँ होते हैं ? वे तो हिन्दू, मुस्लिम या सिक्ख होते हैं। □

—सोमैया विनय मन्दिर,
विद्याविहार, बम्बई–७७

लघुकथा किसी भयावह संकट, जटिल समस्या, संश्लिष्ट जीवन, विकृत मानवीय स्थितियों, विषाक्त युगीन स्थितियों की यथार्थ प्रतीति से अवश्य ही जुड़ी होती है। इस यथार्थ प्रतीति को एक सार्थक लघुकथा एक सुस्पष्ट वैचारिक स्तर तक ले जाती है। यही सुस्पष्ट वैचारिक स्तर का निर्माण करना लघुकथाकार का उद्देश्य होना चाहिए। **—डॉ० कमल चोपड़ा**

समीचीन : 12

बूँद की कीमत

—सुनील अग्रवाल 'कुमार'

"बेटे नल बन्द कर दो, 'पानी की एक-एक बूँद बड़ी कीमती है।" अपने चौदह-पन्द्रह वर्षीय पुत्र को, जो मुँह-हाथ धोने के बाद नल खुला छोड़े जा रहा था, कहा।

"अभी बन्द किये देता हूँ पापा! लेकिन···" तब तक मुझे गुस्सा आ चुका था। मैंने चीखकर कहा, "क्या तुमने कभी रेडियो पर नहीं सुना—'पानी की एक-एक बूँद कीमती है···।" मैं इतना ही कह आया था कि उसने तपाक से अपने अधूरे प्रश्न को पूरा किया—

"पापा, और पंजाब में जो इतना रक्त पानी की तरह बह रहा है वो?" अब मैं खुले नल से बहते पानी को घूर रहा था। □

—कुमार इलेक्ट्रोस्टेट, रेवाड़ी।

शैतान का काम

—प्रभात भास्कर

भगवान और शैतान में बहस छिड़ी। दोनों ही अपने आप को बड़ा बता रहे थे। भगवान बोले—"मेरी मर्जी के बिना संसार में एक पत्ता भी नहीं हिलता।"

शैतान हँसा—"पूरे संसार में हत्या, लूटपाट और आगजनी हो रही है। इतना ही कह सकता हूँ कि अब तुमने मेरा भी काम करना शुरू कर दिया है।" □

रोड नं० १०, क्वा० नं० के २/३९, टेल्को कॉलोनी, जमशेदपुर

मन की बात

—भारत यायावर

यह देश भी, कोई देश है ! सिर्फ भुखमरी, और चारों ओर भ्रष्टाचार !

—अमाँ यार, इसमें देश का क्या दोष ! हम ही ऐसे हो गये हैं। हमारा नैतिक पतन हो गया है। हम सभी परिश्रम करने से जी चुराते हैं।

—पर यहाँ पूरी तरह मेहनत करने पर भी क्या मिलता है ? जो दिनभर कमाता है, कड़ी मेहनत करता है, फटेहाल होकर जीता है। और वे जो कुछ नहीं करते, महलों में रहते हैं। कारों में घूमते हैं।

—यार तुम तो कम्युनिस्ट होते जा रहे हो।

—गाली क्यों देते हो यार। आज जब मन की बात कह रहा हूँ, तो कम्यु-निस्ट कह रहे हो मुझे !

—नवतारा कार्यालय, मेन रोड, हजारीबाग

सर्वशक्तिमान

—गह्वर गोवर्द्धन

एक विद्यार्थी ने अपने शिक्षक से पूछा—'सर ! प्रजातांत्रिक व्यवस्था में सबसे शक्तिमान कौन होता है ?

'उच्चतम न्यायालय।'

'वह कैसे, सर ?

'क्योंकि उसे सरकार द्वारा बनाये गये कानूनों को अपने ढंग से अर्थ लगाने की स्वतन्त्रता है।'

'तो क्या उच्चतम न्यायालय से कोई ऊपर नहीं है ?

'है।'

'वह कौन है ?'

'गीता, कुरान और बाईबिल'—शिक्षक ने कहा ! □

आजादी

—अशोक पागल

स्वतन्त्रता दिवस की पूर्व संध्या। निर्जन सड़क-किनारे की झाड़ियों से कराहने की आवाज। अन्तर्द्वन्द्व का एक दौर झेल लेने के बाद झाड़ियों की ओर बढ़ा। वहाँ का दृश्य देखते ही आँखें बन्द हो गयीं। एक युवती पूर्ण नग्न अर्द्धचेतन अवस्था में कराह रही थी। यह समझ लेने में कोई दिक्कत नहीं हुई कि अभी-अभी इस युवती के साथ किसी ने अथवा कई लोगों ने बलात्कार किया है।

मेरे हाथ में राष्ट्र ध्वज था, जिसे मैं अभी प्रेस करवाकर लिये जा रहा था ताकि कल १५ अगस्त को उसे सम्मानपूर्वक फहराया जा सके।

युवती नि:वस्त्र थी। अचेत थी। मेरे हाथ में राष्ट्र ध्वज था। राष्ट्र ध्वज की मर्यादा और स्त्री की लज्जा। एक और अन्तर्द्वन्द्व। कुछ क्षण बाद मैंने राष्ट्र ध्वज उस पर डाल दिया और वहाँ से चुपचाप चला गया। □

—भुताहा तालाब, कचहरी रोड, राँची

गुलामी की आदत

—नैना जोगन

'सर ! ये फाखता बहुत दिनों से आपके पास हैं ?'

'हाँ ! यही कोई दस वर्ष से इस पिंजरे में है।'

'एक बात कहूँ सर, इसे आप आजाद क्यों नहीं कर देते ?'

'आजाद ही तो है, मैं इसे स्वर्ग से भी अधिक आराम से रखता हूँ, फिर रोज इसे पिंजरे से बाहर भी निकालता हूँ।'

'तो क्या ये उड़ नहीं सकती ?'

'लगता है यह उड़ने की ताकत खो चुकी है।'

'नहीं सर, ये बेचारी उड़ने का अर्थ भूल चुकी है।' □

जागरुक

—कृष्णानन्दन 'कृष्ण'

रात का सन्नाटा कुत्तों के लड़ने की आवाज से टूट जाता है। कुछ लोग धनगांव एक्सप्रेस की प्रतीक्षा में इधर-उधर बैठे हुए हैं। रात गहरा गई है। कुछ मजदूर ट्राफिक गोलम्बर पर सोये हुए हैं।

सिनेमा रोड से एक आदमी ट्राफिक गोलम्बर की तरह आता है। लड़खड़ाती चाल से पियक्कड़ तथा मैले कपड़े और अस्त-व्यस्त बालों को देखकर पागल का अहसास होता है।

गोलम्बर के पास आकर वह रुकता है। सोये हुए लोगों को गौर से देखता है। फिर गिनती शुरू करता है—एक, दो तीन···दस···पन्द्रह और अचानक रुक जाता है।

सोये हुए लोगों को एक बार फिर गिनता है। इधर-उधर देखता है फिर चिल्लाने लगता है? "किसके आर्डर से सोया है तुम लोग यहाँ? कौन है इस शहर का मालिक? हमको जवाब दे। ये लोग लावारिस के माफिक यहाँ क्यों सोए हैं?"

कोई कुछ नहीं बोलता है। वह आक्रोश की मुद्रा में मुट्ठियाँ हवा में उछालता है, मैं जानता हूँ·· कोई कुछ नहीं बोलेगा। सोओ मेरे बच्चो··· मगर मैं पूछता हूँ···कौन है यहाँ का मालिक·····देखता क्यों नहीं·· मेरे मासूम बच्चे भूखे फुटपाथ पर सोये हुए हैं।" और सामने होटल के नीचे लड़ते कुत्तों को देखकर वह ठहाका लगाता है। बुदबुदाता है, "साले तुम लोगों में भी भाईचारा नहीं रह गया?"

"का हो, काका, मस्ती बा नू?" एक रिक्शा वाला पूछता है। वह चिल्लाता है।

"कमीनो, उड़ाओ मेरा मजाक, खूब उड़ाओ मेरा मजाक···लेकिन तुम लोग दो बजे रात को यहाँ किसके आर्डर से बैठे हो। बताओ वो लोग गोलम्बर पर क्यों सोया है? मैं जानता हूँ, तुममें से कोई कुछ नहीं बोलेगा। तुम्हारी जबान जो बन्द है।"

गोलम्बर पर सोये लोगों की ओर देखकर वह फिर चिल्लाता है, "आओ मेरे बच्चो, आओ··मैं तुम्हारे हक की लड़ाई लड़ूंगा।" नजर से देखता है, फिर शुरू हो जाता है।

"ठीक है मेरे बच्चों, तुम आराम से सोओ। मैं तुम्हारे हक की लड़ाई लड़ूंगा, अकेले।" और सामने से आती एक काली कार के सामने खड़ा हो जाता है। हवा में मुट्ठियाँ भाँजते हुए चिल्लाता है—

"तुम लोग देखता नहीं, मेरे बच्चे सोये हुए हैं···गाड़ी रोको, नहीं तो उनकी नींद टूट जायगी।"

गाड़ी का दरवाजा एक झटके से खुलता है। दो आदमी बाहर आते हैं और उसे पकड़कर गोलम्बर पर पटक जाते हैं।

"वह गोलम्बर पर सोये लोगों के बीच में पड़ा बड़बड़ाता है।"

"सालो···तुम खूब नींद से सोओ···लेकिन मैं तुम्हारे हक की लड़ाई लडूंगा ····अकेले···अकेले।" □

तीसरी पीढ़ी

—तरुण जैन

किशोर का मन आज जरूरत से ज्यादा बेचैन था। उसे न जाने क्यों रह-रह कर वह घटना याद आ रही थी; जब उसकी माँ ने उसके बापू से कहा था, 'जब देखो किताबों को माथे से लगाए बैठे रहते हो। इन किताबों से बच्चों का पेट नहीं भरेगा। इस 'मास्टरी' के साथ-साथ कुछ और भी सोचो। अगर यही हाल रहा तो बच्चों का क्या होगा ?" बापू ने जोरदार दो-चार थप्पड़ माँ के गाल पर रख दिए थे। उन्हें माँ की ये बातें सारहीन लगती थीं। वह कोने में बैठा हुआ यह दृश्य देखकर सिहर उठा था। आज उस घटना को याद कर उसके दिमाग की नसें तन गई थीं।

बापू के जाने के बाद हुए रिक्त स्थान पर उसे नौकरी मिल गई थी। अभी वह सोच ही रहा था कि उसकी पत्नी शोभा ने आकर उसे वर्तमान में ला पटका। ···'हाथ-पर-हाथ धरे रखने से काम नहीं चलेगा। कल रामू की फीस भरी जानी है। राशन से चावल लाना है।··मुन्नी की स्कूल की ड्रेस का कपड़ा लाना है। ··और दूध वाले को ।'

तड़ाक्-तड़ाक्···! दो थप्पड़ शोभा के गाल पर पड़े। सब कुछ उसकी सहन शक्ति से बाहर हो चुका था। एक तो स्कूल की माथा-पच्ची और फिर घर पर भी···।

उसने देखा—रामू एक कोने में बैठा कंपकंपा रहा था। □

—भगवान महावीर मार्ग रेवाड़ी–१२३४०१

समीचीन : 12

पागल

—अनिल जन विजय

गर्मी-सर्दी-बरसात वह यूँ ही घूमता रहा है, चिथड़े लपेटे अर्धनग्न अवस्था में। कभी-कभी ढेर सारी छोटी-छोटी लकड़ियाँ बीन लाता है इधर-उधर से। फिर घंटों उन्हें सजाता रहता है। साथ-साथ बड़बड़ाता जाता है। 'बैठिये बिड़ला जी, आप यहाँ बैठिये, टाटा जी की बगल में और भरतराम जी आप वहाँ डालमिया जी के साथ जम जाइये, जहाँ साहू साहब बैठे हैं। पीलू मोदी तो अटल जी के साथ बैठेंगे। क्या? आपत्ति है कुछ, तो चलिये वहाँ चरणसिंह के साथ बैठ जाइये। जग्गू भाई तो वहाँ मोरारजी के साथ ठीक रहेंगे। इन्दिरा जी के लिए वह आगे वाली लाइन में जगह रिजर्व है, डागे तो बैठेंगे उन्हीं के पास। हाँ, नम्बूदरीपाद और ज्योति बसु जहाँ बैठना चाहें, उनकी मर्जी पर है। चलिए, विपक्ष के साथ बैठने का नाटक ही करिये···।' और वह इसी प्रकार बोलता रहता है, जब तक कि सारी लकड़ियाँ एक ढेर का रूप नहीं ले लेतीं। फिर वह माचिस निकाल कर उस ढेर में आग लगा देता है। जब सारी लकड़ियाँ सुलगने लगती हैं, तो वह बेतहाशा, तालियाँ बजाने लगता है, उछलने लगता है, अट्टहास करने लगता है, किलकारियाँ मारने लगता है, खुशी से चीखने लगता है। लोग कहते हैं—वह पागल हो गया है। □

—४४८३, गली जाटान, पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

लघुकथा और कहानी एक ही कुल की सन्तानें हैं लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि लघुकथा कहानी का छोटा रूप है। लघुकथा अब एक स्वतन्त्र विधा है वैसे ही जैसे उपन्यास और कहानी एक ही कुल में जन्म लेने पर भी स्वतन्त्र विधाएँ हैं।

—डॉ० कमल किशोर गोयनका

समीचीन : 12

विधवा

—रामयतन प्रसाद यादव

एक छोटे एवम् पिछड़े गाँव में एक गरीब परिवार किसी तरह अपना जीवन यापन करने की चेष्टा में संघर्षरत है। पति पत्नी दिनभर खेतों में मजदूरी करते हैं और पति शाम होते ही अपनी कमाई तो शराब के ठेके पर ही दे आता है। बस, पत्नी की कमाई से उनका एवं उनके एकमात्र बच्चे का पेट पलता है।

एक दिन पत्नी की तबीयत कुछ सुस्त हो गयी और वह मजदूरी करने नहीं जा सकी। अतः, उस दिन फकाकशी ने उन्हें धर दबोचा। परन्तु बच्चा इन सारी जेहमतों से अनजान—माँ से अपनी क्षुधा मिटाने हेतु कहने लगा—

'माँ कुछ खाने को दो न ! भूख से मरा जा रहा हूँ।'

'बेटा ! कुछ देर और ठहर जा तेरा बाप कुछ लेकर आता ही होगा।'

'माँ ! कुछ देर ठहरने के लिए तो तू सवेरे से ही कह रही है।' माँ के आँचल को उसने अपने हाथों से खींचते हुए कहा।

'माँ ! तू मुझे साथ लेकर वहाँ क्यों नहीं चली जाती ?'

'कहाँ ?' माँ ने आश्चर्य से पूछा।

'वहीं, जहाँ रामप्यारी चाची रहती है। वहाँ तो खाने-पीने की कोई कमी नहीं है।'

'बेटा ! वह विधवा-आश्रम है। वहाँ सिर्फ विधवायें ही रहती है।'

'तो, तू भी विधवा क्यों नहीं हो जाती···माँ !' □

—पो० फतूहा, मकसूदपुर

परिचय

—अमरनाथ चौधरी 'अब्ज'

"प्रायः लोग मेरे नाम से घबराते हैं और तुम्हें मुझसे डर नहीं लगता ?" मौत ने पूछा।

"नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैं मध्यवर्गीय एक शिक्षित बेरोजगार हूँ"— जिन्दगी ने कहा। □

—२, बी/२-४३०, बोकारा स्टील सिटी–८२७००१

मजबूरी

—पवन शर्मा

वे दोनों बहुत देर से इस चट्टान पर बैठे थे। मौन···दोनों में से कोई कुछ नहीं कह रहा था। साँझ ढल रही थी। ढलती धूप जरा हल्की हो गई थी। चट्टान के नीचे नाले में घास और वृक्ष के साये अपेक्षाकृत धुँधले होने लगे थे।

"यहाँ पर तुम्हें अच्छा लग रहा है ?" बहुत देर बाद उसने कहा।

"बहुत · तुम्हारे न रहने पर मैं अपना अकेलापन यहीं गुजारता हूँ।"

"कब से !···मेरे आने के पहले से या···!"

उसके इस प्रश्न का उत्तर वह नहीं दे पाया। एक क्षण उसकी ओर घूरने के बाद कंकड़ उठा-उठाकर वह नाले में फेंकने लगा।

चुब्ब ! चुब्ब ! चुब्ब···!

"रज्जन !" उसने कहा और उसके पास सरक आई। उसके कंधे पर हाथ रख बोली, "कई दिन से मैं एक बात पूछना चाहती हूँ ?"

वह बिल्कुल चुप था। बस नाले में कंकड़ फेंकता रहा।

चुब्ब ! चुब्ब ! चुब्ब···!

"डू यू लव मी ?"

वह चौंक उठा ···उसकी ओर देखा और बोला, "कोई शक है ?"

"नहीं···फिर तुम अपने घर··मेरे घर पर हम दोनों की शादी की चर्चा क्यों नहीं करते हो ? कब तक ऐसे ही रहेंगे ?"

सूरज और भी ढल चुका था।

"जब तक मैं बेरोजगार रहूँगा ··तब तक तो नहीं।" वह नाले में कंकड़ फेंकता रहा।

चुब्ब ! चुब्ब ! चुब्ब··· □

देलाखारी, जिला छिंदवाड़ा (म० प्र०)

सूत्रपात

—परमेश्वर लाल वर्णवाल

लोगों की चहल-पहल, शोर और गोलियों की आवाज सुनकर गाँव में ठहरे राहगीर ने पूछा, 'क्या बात है भाई, इतनी रात को बन्दूक चल रही है, कहीं डाका तो नहीं पड़ रहा है !"

"नहीं भाई, तुम चुपचाप सो जाओ, यह डाका नहीं डाके का सूत्रपात है, गाँव के मुखिया जी के यहाँ लड़का पैदा हुआ है।" □

—चास महाविद्यालय, चास, धनबाद–८२७०१३

समीचीन : 12

श्रम

—महावीर प्रसाद जैन

वह काफी देर से किसी रद्दी वाले की बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहा था। इस बेताबी से कि कभी-कभी उसे अपनी इस पढ़ने की आदत पर कोफ्त भी होने लगती। ऐसा अमूमन उसी दौरे में होता है, जब उसकी जेब खाली हो चुकी होती है।

आज खाने तक के लिए भी पैसे न होने के कारण, काफी मानसिक तनाव से गुजरने के बाद उसे रद्दी बेच डालने का ख्याल आया, तो उसे कुछ राहत महसूस हुई। राहत के ऐसे क्षणों में अपनी पढ़ने की आदत उसे अच्छी भी लगती है।

रद्दी वाले की आवाज सुनकर उसने उसे ऊपर बुला लिया और ढेर-से अखबार उसके सामने डाल दिये हैं · बिना मोलभाव किए !

रद्दी वाला एक-एक अखबार उठा कर तह लगाता हुआ कुछ गुनगुना भी रहा है और बहुत खुश-खुश भी लगता है···।

एकाएक उसकी नजर एक अखबार के बीचों-बीच बने बॉक्स पर ठहर गयी। वह अखबार उठाकर पढ़ने लगा।

'क्या पढ़ने लगे भाई साहब ? इधर दीजिए···' रद्दी वाले की आवाज से उसका ध्यान टूटा और उसने चुपचाप अखबार उसकी ओर बढ़ा दिया।

'कोई खास खबर है क्या ?' रद्दी वाला वजन करके अखबारों को एक ओर सरकाते हुए पूछने लगा।

'एक बी० ए० पास युवक ने आत्महत्या कर ली···'

'आत्महत्या कर ली !' वह पैसे गिनता हुआ चौंक पड़ा, फिर सहसा सहज सा बोला : 'बेवकूफ'।

'बेवकूफ कैसे कह रहे हो ? अगर उसे कोई काम मिल जाता तो वह अपनी जान क्यों गँवाता ?'

'अजी छोड़िये, भाई साहब !' कुछ न करने के लिए और श्रम से बचने के लिए सौ बहाने हैं···बी० ए० कर लेने के बाद वह मेरी तरह रद्दी भी नहीं बेच सकता था क्या ?' □

ए—१/२४२ ए, लारेंस रोड, नई दिल्ली–३५

राजनीति और राजनीतिज्ञ

उनसे कहना

—आनन्द बिल्थरे

"—ऊधो !"

"—जी !"

"—तुम यात्रा के लिये तैयार हो ?"

"—जी !"

"—मार्ग व्यय हेतु द्रव्य और चना-चबैना की समुचित व्यवस्था है ?"

"—जी !"

"तुम्हें मथुरा जाकर महामहिम कृष्ण से क्या कहना है, यह तो तुम्हें ज्ञान ही है। फिर भी, एक बार और सुन लो। तुम्हें राजभवन में महामहिम से मिलना है और स्पष्ट रूप से कहना है कि वे ब्रज क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं और जनता को उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।"

"—जी !"

"ब्रजक्षेत्र की वास्तविक स्थिति का वर्णन करते हुये तुम्हें कहना है कि जब से उन्होंने उसे छोड़ा है, फिर चलकर देखने की भी उन्हें फुर्सत नहीं रही है। उनकी याद में राधाएँ, मनसुखे, सकल ब्रजवासी व्याकुल हो रहे हैं। उनकी आँखें दिन-रात मथुरा के राजमार्ग पर ही लगी रहती हैं।"

"—जी !"

"उन्हें याद दिलाना कि उनके कंस वध और अत्याचार मिटाने की कहानियों से हम सबके दिल योजन भर चौड़े हो गये हैं। लेकिन उन्हें कहना कि उनके अपने ही घर में अभावों, अनाचारों का कंस अभी जीवित है। उनके वादों के खुदाये समस्त कूप, जलशून्य हो गये हैं। उम्मीदों के सब्ज बाग, इन्तजार की लू से मृत प्राय: हैं।"

"—जी !"

"उन्हें साफ-साफ कह देना कि स्थिति अब बर्दाश्त के बाहर होती जा रही है। अगर उन्होंने असन्तोष की अतिवृष्टि से गोवर्धन उठाकर जनता की रक्षा नहीं की, तो समूचा क्षेत्र इन्द्र के कोप से जलशून्य हो जायेगा और उस स्थिति में उनके लिये केवल हाथ मलकर पछताने के और कुछ शेष नहीं रहेगा।" □

महामन्त्री, प्र० ले० सं०
बालाघाट (म० प्र०) ४८१००१

दीक्षा

—पुष्पलता कश्यप

राजनीतिक दीक्षा की समाप्ति पर गुरु ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेने की ठानी।

'तुम्हें क्या 'स्कोप' दिखता है, वत्स'—एक से पूछा।

'जनहित, गुरुदेव' शिष्य ने प्रत्युत्तर दिया।

'तुम तो बिल्कुल कोरे ही रह गये'—गुरु के चेहरे पर निराशा दिखाई दी।

'और तुम्हें वत्स ?' —प्रश्न को दूसरे की ओर उछाला गया।

'पार्टी-हित, गुरुदेव' प्रत्युत्तर था।

'तुम्हें अभी बहुत-कुछ सीखना है'—गुरुदेव का मन्तव्य था।

'और, तुम्हें ?' प्रश्न तीसरे के सामने था।

'निजी-हित, आचार्य।' प्रत्युत्तर रहा।

'सच्चाई के बहुत करीब पहुँच गये हो। फिर भी तुम्हारी शिक्षा अभी अपूर्ण है'—गुरु ने कहा।

अब गुरुदेव अपने उस चहेते और होनहार शिष्य की ओर मुखातिब हुए जिसके प्रति वह बहुत आशावान थे। स्नेह-सिक्त स्वर में पूछा—

'क्यों वत्स, तुम्हें क्या दिखता है ? जनहित ?'

'नहीं, गुरुदेव।'

'तो पार्टी-हित ?'

'नहीं।'

'तो स्वार्थ की साध !'

'यह भी नहीं।'

'तो क्या देख रहे हो ?' गुरु की उत्कट उत्सुकता मुखरित हो उठी।

'सिर्फ कुर्सी गुरुदेव। इसके सिवा मुझे कुछ भी दिखायी नहीं पड़ रहा।'

'धन्य हो वत्स !'—गुरुदेव उछल पड़े—'तुम लक्ष्य को पहचानते हो मेरा श्रम सार्थक हुआ। तुम-सा शिष्य पाकर मैं गौरवान्वित हूँ'—गुरु गद्‌गद् हो गये और आगे बढ़कर अपने होनहार शिष्य को गले से लगा लिया। □

—हनुमान मन्दिर, कचहरी पोस्ट ऑफिस के पास, जोधपुर

दोस्ती

—विष्णु प्रभाकर

यात्रियों से भरी बस अब वहाँ आ पहुँची थी जहाँ प्रायः सन्नाटा रहता है। अब भी था। दूर-दूर तक फैली बंजरभूमि। उस पर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, सड़क पर गहरे गड्ढे। यात्री भी मौन हो गये थे मानो, वातावरण ने उन्हें भी ग्रस लिया हो कि तभी उस त्रासद सन्नाटे को तोड़ती बस सहसा एक झटके के साथ रुक गयी। गिरते-टकराते यात्री किसी आशंका से चौंक उठे। वे कुछ समझें कि एक क्रूर कड़कता स्वर गूँज उठा, 'खबरदार, जो कोई हिला गोली मार दूँगा।'

'ओह ! ये तो डाकू हैं···'

दिन का प्रकाश अभी शेष था, भयातुर दृष्टि से देखा—सचमुच उनकी बस को डाकुओं ने घेर लिया था। उनके चेहरों पर नकाब थी और हाथों में स्वचालित हथियार। क्षणभर में अनेक कंठों से चीख-सिसकियाँ उठीं-दबीं। हृदय की धड़कनें झंझा की तरह साँय-साँय करती रहीं।

और डाकू लूटते रहे—बटुए, जेवर, घड़ियाँ, सूटकेस सभी कुछ सहेज लिया उन्होंने। किसी ने प्रतिवाद करने का साहस जुटाया कि कुंडे की मार पड़ी।

यात्रियों में एक विधायक भी था सपत्नीक। वे दोनों भी नहीं बचे। कोई मदद को नहीं आया उनकी लेकिन जब डाकू जाने लगे तो अघटित घट गया। डाकुओं के सरदार ने एक-एक करके विधायक की चीजें लौटा दीं—पर्स, मणिमाला, ब्रीफकेस-सूटकेस सभी···।

वे चले गये। यात्रियों की दृष्टि अब विधायक पर थी। अपनी व्यथा भूलकर एक ने विधायक से पूछा, "उसने आपकी सब चीजें लौटा दीं।"

'जी हाँ !'

'आप उन्हें जानते हैं ?'

'कौन हैं ?'

'उनका लीडर मेरा सहपाठी रहा है और···'

'और···'

'इस इलाके का उप पुलिस अधीक्षक है वह।'

'क्या···! !'

एक साथ कई कंठ स्वर चीख उठे।

दो क्षण बाद किसी ने साहस किया, 'आप विधायक हैं। आपको इसकी रिपोर्ट मुख्यमन्त्री से करनी चाहिए।'

'मैं ऐसा कुछ नहीं करूँगा।'

फिर एक साथ कई स्वर उठे, 'क्यों नहीं करेंगे।'

'क्योंकि उसने मुझसे दोस्ती निभाई। मैं उससे निभाऊँगा। □

—८१८ कुंडेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली—११०००६

समीचीन : 12

मंत्र

—राजेश 'देशप्रेमी'

रामदेव प्रसाद नगर में गुण्डागर्दी करते-करते इस बार चुनाव भी जीत गये। इस देश का सौभाग्य या दुर्भाग्य कहें, अपने जोड़-तोड़ की राजनीति की कृपा से मन्त्री पद भी झपट लिया। कल ही मेरे पास आये थे। काफी उदास थे। पूछने पर बोले—यार ! कोई रास्ता बताओ। संसद का सत्र शुरू होने वाला है। विपक्षी सदस्यों के प्रश्नों से डर लग रहा है।

अरे रामदेव चिन्ता क्यों करते हो ? प्रश्नों के उत्तर तो सैक्रेटरी तैयार करते हैं।

अरे यार ! ये साले विपक्षी सदस्य बड़े ही···यार, तुम कोई रास्ता बताओ।

देखो यार, अगर सांसद प्रश्न करे तो सैंक्रेटरी द्वारा तैयार उत्तर बता देना। अगर तब भी कोई सांसद आरोप लगाये तो तुम कह देना—'हम जाँच करायेंगे !' दूसरी दफा कोई सांसद जाँच के बारे में जानना चाहे तो कह देना—'जाँच अभी चल रही है।'

तीसरी दफा कोई सांसद जाँच के बारे में पूछे तो कह देना—'जाँच का काम पूरा हो चुका है, सरकार मामले की जाँच का अध्ययन कर रही है।

चौथे दफे भी कोई बेशर्म पूछे तो कह देना—'सरकार देश-हित को ध्यान में रखते हुए जाँच के विषय में बताने में असमर्थ है।

रामदेव वाह ! वाह ! करते चले गये। □

क्वा० नं० १५, गिट्टी मशीन, छोटा गोविन्दपुर, जमशेदपुर

लघुकथा अपने आप में एक स्वतन्त्र सशक्त विधा है। "सतसैया के दोहरे, देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर" वाली बात ही नहीं है, इसकी शक्ति के पीछे सामाजिक परिवर्तन की पूरी प्रक्रिया है।

—विष्णु प्रभाकर

कुर्सी देवी

—नारायण लाल परमार

काफी दिनों पहले की बात है। एक बार कुर्सी देवी ने एक साथ तीन व्यक्तियों के स्वप्न में आकर कहा—'कल ठीक आधी रात को बस्ती के बाहर तालाब के किनारे पीपल के नीचे आकर मुझसे मिलो।'

दूसरे दिन ठीक आधी रात के समय तीन आदमी अलग-अलग दिशाओं से आकर पीपल के नीचे कुर्सी देवी से मिलने के लिए उपस्थित हुए। वे तीनों एक दूसरे से अपरिचित थे और संदेह से एक दूसरे का मुँह देख रहे थे।

इतने में कुर्सी देवी प्रकट हुई। उसने सबसे पहले एक सीधे-सादे किसान लगने वाले व्यक्ति को अपने पास बुलाकर पूछा—'यदि मैं तुम्हारे पास आऊँ तो तुम मेरे साथ कैसा सलूक करोगे?' उस आदमी ने कहा—'देवी, यदि तुम मुझे मिल गई तो मैं एक नया देवालय बनवाकर धूमधाम से उसमें तुम्हारी स्थापना कराऊँगा। जिससे कि जनसाधारण रोज तुम्हारी पूजा कर सके।' कुर्सी देवी ने कहा—'अब तुम जा सकते हो।'

दूसरा आदमी एक व्यापारी था। कुर्सी देवी ने उससे भी अपना वही प्रश्न दोहराया। व्यापारी ने जवाब दिया—'देवी, तुम मुझ पर खुश हो, यह मेरा सौभाग्य है। मैं तुम्हारी तस्वीर को सोने के फ्रेम में मढ़वाकर अपनी दुकान में ठीक तिजोरी के ऊपर रखूँगा। रोज श्रद्धा भाव से अगरबत्ती जलाऊँगा।' कुर्सी बोली—'तुम भी जा सकते हो।

अब तीसरे और अन्तिम आदमी की बारी थी। वह नेता था कुर्सी देवी का सवाल सुनकर बोला—'देवी जी, बन्दा आपकी हर तरह की सेवा के लिए तैयार है। आपकी कृपा की देर है। फिर देखियेगा। आपकी ही कसम खाकर कहता हूँ कि मेरी तो संग्रह शक्ति बढ़ जाएगी। ठाट होंगे। फिर किसी से अपना वास्ता ही क्या रहेगा। आप मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाएँगी और मैं आपकी शान में चार चांद लगा दूंगा।'

यह सुनकर कुर्सी देवी अत्यन्त प्रसन्न हुई। दरअसल अपने कृपा पात्र के रूप में उसे एक ऐसे ही आदमी की तलाश थी। □

विज्ञान, कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय धमतरी (रायपुर) म० प्र०

सांड

—रंगनाथ दिवाकर

मन्त्रीजी के पुत्र ने एक मोटे ताजे साँड को फसल चरते हुए देखकर पूछा 'पिताजी ! क्या यह वही साँड है जिसे दादी के श्राद्ध के अवसर पर दाग कर छोड़ा गया था ?'

पुत्र के भविष्य को लेकर चिंतित मन्त्री जी ने बेटे की पीठ थपथपायी बोले 'तूने सही पहचाना बेटे !'

'लेकिन दागते समय तो यह एकदम मरियल-सा बछड़ा था। ओह ! कितना तड़पा था तब !' पुत्र कुछ चिंतित हो गया।

'देखो बेटे ! दागे जाने के बाद इसे सारे गाँव की फसल को चरने का अधिकार मिला। साल भर में ही यह खा-पीकर मरियल बछड़े से मोटा-ताजा साँड बन गया। यह राजनीति भी ऐसी ही प्रक्रिया है। तुम व्यर्थ चुनाव लड़ने से डरते हो। एक बार कुछ तकलीफ होगी। लेकिन फिर सारे राज्य को चर जाने का अधिकार मिल जायेगा।' पिता ने समझाया।

'मैं इस बार चुनाव लड़ूँगा पिता जी !' पुत्र की आँखों में साँड वाली शोखी उतर आयी। □

अवैध संतान

—शंकर पुणतांबेकर

पैसा प्रायः इधर सरकार की ओर चला आता। ऐसा समय साधकर आता कि संविधान घर पर न होता।

आज भी जब आया तो संविधान नहीं था।

सरकार वह दोनों बैठे बातें कर रहे थे। सरकार कह रही थी, 'इतना सुनियोजित रहते भी गरीबी पैदा हो ही रही है।'

सुनकर पैसा सिर्फ हंस दिया। □

—१६३, जिलापेठ, जलगाँव, ४५२००१

समीचीन : 12

उतार लो

—पारस दासोत

रेस्ट हाउस के कमरे में ले जाते समय वह बोली—'दरवाजा बन्द मत करो !...'

मुझे मालूम है...यहाँ क्यों लाया गया है मुझे...और हाँ ! दरवाजा बन्द करने से तुम्हें पूरा मजा भी तो नहीं आयेगा।'

उसको इस तरह तैयार देख ..

थोड़ी देर बाद वह बोला—'साड़ी उतार लो'

'नहीं !...

मैं खुद नहीं उतारूँगी...थोड़ा कष्ट करो...तुम्हीं उतार लो ..मेरे बदन से यह साड़ी...'

और उसने मुस्कुराते हुए साड़ी उतार दी।

●

थोड़ी देर बाद...

वह बोली—'मैं घर जाऊँगी...'

'साड़ी तो पहन लो !'

'नहीं !'......

'यह साड़ी मेरी नहीं...तुम्हारी है'—कुर्सी पर पड़ी साड़ी की तरफ देखते हुए वह बोली।

'मेरी !'

'हाँ...तुम्हारी...! अभी कुछ दिनों पहले ही तो तुमने...चुनाव के समय बाँटी थी।'

अब...उसके कदम दरवाजे की तरफ तीव्रता से बढ़ रहे थे। □

—साकेत, बरेठ रोड, गंज बासोदा–४६४२२१

कहानी अपने विस्तृत केनवास पर मानव-मन की क्षणिक अनुभूति को जिस प्रभावशाली तेवर और मारक शक्ति के साथ व्यक्त नहीं कर पाती, उसे लघुकथा अपने छोटे-से फलक, कम शब्दों एवं शिल्प की हल्की-सी कनी के साथ प्रस्तुत कर जाती है। **—डॉ० सतीश बे**

समीचीन : 12

प्रशासन व्यवस्था

पटवारी की लिस्ट

—हीरालाल नागर

भारी वर्षा से कच्चे मकान भरभराकर ढह गये। जो लोग साधन सम्पन्न थे, उन्होंने तो अपने मकान ठीक कर लिए। रह गये बेचारे गरीब लोग। वे क्या करते ?

सरकार ने गरीबों को आर्थिक सहायता देने का निश्चय किया। कलेक्टर ने तहसीलदार को, तहसीलदार ने कानूनगो को, और कानूनगो ने अपने मातहत पटवारियों को आदेश जारी किये कि वे अपने-अपने क्षेत्रों से यह जानकारी जल्द-से-जल्द हासिल करें कि वर्षा और बाढ़ में कितने लोगों के मकान क्षतिग्रस्त हुए हैं।

पटवारी अपना बस्ता लेकर गाँव में दाखिल हुए। सबसे पहले एक छोर से दूसरे छोर तक गाँव का मुआइना किया। सभी के हाल-चाल पूछे। गरीबों को छोड़कर और सभी लोग खुश नजर आये।

गाँव के खास-खास लोगों के परामर्श से पटवारी ने बाढ़ और वर्षा से पीड़ित लोगों की 'लिस्ट' तैयार की। गाँव के सरपञ्च के घर पटवारी ने एक हफ्ते में कई मुर्गे हलाल किये। महुए के रस का आनन्द लिया।

आखिर एक सप्ताह की 'कड़ी मेहनत' के बाद पटवारी ने उक्त नामावली अपने विभागीय अधिकारी को सौंप दी। गरीबों को आशा बँधी कि नये घर बनवाने के लिए सरकार पैसा जरूर देगी।

लेकिन···चार-महीने बाद भी उनके मकान ज्यों-के-त्यों गिरे पड़े रहे।

सहायता उन्हें मिली जो पहिले ही पचास-पचास रुपये देकर 'पटवारी की लिस्ट' में अपने नाम चढ़वा चुके थे। □

दूध-का-दूध, पानी-का-पानी

—रामनारायण उपाध्याय

एक राजा के यहाँ मनों दूध आता था। एक रोज राजा के मन में शक हुआ कि कहीं ग्वाला दूध में पानी तो नहीं मिला देता ? अतएव उस पर निगाह रखने के लिए एक आदमी नियुक्त कर दिया गया। दूसरे रोज वह आदमी भैंस लगाने के समय ग्वाले के यहाँ पहुँचा और बोला—'भाई, राजा के यहाँ मनों दूध आता है। हमारे भी बाल-बच्चे हैं। यदि उसमें से एक सेर दूध हमारे यहाँ पहुँचा दिया करो, तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाएगा !'

ग्वाले ने एक सेर दूध उसके यहाँ पहुँचा दिया, और उसके बदले दूध में एक सेर पानी मिला दिया।

इससे पहले ग्वाला कभी दूध में पानी नहीं मिलाता था।

कुछ दिन बाद राजा को शक हुआ कि उस आदमी का क्या भरोसा ! कहीं वह ग्वाले से मिल न गया हो। अतएव उस जाँच के लिए एक ऑफिसर अवश्य रहना चाहिए। तुरन्त एक ऑफिसर नियुक्त कर दिया गया।

दूसरे रोज वह ऑफिसर उन दोनों के पास जाकर बोला, 'भाई ! राजा के यहाँ मनों दूध जाता है। हमारे भी बाल-बच्चे हैं—यदि उसमें से दो-चार सेर दूध हमारे यहाँ पहुँचा दिया करो, तो क्या हर्ज है ? ग्वाले ने चार सेर दूध उनके यहाँ पहुँचाकर दूध में चार सेर और पानी मिला दिया।

राजा को अपने परिवार से खबर मिली, दूध कुछ ठीक नहीं आ रहा है।

राजा ने सोचा, हमने ग्वाले पर निगाह रखने के लिए तो आदमी बैठा दिया, लेकिन अभी तक दूध की जाँच के लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया। अब दूध की भी जाँच अवश्य हो जानी चाहिए।

दूसरे रोज दूध की जाँच का यन्त्र लेकर साहब ग्वाले के यहाँ पहुँचे; बोले —'देखो, यह रहा यन्त्र। अब देखता हूँ तुम कैसे गड़बड़ करते हो ! एक-एक को जेल न भिजवाया तो मेरा भी क्या नाम !'

वे बोले—'महाशय, आप भले हमें जेल भिजवायें लेकिन हम तो आपको दूध दही से नहलाए बिना न रहेंगे।' उन्होंने देखा, साहब पर शब्द असर करते जा रहे हैं—अतएव वे बोलते गये। 'देखिये, राजा के यहाँ मनों दूध जाता है आपके भी बाल-बच्चे हैं; जाँच से आपको क्या मिल जाएगा। यदि इसमें से मन चाहा दूध आपके यहाँ पहुँच जाया करे तो क्या हर्ज है ?' □

साहब ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

दूसरे रोज दूध देखकर उन्होंने रिपोर्ट दी—दूध निखालिस शुद्ध आ रहा है, उसमें पानी का कोई अंश नहीं रहता है।

राजा परेशान थे।

अन्त में राजा ने इन सब पर एक जाँच-कमीशन कायम कर दिया। परिणाम वही हुआ, जो होने को था।

अभी तक दूध में पानी मिलाया जाता था, अब पानी में दूध मिलकर आने लगा।

राजा क्षुब्ध हो उठे। क्या करें, कुछ समझ में नहीं आता था। इस पर परिवार के स्त्री-बच्चों ने सुझाव दिया—

'महाराज ! आपने यह जो जाँच की फौज तैयार कर रखी है, इसे आप तुरन्त बरखास्त कर दीजिए। फिर देखियेगा, सब ठीक हो जाएगा।' लाचार हो राजा ने ऐसा ही किया।

और दूसरे दिन देखा—पानी-पानी छंट चुका था, और राजमहल में पुनः दूध आने लगा था। □

—साहित्य कुटीर, ब्राह्मणपुरी, खंडवा (म० प्र०)

भीड़

—अशोक भाटिया

केमिस्ट की दुकान के आगे भीड़ जमा होने लगी। केमिस्ट ने सिपाही को बताया—वो देखिये, वह औरत दवा के दस रुपये दिये बिना भागी जा रही है।

सिपाही औरत के पीछे-पीछे हो लिया।

भीड़ ने कहा—देखो, साली चोर है। ऐसे भागी जाती है जैसे बाप का माल हो।

औरत अपने घर में पहुँच गयी। सिपाही ने अन्दर झाँक कर देखा। वह अपनी बीमार माँ के कंधे पकड़े हुए उसे दवा दे रही थी। उसकी पतली हालत देखकर सिपाही वापिस हो लिया।

आकर उसने केमिस्ट से कहा—'लो भइ अपने दस रुपये' और जेब से दस का नोट देकर चुपचाप चल दिया।

भीड़ में से एक फुसफुसाया—साले ने गरीब औरत को भी नहीं छोड़ा। □

—८६, दयाल सिंह कॉलोनी, करनाल–१३२००१

कानून और व्यवस्था

—डॉ० श्यामसुन्दर लाल

दो पत्रकार एक 'कॉकटेल पार्टी' से एक ही टैक्सी में लौट रहे थे। एक पत्रकारिता के क्षेत्र में वरिष्ठ था दूसरा कनिष्ठ। कनिष्ठ पत्रकार ने बात के लिए बात उठाने की तरंग में वरिष्ठ पत्रकार से पूछा—"कानून और व्यवस्था में क्या अन्तर है ?"

वरिष्ठ पत्रकार ने अपने रंग में उत्तर दिया—'कानून, कानून है और व्यवस्था, व्यवस्था है।

—ठीक है सर ! मगर इसे 'जस्टीफाइ' कैसे किया जायेगा ?

वरिष्ठ पत्रकार ने हँसते हुए कहा—"बहुत सरलता से। मान लो, तुम्हें, मुझे या किसी बड़े को गोली मार दी जाये तो कानून उसे मौत की सजा देगा। देगा या नहीं ?"

—यस सर।

—क्यों ? क्योंकि कानून की नजर में गुनाह, गुनाह होता है जो छोटे बड़े प्राणों में भेद नहीं करता। कानून की नजर एक होती है। समझे ?

—यस सर ! अपनी गर्दन को अधिक लोच देते हुए कनिष्ठ पत्रकार ने स्वीकार किया। इसी प्रकार वरिष्ठ पत्रकार बोले—'व्यवस्था, व्यवस्था है। जैसे, भगवान न करे तुम बस या रेल में सफर करते समय परमात्मा को प्यारे हो जाओ और कोई बड़ा आदमी हवाई जहाज में यात्रा करते समय स्वर्गवासी हो जाये तो तुम्हारे परिवार वालों को हजार, दो हजार मिलेंगे। बड़े के परिवार वालों को लाख से कम नहीं। यहाँ प्राणों का मूल्य अलग-अलग है क्योंकि व्यवस्था अलग-अलग है। कुछ समझे ?

—समझ गया सर। वेरी फाइन जस्टीफिकेशन।

वरिष्ठ पत्रकार प्रसन्न हो गया। उसने आशीर्वचन की मुद्रा में कनिष्ठ पत्रकार के सिर पर हाथ फेरा और बोला। नाइस बॉय तुम भविष्य में अच्छी उन्नति करोगे।

□

—१५७, गांधी पार्क कॉलोनी, इन्दौर

लघुकथा अपनी संक्षिप्तता में जीवन की व्यापकता लिए रहती है। यह मानव चरित्र के एक बिम्ब, मन के एक भाव, जीवन की एक घटना, घटना के एक अंश और काल खण्ड के एक क्षण का संक्षिप्त चित्रण करते हुए भी एक पूरी कहानी कह देती है। **—चिरंजीत**

वापसी

—सुकेश साहनी

यह मात्र संयोग ही था कि आज अभियन्ता द्वारा उस पुल की मरम्मत का निरीक्षण किया जा रहा था। जो बीस-साल पहले खुद उसी ने अपनी देख-रेख में बनवाया था। पुल पर कदम रखते ही अतीत की स्मृतियाँ उसकी आँखों के आगे सजीव हो उठीं। उसे याद आया कि कैसे उन दिनों वह ईमानदारी से काम करने के लिये अपने उच्चाधिकारियों से भिड़ जाता था। निर्माण-कार्यों में वह जरा भी घपला नहीं होने देता था। लेकिन अब····उस पर उदासी छाने लगी। पुल पर समीप के गाँव के बहुत से निर्धन बच्चे इक्ट्ठा थे। उसकी नजर एक दस-वर्षीय बालक पर पड़ी। जो टकटकी लगाये उसे ही देख रहा था।

'क्या देख रहे हो ?' अभियन्ता को वह बालक कुछ पहचाना-सा लगा।

'ये पुल तुमई ने बनायो है न ?' मैंऊँ तुम्हारी तरह बनिवो चाहतूँ !' अभियन्ता को कौतुहल से निहारते हुए बालक ने कहा।

'अगर मेरे जैसा बनना है तो खूब पढ़ो, लिखो।' कहते-कहते वो गम्भीर हो गया। उसे उस बालक की आँखों में अपने बेटे की झलक दिखायी दी।

'मैं जरूर पढ़िवे जाऊँगो, तुम्हारी तरह जरूर बनुँगो।' इतना कहकर बालक तेजी से गाँव की तरफ दौड़ पड़ा।

अभियन्ता की नजरें पगडण्डी पर दौड़ते जा रहे बालक का तब तक पीछा करती रहीं जब तक वह नजरों से ओझल नहीं हो गया। कल्पनालोक में वह बालकों की एक बड़ी भीड़ को अपने सम्मुख देखने लगा। उस भीड़ में सबसे आगे उसका अपना बेटा खड़ा हुआ था। वे उसकी ओर देखते हुए चिल्ला रहे थे। 'तुम्हारी तरह जरूर बनेंगे'। लाख कोशिशों के बाद भी उस भीड़ से वह अपने बेटे को अलग नहीं कर पा रहा था। अब तक के जीवन में पहली बार उसे आत्मग्लानि हुई थी। क्या उसकी आत्मा सन्तुष्ट है ? क्या वह अपने आप पर गर्व कर सकता है ? क्या वह गाँव के उस भोले बालक के लिये वास्तव में आदर्श व्यक्ति है, जो ठीक उसके जैसा बनना चाहता है ? उसने एक ठण्डी साँस एवं गहरी और हसरत भरी नजरों से मजबूत पुल को देखा। एकाएक उसे खुद अपने आप से बेहद नफरत होने लगी। गुस्से से उसकी मुट्ठियाँ भिंच गईं। वह लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ ठेकेदार रेलिंग की चिनाई कर रहा था। उसने अपने जूते की ठोकर से अधबने रेलिंग को गिरा दिया।

'काम 'स्पेसिफिकेशन' के हिसाब से होगा !' उसने चिल्लाकर कहा। ठेकेदार मिस्त्री मजदूर सब भौंचक्के-से उसे देखे जा रहे थे। □

समीचीन : 12

बेताल और सरकारी आदेश

—रतीलाल शाहीन

आदत ! होती ही खराब चीज है। और फिर राजा विक्रमार्क, वह तो एक नम्बरी जिद्दी जो ठहरा, आदत के मुताबिक फिर से पेड़ पर लटके शव को कन्धे पर डाल लिया और अपने कदम आगे बढ़ा दिये। तो शव में स्थित बेताल से चुप न रहा गया। बोल उठा—हे राजन् ! पेड पर लटके शव को कन्धे पर डालकर रोज इस तरह बेवजह भटकने की तेरी इस आदत को देखकर मुझे एक विदेशी कथा याद आती है। सुन, शायद तुझे नसीहत मिले। नसीहत न सही, तेरी थकान तो दूर होगी।

बहुत पुरानी बात है। एक राजा था। निःसन्तान था। काफी मिन्नतें, पूजा-पाठ, दुआएँ, दान और हवन किए, तब एक कन्या का जन्म हुआ। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। वह कन्या की हर खुशी का ध्यान रखता। उसकी छोटी से छोटी मांग पर अपनी पूरी सेना की कसरत करवा देता।

कन्या धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। वह दो साल की हो गई। हमेशा महल के भीतर ही खेलती-कूदती। तीन-तीन नौकरानियाँ उसकी सेवा में व्यस्त रहतीं।

एक रोज की बात है। महल में भीतर, नर्म दूबों का जो अण्डाकार विशाल दालाननुमा मैदान था, उसके बीचोंबीच गुलाब का एक पौधा उग आया। उस पौधे में गुलाब के फूल की एक कली फूट रही थी। राजा की कन्या के मन को इस अंकुरित कली ने मोह लिया। नौकरानियों ने यह खबर राजा को पहुँचायी। राजा ने अपने सेनापति को बुलाया और सरकारी फरमान निकाला, चार सन्तरी इस गुलाब के फूल की सुरक्षा के लिए तैनात किए जाएँ। दो सन्तरी उत्तर की ओर पहरा देंगे, जबकि दूसरे दो सन्तरी दक्षिण की ओर सुरक्षात्मक चक्कर लगाएँगे। पौधा बढ़ता रहा। सन्तरी पहरा देते रहे। कन्या बड़ी होती रही।

रात होती तो पहरेदार बदली हो जाते। लेकिन सुरक्षा का बन्दोबस्त बरकरार रहा।

दिन बीतते गये। कन्या जवान हो गयी। उसकी शादी हो गयी। वह अपने घर चली गयी। गुलाब का पौधा सूख गया। पौधे की पत्तियाँ झर गयीं। मैदान की रौनक भी खत्म हो गयी। लेकिन सन्तरी पहरा देते रहे। ये सन्तरी पहले वाले सन्तरियों की सन्तानें थीं। युग बीता। लोग बदले। राजा का देहावसान हो गया। नये राजा ने गद्दी धारण की। राज-अभिषेक के उपरान्त नया राजा एक दिन महल के दालान में टहलने आ निकला। उसने देखा, चार सन्तरी एक सूखे हुए घास के मैदान की सुरक्षा में गश्त लगा रहे हैं। नये राजा की समझ

में इस गश्त का कोई कारण नजर नहीं आया और खोजबीन शुरू की गयी। "फिर क्या हुआ बेताल ?" विक्रमार्क ने जिज्ञासा व्यक्त की। "राजन् ! तू भी राजा रहा है, लेकिन तुझे पता नहीं। सरकारी आदेशों के लिए फाइलें रखी जाती हैं। सन्दर्भ ढूंढे जाते हैं।···और···और···"

'और,

"और क्या ! सरकारी आदेशों की वह फाइल मिसिंग है और सन्तरी आज भी पहरा दे रहे हैं। जिस प्रकार कि तू मेरा शव ढो रहा है।"

विक्रमार्क कुछ और पूछता कि उससे पहले बेताल पुनः पेड़ पर जा लटका। □

—३७, नवपाढ़ा, बांदरा, बम्बई–५१

औरत

—भगीरथ

वह एक औरत थी।

मगर खाकी-पगड़ी में लाल कलगी लगाने वालों की निगाह में वह एक मादा थी। उनकी भाषा में कहें तो एक कुतिया थी। उसे वे गुंडों के चंगुल से छुड़ा लाये थे। रक्षक-दल के चार कुत्ते लार टपकाते, भेड़िये की हिंस्र आँखें लिए झपटने वाले थे।

वह औरत थी। कम से कम वह अपने को औरत समझ रही थी। असहाय और भयभीत। गरीब और ओछी जात।

फिर क्या था। कानून उनकी रखैल है। राजनीति उस रखैल के रखे गुंडे हैं।

वे खुलकर खेले।

उनके चेहरे पर झड़ जाने का सन्तोष था।

वह शोक-संताप में डूबी, नारी जीवन को कोस रही थी। घृणा से उसने थूक दिया था,—उनके चेहरों पर। वे मुस्कराते हुए अपनी खाकी कमीज की बाहों से थूक पोंछने लगे।

वह बदला लेने लगी—अपने आपसे। अपना सिर दीवार पर दे मारा। खून की रेख बह चली और दीवार पर पहले बनी खून की सूखी रेख में मिल गई।

वे आत्मज्ञान के क्षण थे।

उसने असहायता, लाचारगी, लज्जा और कलंक का खोल उतार कर फेंक दिया।

राइफल से निकले चाकू को घोंप दिया एक के सीने में। तीन भाग गये।

—"कहाँ जाओगे बच्चू",— उसने दाँत पीस कर कहा।

—सी–३/ए/८२, फेज–२ रावत भाटा (कोटा)–३२३३०५

शातिर

—कमलेश भट्ट 'कमल'

आई० जी० पुलिस ने जब कई शिकायतों के बाद नगर स्थित कोतवाली का आकस्मिक निरीक्षण किया तो वहाँ हवालात में एक अत्यन्त कमजोर और दीन-हीन व्यक्ति को बन्द देखकर उसके बारे में पूछताछ शुरू कर दी।

कोतवाल ने बताया कि वह एक शातिर किस्म का चोर है, जिसे आज सुबह ही बिड़ला मन्दिर के पास किसी आदमी का कीमती शॉल चुराते हुए पकड़ा गया है।

आई० जी० ने वह शॉल देखने की इच्छा व्यक्त की।

शॉल को देखकर आई० जी० की आँखें लाल हो आयीं। उन्होंने अपने इंस्पेक्शन नोट में लिखा—"नगर कोतवाल जन-उत्पीड़न के दुष्कार्यों में लिप्त पाये गये। इन्हें जनसेवा में बनाये रखना जनता के साथ विश्वासघात है। इनकी सेवाएँ तत्कालिक प्रभाव से समाप्त समझी जाएँ।"

आई० जी० के सामने लाया गया शॉल वही शॉल था, जो गयी शाम उन्होंने पत्नी के साथ बिड़ला मन्दिर के दर्शन के बाद फुटपाथ पर लेटे एक नंगे और ठंड से कंपकंपाते भिखारी के ऊपर डाल दिया था।

—आर–१/३५ नया राजनगर, गाजियाबाद

कर्तव्य

—राजेन्द्र प्रसाद ठाकुर

सवेरे-सवेरे एक युवक ने हत्या की। सूचना थाने में दर्ज करायी गयी। दरोगा जी के मुँह में पानी, ओठों पर मुस्कान एवं आँखों में रोशनी तेज हो गयी।

वे गिद्ध की तरह घटना-स्थल पर शीघ्र ही आ धमके। तहकीकात में उन्हें ज्ञात हुआ कि एक रिक्शा वाले की, किसी अज्ञात व्यक्ति ने रात में हत्या की थी। दरोगा जी मानों निराशा के समुद्र में डूब गये। सवेरे-सवेरे खाली हाथ लौटना उन्होंने उस दिन के लिए अशुभ माना।

उन्होंने सूचना देने वाले युवक की अच्छी तरह पिटाई की और दाँत पीसते हुए बोले—साला, हमसे बोला था कि एक आदमी की हत्या हुई है, यह नहीं बताया कि एक रिक्शा वाले की हत्या हुई है। मोटर साइकिल स्टार्ट करके वह बोहनी की तलाश में पुन: चल पड़े।

—सेक्टर ९ बी/११८९, स्ट्रीट–१६
बोकारो इस्पात नगर, धनबाद

कमाई

—प्राणेश कुमार

—क्यों बे कालू, कितना कमा रहा है आजकल ?

—कहाँ हुजूर, यही पन्द्रह-बीस रुपये !

—साले मेरा कमीशन आजकल क्यों नहीं आ रहा ?

— दूँगा हुजूर, दूँगा।

—कब देगा साले ? जब बन्द कर दूँगा तब ? अभी ला।

— देता हूँ— देता हूँ हुजूर !

और कालू पास ही बस पर चढ़ते हुए एक व्यक्ति की जेब काट लाया। दो सौ रुपये थे। हवलदार ने देखा तो खिल उठा। रुपये झपटता हुआ बोला—बोलता था, पन्द्रह-बीस कमाता हूँ ! साला ! और हवलदार दूसरे कमाईदारों की तलाश में बढ़ गया। □

—सम्पादक, आम आदमी,
नवलेखन प्रकाशन, मेन रोड, हजारीबाग

पुरस्कृता

—विक्रम सोनी

वह कई दिनों का भूखा, प्यासा एक ठिकानेदार की रसोई में घुस गया। छककर खाया और कुछ गठिया कर भाग गया। नौकरानी बगीचे में बैठी गेहूँ ही चुनती रह गयी। उसे आभास तक नहीं हुआ।

भूखे-प्यासे ठिकानेदार और उनका पूरा परिवार जब लौटा तब नौकरानी को चोरी का पता चला। ठिकानेदार ने पुलिस में शिकायत दर्ज करा दी।

थानेदार और सिपाहियों ने पास-पड़ोस के बयान लिखे। अन्त में शक के तहत नौकरानी को थाने पर तलब किया गया। दूसरी सुबह नौकरानी लौट आयी। उसे देखते ही उसकी मालकिन ने काम बता दिया। उसने मालकिन से कहा, 'आज तो मुझसे कोई काम नहीं होगा। रात भर बयान देते-देते थक गई हूँ। शरीर टूट रहा है।'

'कोई बात नहीं। शाम को तो आयेगी न ?'

'नहीं, शाम को थानेदार फिर बयान लेगा।'

'तू कह क्यों नहीं देती कि तूने चोरी नहीं की है। न कुछ चोरी गया है, न तू चोर है।'

'वे सब भी मानते हैं कि मैं चोर नहीं हूँ। लेकिन, औरत तो हूँ।' □

—सम्पादक, लघु आघात
आई—१६६ रविशंकर शुक्ल नगर, इन्दौर—४५२००८

बेताल का बयान

—जया नर्गिस

डॉ० चौधरी ने इंस्पेक्टर विक्रमादित्य को अन्दर बुलाकर इंटेंसिव केयर वार्ड का दरवाजा जल्दी से बन्द कर दिया ।

"इंस्पेक्टर फौरन घायल का बयान दर्ज कर लीजिये ।"

"मगर यह तो मर चुका है डॉक्टर !"

"यह बात सिर्फ हम दोनों जानते हैं ।

"माजरा क्या है ?"

"यह लाश रायसाहब की फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूर रामदीन की है । लीडर बनने का शौक चढ़ा था इसे । मजदूरों को रायसाहब के खिलाफ भड़काने लगा । रायसाहब से गोली चल गई । आपको बयान इस तरह बनाना है कि राय साहब पर कोई आँच न आये ।"

"लेकिन एक मुर्दे से बयान ···।"

"सिर्फ नाम से ही नहीं काम से भी विक्रमादित्य बनिये इंस्पेक्टर ।"

"क्या मतलब ?"

"विक्रमादित्य सवाल नहीं करता था । लाश जो कहती, चुपचाप सुनता था ।" यह कहते हुए डॉक्टर ने रायसाहब की ओर से भेंट के रुपयों की मोटी गड्डी इंस्पेक्टर के हाथ में थमा दी ।

नोटों को छूते ही इस्पेक्टर ने महसूस किया कि उसके सर पर ताज है और वह सचमुच राजा विक्रमादित्य है; जिसे हमेशा की तरह बेताल का बयान दर्ज करना है बिना कोई सवाल किये । □

सं० प्रासंगिक सरोकार, जी २०/१५, साउथ टी० टी० नगर, भोपाल

आँखें

—अशोक मिश्र

एक निर्दोष युवक को जब युवावस्था में फाँसी होने लगी तो जेलर ने फाँसी के पूर्व अन्तिम इच्छा पूछी ।

"तुम्हारी मरने से पूर्व कोई अन्तिम इच्छा हो तो बताओ ?"

"क्या आप पूरी कर सकेंगे ?"

"अवश्य पूरा प्रयास करेंगे ।"

"तो सुनिये और कान खोलकर सुनिये । मैं मरने से पूर्व अपनी दोनों आँखें अंधी न्याय व्यवस्था को देना चाहता हूँ ।" □

—भारतीय रचनाकार परिषद
सोहावल, फैजाबाद (उ० प्र०)

वापसी

—सुश्री आशा 'पुष्प'

विपक्षी दल के नेता के घर भीषण डकैती की वारदात सुनकर स्वयं एस. पी. साहब, दरोगा जी के साथ पधारे।

"आप मुझ पर भरोसा रखें। मैं डकैतों को पकड़कर आपका सब कुछ वापस दिलवाऊँगा साहब, मुझे बस थोड़ी सी मुहलत दीजिए।" —एस. पी. ने बैठते हुए कहा, 'कितने का माल लूटा गया ?'

'मात्र दो हजार का।'

'आप उसमें से किसी को पहचानते हैं ?'

'मैं एक को खूब अच्छी तरह पहचानती हूँ।' दृढ़ आवाज सुनकर एस. पी. साहब चौंके। परदे की ओट में पन्द्रह-सोलह वर्ष की सुकोमल, सुदर्शना किशोरी खड़ी थी।

'अपने बगल में बैठे उस दरोगा को देखिए जो उसमें से एक है, शिनाख्त के लिए उसके दाएँ हाथ की आस्तीन हटाकर उस जखम को देखें, जहाँ का मांस मैंने काट खाया था।

'एस. पी. साहब। वापस किये जाने वाले 'सब कुछ' में एक कुंवारी लड़की की इज्जत भी नोट कर लीजिए।'

—२–डी/२–३८७
बोकारो इस्पात नगर, बोकारो
धनबाद

लघुकथा जीवन-महाकाव्य का एक ऐसा छोटा सा छन्द है जो अपनी वैयक्तिकता रखते हुए भी सन्दर्भविहीन नहीं हो सकता। वह जीवन से उसी तरह जुड़ी है जैसे लहर जल से। लहर का बल जल है और पवन उसकी हलचल। इसी प्रकार जीवन लघुकथा की शक्ति और परिवेश उसका संचरण है। शक्ति और संचरण का सामंजस्य ही उसकी कला है।

—डॉ० श्यामसुन्दर व्यास

समीचीन : 12

चुनाव

—शंकर पुणतांबेकर

बच्चे से नतीजा सुनते ही स्कूल इन्स्पेक्टर जीप से स्कूल की ओर दौड़ा और हेडमास्टर के कमरे में पहुँचते ही दहाड़ा, 'ए हेडमास्टर के बच्चे, भूल गया कि मेरा बच्चा तेरे स्कूल में पढ़ता है ?'

हेडमास्टर ने फाइल से सिर उठाया और सहमे से एकदम खड़े हो उसकी ओर देखते रहे। '……अरे, तूने मेरे बच्चे को छोड़ उस पुलिस इन्स्पेक्टर के बच्चे को पहला नम्बर कैसे दे दिया ?'

'आप बैठिए तो श्रीमान् !'

'अरे श्रीमान् के बच्चे, क्या तू भूल गया कि मैंने तुझे अपने बच्चे की पहले ही याद भी करा दी थी !'

'भूला तो नहीं श्रीमान् !'—हेडमास्टर ने बिल्कुल शांत स्वर में कहा—'पर आपकी तरह पुलिस इन्स्पेक्टर ने भी याद करा दी थी। ऐसी दशा में मेरे सामने बड़ा सवाल खड़ा हुआ। जैसे नतीजा बच्चों का नहीं, खुद अपना ही तैयार करना हो।'

'अपना ही नतीजा…क्या बकते हो ?'

'बक नहीं रहा श्रीमान्… मुझे अपना नतीजा तैयार करना था कि रोटी और प्राणों के बीच किसे चुनूँ… और आखिर मैंने प्राणों को चुना।' □

—१६३, जिला पेठ, जलगाँव

मेरी राय में लघुकथा विधा का अपना एक उद्देश्य है, एक तरह का सामाजिक दायित्व, सरोकार ! मैं यह भी सोचता हूँ कि इस दायित्व को पूरा करने में साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में लघुकथा विधा ज्यादा सक्षम है। ऐसा इसलिए भी कि लघुकथा कम समय में पाठक को सोचने-समझने के लिए बहुत कुछ दे सकती है।

—सूर्यकांत नागर

समीचीन : 12

वर्ग-विचार

शोषण और शोषित

—आभा गुप्ता

शोषित के पास शोषण अड्डा जमाए बैठा था। वहाँ दरिद्रता का तांडव होता था। एक दिन शोषित ने बहुत हिम्मत करके शोषण से कहा, "शोषण भैया, देखो खून तो मेरा तुम सारा चूस चुके हो। अब सिर्फ हड्डियाँ बची हैं, यह भी सूखी हुई, अब तुम्हें यहाँ क्या मिलेगा ? अब तो मेरा पीछा छोड़ दो। कम से कम एक बार तो उस शोषक के पास जाओ, वहाँ तुम्हारे लिए बहुत माल है।"

शोषण ने कहा, "वह मेरे आका हैं, उन्होंने ही मुझे यहाँ भेजा है। मैं वहाँ कैसे जा सकता हूँ ? पर शोषित के याचना करने पर वह मान गया।"

शोषित शोषण को लेकर शोषक के पास गया।

शोषित ने कहा, "हम उस काले धन का सारा हिसाब देखना चाहते हैं, जो तुमने हमारा खून चूस कर इकट्ठा किया है ?"

शोषक लापरवाही से बोला, "यहाँ काला धन नहीं, सब सफेद धन है। कितना धन हमने लोगों की भलाई पर खर्च किया है, सड़कें बनवाई, चिकित्सालय, स्कूल ··"

"कहाँ है ये सब ?" शोषित ढाँचे ने उत्तेजना से काँपते हुए कहा।

"पर हमें सबूत चाहिए।"

"कहा तो है कागजों में है।"

"हम अदालत में जाएँगे ?" शोषित के फेफड़ों से कराहती हुई चीख निकली—

"जरूर जाओ, पन्द्रह बीस साल से पहले फैसला होगा नहीं, इतने तो कई बार सड़कें और पुल बन कर टूट चुके होंगे।"

"तुम मक्कार, धोखेबाज हो, नीच···" शोषित बेहोश होने से पहले भाग खड़ा हुआ। शोषण उसके पीछे भाग चला। और शोषक अट्टहास लगाता रहा। □

—न्यू देहली-२८

भ्रूण हत्या

—कमल चोपड़ा

खल-छिलका भिगाने के लिए हौज को भरने के लिए नलका चलाते-चलात बुद्धन के हाथ-बाँह दर्द करने लगे थे। थोड़ा सा काम करते ही साँस फूलने लगता है। ऊपर से चौथा महीना लग गया है। शहर से उनका मनीआर्डर तो दूर खैर-खैरीयत की चिट्ठी तक नहीं आई है। कृष्णा दाई कहती है अब तुझे भारी काम बन्द करके आराम करना चाहिए। अब या तो आराम ही कर लो या सारा दिन प्रधान जी के घेर में खट कर रोटी का जुगाड़ ही कर लो। अपनी जिन्दगी खींचने के लिए दाल रोटी पैदा करना मुश्किल हो रहा है। जो आने वाला है उसके लिए···। इस हालत में तो और भी ज्यादा खुराक चाहिए वर्ना ···। पर कौन कहाँ से किसे और कैसे दे ?

प्रधान जी ने आज भूरी भैंस को खल-छिलका व भूसा डालने से मना कर दिया है। भूरी भैंस गाभिन है और उसने दूध देना बन्द कर दिया है। अब जब तक सूयेगी नहीं, तब तक उसे चराई पर जिन्दा रहना पड़ेगा। पशु और गरीबों का भगवान ही मालिक है। वही उनकी जिन्दगी और अन्दर के जीव की रक्षा करता है वर्ना। प्रधान जी की बहू भी तो दिनों से है। उसकी जो सेवा और देख-भाल हो रही है वह। कोई बात नहीं पैदा तो बालक ही होगा।

बुद्धन काम छोड़े भी कैसे ? काम बन्द तो रोटी भी बन्द। वैसे उमसे काम हो भी नहीं पा रहा था। भूख से बेहाल होकर भी जैसे-तैसे काम में जुटी रही। शाम होते-होते बुद्धन की तबीयत खराब होती चली गई। कपड़े खून से भीगने लग गये। किसी तरह घर पहुँची तो तकलीफ और बढ़ गई। घर के सारे कपड़े खून ही खून हो गए। यह तीसरी बार थी। दो-बार पहले भी वह इसी तरह तकलीफ झेल चुकी थी। शायद सन्तान का मुंह देखना ही ··। अचानक गुस्से में आकर बुद्धन अपने खून से सने कपड़े जाकर प्रधान जी के दरवाजे पर पटक आई।

प्रधान जी को पता चला तो वे आपे से बाहर हो उठे और बुद्धन की लाश बिछा डालने पर तुल गए। लेकिन उसी समय पंडितों-सयानों में मची भगदड़ से पता चला कि इस प्रकार नीची जात का जीव खंडित होना शुभ होता है। आपके वंश के लिए उस चमार की औलाद ने कुर्बानी दी है। उसे तो इनाम मिलना चाहिए। उस दिन बिना हाड़तोड़ मेहनत के मीठे पकवान वे लोग बुद्धन को खिला भी रहे थे, पर पता नहीं क्यों उसने गुस्से में खाये ही नहीं। □

—१६००/११४, त्रिनगर दिल्ली–११००३५

गरीबी क्यों बढ़ रही है ?

—अनिला वर्मा

भगवान विष्णु की लीला देखते-देखते आखिर शेषनाग से नहीं रहा गया, तो एक दिन उन्होंने भगवान विष्णु से पूछ ही डाला, "भगवन् ! मेरी समझ में नहीं आता कि आप अमीर को दिन-प्रतिदिन और भी अमीर और गरीब को दिनोदिन और भी गरीब क्यों बनाते जाते हैं ?"

शेषनाग की शैय्या पर लेटे भगवान प्रश्न सुनकर मुस्का दिये। बोले 'शेष, समय आने पर इसका जवाब दूँगा, अभी नहीं।'

त्रेतायुग में भगवान विष्णु ने राम और शेषनाग ने लक्ष्मण के रूप में राजा दशरथ के यहाँ जन्म लिया।

कैकेयी द्वारा वनवास दिये जाने पर दोनों सीता के साथ जब पंचवटी पहुँचे, तो उन्होंने वहीं रहने का निश्चय किया और कुटिया बनाने में लग गये।

राम ने लक्ष्मण से कहा, 'लक्ष्मण, मार्ग में आते हुए तुमने फूस की उन दोनों झोपड़ियों को देखा था, जो आस-पास बनी थीं ?'

'हां, भ्राता !' लक्ष्मण विनम्रता से बोले।

'तो जाओ, छाजन बनाने के लिए किसी एक झोपड़ी से कुछ फूस ले आओ।' राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया।

और जब लक्ष्मण फूस लेकर लौटे, तो राम ने पूछा, 'किस झोपड़ी से फूस लाये हो लक्ष्मण ?'

'अग्रज' ! जो झोपड़ी अब-तब गिरने की हालत में थी, उसी से। लक्ष्मण ने जवाब दिया।

'क्यों ?' राम मुस्काये।

'क्योंकि मैंने अच्छी झोपड़ी को बरबाद करना उचित नहीं समझा। और अगर नष्ट होती हुई उस झोपड़ी से मैंने कुछ फूस निकाल ही लिया, तो उसकी हालत में कौन-सा परिवर्तन हो गया ! वैसे भी उसको आज न कल नष्ट होना ही है।'

लक्ष्मण का इतना कहना था कि राम ठठाकर हंस पड़े। बोले, 'लक्ष्मण, याद है, तुमने एक बार मुझ से पूछा था कि भगवन् ! आप अमीर को दिन-प्रतिदिन और भी अमीर और गरीब को दिनोदिन और भी गरीब क्यों बनाते जाते हैं ? आज मैंने तुम्हें तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया।'

लक्ष्मण उर्फ शेषनाग नजरें नीची करके धरती को ताकने लगे। □

ए–९, रक्षा कर्मचारी को० ऑ० ग्रुप हाउसिंग सोसायटी,
जी ब्लाक, पश्चिम विहार, नई दिल्ली–६३

समीचीन : 12

संस्कार की बात

—रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

साहब के बेटे और साहब के कुत्ते में विवाद छिड़ गया। साहब का बेटा कहे जा रहा था—यहाँ बंगले में रहकर तुझे चोंचले सूझते हैं और कहीं होते तो एक-एक टुकड़ा पाने के लिए घर-घर झांकना पड़ता। यहाँ बैठे-बिठाये तर माल खा रहे हो। ज्यादा ही हुआ तो दिन में कभी-कभार आने जाने वाले पर गुर्रा पड़ते हो।'

कुत्ता हंसा—तुम बेकार में क्रोध कर रहे हो। यदि तुम भिखारी के घर पैदा हुए होते तो मुझसे और भी अधिक ईर्ष्या करते। जूठे पत्तल चाटने का मौका भी न मिल पाता। तुम यहीं रहो, खुश रहो यही मेरी इच्छा है। 'मैं तुम्हारी इच्छा के बल पर यहाँ रह रहा हूँ ? हरामी कहीं का'—साहब का बेटा भभक पड़ा।

कुत्ता बोला, 'गाली देते हो, दे लो। अपने-अपने संस्कार की बात है। मेरी देखभाल साहब और मेम साहब दोनों करते हैं। मुझे कार में घुमाने ले जाते हैं। तुम्हारी देखभाल नौकर-चाकर करते हैं। उन्हीं के साथ तुम बोलते बतियाते हो। उनकी संगति का प्रभाव तुम्हारे ऊपर जरूर पड़ेगा। जैसी संगति में रहोगे, वैसे संस्कार बनेंगे।'

साहब के बेटे का मुँह लटक गया। कुत्ता इस स्थिति को देखकर अफसर की तरह हँस पड़ा। □

मौत

—अज्ञात बन्धु

अमीरी के कारागृह में सदियों से गरीबी कैद थी। एक दिन गरीबी ने अमीरी से कहा, 'हुजूर, कब तक मैं कैद रहूँगी ? कब तक यातना सहती रहूँगी ? अच्छा होगा आप मुझे मौत की सजा दे दीजिए।'

'मौत !' अमीरी ने कुटिल हँसी बिखेरते हुए कहा, 'तुमने मुझे इतना मूर्ख समझा, तुम्हें मौत की सजा देकर मैं अपनी मौत क्यों बुला लूँ ?' □

—नवतारा कार्यालय, मेन रोड, हजारीबाग

समीचीन : 12

निशानदेही

—राजकुमार सिंह

एक सूट-बूटधारी सज्जन रेलवे स्टेशन से निकलकर, बाहर आये। उनके कन्धे पर आकर्षक चमड़े का बैग लटक रहा था और लाल रंग के कवर में लिपटी हुई कोई किताब बाएँ हाथ में पकड़ रखी थी। उन्होंने दूर खड़े रिक्शे वाले को पास बुलाया और बोले, "प्रकाशक मार्ग चलोगे ?"

रिक्शे वाले ने अनमने ढंग से कहा, "जी-ऽ बाबूजी।"

"रास्ता मालूम है ?"

"पहले तो नहीं मालूम था, पर अब मालूम हो गया है।"

"ठीक से मालूम या ··?"

"आप बैठिये तो···।"

"अरे भई, बैठ तो जाऊँ, परन्तु अभी पिछली बार एक रिक्शे वाले ने लेखक मार्ग पहुँचा दिया। हद है, इतना ऊबड़-खाबड़ रास्ता है···कि पूछो मत।"

"·········"

"भगवान दुश्मनों को भी लेखक मार्ग न भेजें। रास्ते में दो-तीन बार मरते-मरते बचा। इधर-उधर लाख चक्कर काटने के बाद प्रकाशक मार्ग मिला।"

"साहब ! अच्छी तरह जानता हूँ, चाहे प्रकाशक मार्ग हो या लेखक मार्ग।"

"लेखक मार्ग भी···?"

"हाँ·· बाबू जी।"

"सो कैसे ?"

"यहाँ के सबसे बड़े प्रकाशक ने मेरे ही नाम पर लेखक मार्ग बनवाया है।"

"अरे ऽ ऽ तुम ?"

"हाँ ऽ ऽ मैं।"

"अचानक दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया था। □

—६८/३१ ए, लोकमन मोहाल, कानपुर, (उ० प्र०)

समीचीन : 12

मातृत्व

—मोहन राजेश

मिसेज सिन्हा की चिन्ता स्वाभाविक ही थी। 'प्राब्लम' ही कुछ ऐसी थी कि न निगलते बन रहा था न उगलते ही।

एक ओर डॉ० बत्रा ने साफ-साफ कह दिया था यदि साल डेढ़ साल तक बेबी को स्तन-पान नहीं करवाया गया तो उसके स्वास्थ्य पर विपरीत असर पड़ेगा। दूसरी ओर ब्यूटी क्लिनिक की मिस भरूचा की मान्यता थी कि दूध पिलाने से फिगर खराब हो जाती है, खासकर वक्षस्थल तो · फिर मिसेज गुप्ता का उदाहरण तो सामने था ही।

सिन्हा दम्पति विगत एक सप्ताह से इस समस्या से जूझ रहे थे। अपने सभी मित्रों-परिचितों से फ्रैंकली डिस्कस भी कर चुके थे। किसी ने काली गाय का दूध सुझाया तो किसी ने बकरी बाँध लेने की सलाह दी। पर सभी प्रस्तावों पर डॉक्टर बत्रा का वीटो पुरअसर था कि इनमें से कोई भी माँ के दूध का स्थान नहीं ले सकता।

अन्ततः राह सुझायी रसोइये रामू ने—मेम साहब रधिया से बात कीजिए न। अपने बच्चे को पिलाती ही है बाबा को भी पिला देगी।

— वण्डरफुल ! क्या दिमाग पाया है इस रामू के बच्चे ने भी। मिसेज सिन्हा लाजवाब हो गयीं। पुराने जमाने में महारानियों की संतान भी तो धाय माँ के दूध पर ही पलती थी। मतलब तो स्तनपान से है, किसी का भी हो, रधिया पर क्या फर्क पड़ता है, गाय भी तो दुहाने के बाद ही अपने बछड़े को···।

गद्गद् भाव से रामू को पाँच रुपये पुरस्कार देकर उन्होंने तत्काल रधिया को बुला लाने का निर्देश दिया।

थोड़ी देर बाद ही रधिया साहब और मेमसाहब के इजलास में हाजिर थी।

कुछ देर तक पति-पत्नी एक-दूसरे का मुँह देखते रहे फिर खखार कर आवाज को कुछ गंभीर बनाते हुए साहब ने फरमाया—रधिया अब तुम्हें बर्तन मांजने की जरूरत नहीं; आइन्दा से तुम हमारे बेबी को खिलाओगी। आया की जगह तुम···।

···और सुनो हमारे बाबा को दूध पिलाने की ड्यूटी भी तुम्हारी ही है। लेकिन ख्याल रहे, बेबी भूखा न रहे। पहले बेबी को पिलाओगी फिर अपने बच्चे को। मेम साहब ने नई नियुक्ति की शर्तें स्पष्ट कीं।

— इसके लिए तुम्हें पचास रुपये एक्स्ट्रा मिलेंगे।

कुछ क्षणों तक हतप्रभ-सी खड़ी रही रधिया, फिर एकाएक समूची स्थिति को भाँप, सम्भावित आशंकाओं से सिहर उठी— नहीं साब ! माफी चाहूँगी साब। मैं बर्तन ही माँज लूँगी ·। उसका स्वर लड़खड़ा गया था। —मैं अपना खून तो बेच सकती हूँ पर दूध नहीं, बच्चे का नहीं, मालिक।

—गेट आउट ! मेम साहब चीखीं और साहब दहाड़े, एक साथ ही। □

सिर उठाते तिनके

—तारिक असलम 'तस्नीम'

सूर्य्य की पहली किरण अभी किशनू की झोपड़ी तक पहुँचने भी नहीं पायी थी कि किसी ने उसकी झोपड़ी का दरवाजा खटखटाया। अनमना-सा जम्हाई लेते हुए वह बाहर निकला।

दरवाजे के सामने जमींदार के मुँह लगे हरिया को देखा, तो उसका माथा ठनक गया। फिर उसके कहने पर मालिक ने उसे तुरन्त बुलाया है, वह कुछ सोचता रहा, फिर पूछ लिया—

"का रे ! हरिया ! काहे को बुलाया है, कोई खास बात है ?"

'हूँ ! तुझ से खास बात करनी होगी न मालिक को। लाट साहब की औलाद है तू तो ! तेरे से तो भेंट भी नहीं होती जल्दी।' हरिया के मुँह से उसने यह सब जो सुना तो वह भी मुँह ऐंठकर बोला।

'अरे हरिया ! तू जानता है न, मैं तेरे मालिक की नजर में इस गाँव का क्रान्तिकारी, नक्सलाईट, छँटा हुआ गुण्डा, बदमाश हूँ रे। फिर मुझे अपने द्वार पर बुलाकर काहे इज्जत पर बट्टा लगावत है।'

'मुझे नहीं सुननी तेरी बात, चलकर मालिक से बात कर।' और वह मुड़ गया। किशनू भी पीछे-पीछे कुछ लोगों को इशारे कर चला। जमींदार ने उसे आते हुए देखा तो अपनी मूछें ऐंठने लगा। वह भी चुप रहा।

अन्तत: मालिक ने ही पूछा, 'का रे ! कहीं काम-धाम हो रहा है कि नहीं ?'

'कर तो रहा हूँ !' उसका संक्षिप्त-सा उत्तर था।

'सुना है ! पाँच-मील दूर कमाने जाता है। मेहरारू भी तेरे साथ ही जाती है। बड़ी मेहनती है···मगर क्या हम मर गये थे जो बेचारी को इतनी दूर ले जाता है। हमारी हवेवी में क्यों नहीं भेजता ?' फिर जरा ठहर कर—'नई-नवेली दुल्हनिया को मुँह दिखाई के लिए भी नहीं लाया, क्या इरादा है तेरा, गाँव में रहना है कि नहीं ?'

'रहना नहीं है तो जाना कहाँ है ! मगर मेरी मेहरारू किसी के घर काम नहीं करेगी। ई हमें पसन्द नहीं।'

'क्या कहा रे ! स्साला, हरामी मादर···'

'पहिले जबान को लगाम दो मालिक, वरना बहुत बुरा होगा समझ लो।'

'क्या कर लेगा तू मेरा ? सूअर की औलाद ! हमारे ही टुकड़ों पर पलकर हमें ही धमकी देता है । पकड़ लो ई दोगला को—तोड़ दो कुत्ते के हाथ-पैर—!'

'ठहर जाओ भईया !'

तभी एकाएक यह आवाज गूँजी—सबने आँखें फाड़ कर हैरत से देखा। हाथों में लाठी, भाला, गंड़ासा लिए अनगिनत लोग चारों ओर से सबको घेर चुके थे।

जमींदार का चेहरा झुका हुआ तथा पसीने से तर-ब-तर था। □

—हारून नगर कॉलोनी, फेज—२,
प्लाट नं० ६, फुलवारी शरीफ—८०१५०५

लघुकथा आकार में लघु तथा जीवन के मात्र क्षणों को पकड़ने वाली होती है, किन्तु अपने प्रभाव में वह एकदम तीक्ष्ण-तीखी होती है। वास्तव में यही तीखापन लघुकथा का प्राण है। लघुकथा में से यह प्रभाव तभी उत्पन्न हो सकता है, जब अनुभूति तीव्र से तीव्र और घनी होगी। लघुकथा में अनुभूति की तीव्रता इतनी घनीभूत होती है कि वह हमें बिजली के तार की भाँति झटका दे जाती है, हमारी चेतना को एकदम झकझोर देती है। कहना न होगा कि यह झटका विचारगत होता है, प्रसंग अथवा शैली से संबद्ध चमत्कारगत नहीं। साथ ही यह भी कि इस झटके के लिए यों ही बनावटी चरम सीमा की भी आवश्यकता नहीं होती। **—शंकर पुणतांबेकर**

हिन्दी साहित्य : आठवाँ दशक, पृ० १२८

दंगा, धर्म, जाति और सांप्रदायिकता

मामूली समाचार

—मार्टिन जॉन 'अजनबी'

ननकू मारा गया।

दंगाग्रस्त इलाके में कर्फ्यू ऑर्डर लागू था।

कर्फ्यू आर्डर हटाने की बात तो दूर, उसमें ढील भी नहीं दी जा रही थी। दो दिन हो गए, ननकू के दड़बेनुमा कोठरी से धुंआ नहीं निकला था। छः ! जिन्दगियों के पेट की आग और अंतड़ियों का ऐंठन का एहसास जब उसकी चेतना पर बेरहमी से आघात पहुँचाने लगा तो उसने कंधे पर पॉलिश वाला काठ का बक्सा लटकाया और निकल पड़ा कुछ कमाने के लिए। मरघट जैसी सुनसान सड़क को पार कर जैसे ही वह गली के छोर के निकट पहुँचा कि एक गरजती हुई आवाज ने उसकी सूखी काया को हिलाकर रख दिया, "खबरदार····· रुक जाओ !" ननकू को लगा आवाज के साथ पुलिस की गोली भी निकलेगी। सो उसने छुपने के लिये दो कदम पीछे की ओर बढ़ाये। उसकी इस हरकत ने गश्त लगाती पुलिस को संदेह में डाल दिया और उसकी बन्दूक ने गोली उगल दी, 'धांय !'

ननकू वहीं धराशायी हो गया।

घर का मुख्य स्तम्भ धराशायी हो गया।

अंधी माँ धराशायी हो गयी।

विधवा बहन धराशायी हो गयी।

दो जवान बेटियाँ धराशायी हो गयीं।

दो मासूम बच्चे धराशायी हो गये।

मतलब छः जिन्दगियाँ धराशायी हो गयीं।

दोपहर को रेडियो ने समाचार पढ़ा '············एक दंगाई के मारे जाने का मामूली समाचार मिला है······' □

—लोकोपाड़ा, पो० भोजूडीह
जिला धनबाद–८२८३०३
(बिहार)

दिली रिश्ते

—खान अब्दुल रशीद 'दर्द'

अमृता की आँखों में आँसू छलकते देख सलमा घबरा गई। कहीं फिर बेहोश न हो जाए। बेचारी इन दो दिनों में कई बार बेहोश हुई। जालिमों ने उसके पूरे घर को ही तबाह कर डाला। माँ-बाप और दोनों भाई···उफ्फ, इसे भी किस हाल में छोड़ा था। मौत के मुँह से खींचा है डाक्टरों ने। सलमा ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा, 'अमृता सब्र कर जो होना था हो गया, हालात से समझौता कर बहन, यूँ रोने···'

'सलमा, उस दर्दनाक हादसे को कैसे भुला दूँ जिसमें मेरा सब कुछ··! मुझे मर क्यों न जाने दिया? रात-दिन एक-एक करके मुझे क्यों जिलाया तूने सलमा··?'

'अमृता मैंने ही नहीं तेरे लिए अपने क्लास फैलो राजेश ने भी रात···।'

'क्या कहा राजेश? पर वो हिन्दू! और हिन्दू तो सिखों को···।'

'क्या? —ये कैसी बातें करती हो, तुम्हारी जान बचाने में तो वह—अपना खून तक देने में पीछे नहीं हटा। उसी के खून से··।'

'···लेकिन हिन्दुओं से मुझे अब घृणा···।'

'तुम लिट्रेट होकर भी भेदभाव की बातें करती हो? अरे अमृता वे लोग जिन्होंने तेरे घर को तबाह किया वे हिन्दू थे न मुसलमान। वे लोग सिर्फ दंगाई थे और दंगाइयों की कोई जात होती है?···तू अपने दिल की आँखों से राजेश को जरा देख···।'

सलमा भावुकता में बोले ही जा रही थी कि उसे एक कोने में चुप खड़े राजेश का भान हो आया जो उनका ये वार्तालाप सुन दुःखी हो गया था।

'ओह, राजेश तुम! तुम, इसकी बातों का बुरा मान गये। ये दुःखी है और दुःखातिरेक में कभी इन्सान एब्नारमल भी हो जाता है। तुम पहिले अमृता को नजर मिला के देखो तो, दिल की बात उसकी नजरें कह देंगी!' —और राजेश ने जब अमृता की आँखों में आँखें डाल कर देखा तो वहाँ उसे घृणा नहीं प्यार का सागर लहराता मिला। □

—पो० डेहरी (बाग)
जिला—धार-४५४२२१

★

गद्य की यह छोटी-सी विधा मनुष्य के अनुभव और अनुभवों के प्रति सोचने की प्रक्रिया की देन है। लघु समझकर इस विधा की अवहेलना नहीं की जा सकती है और न ही लघुकथा लिखकर कोई इस विधा पर कोई कृपा कर रहा है। **—डॉ० बालेन्दु शेखर तिवारी**

समीचीन : 12

वजह

—रमेश बत्तरा

'ईद मुबारक।'

'मुबारक।···मुबारक।'

'हम एक दूसरे को मुबारक दे रहे हैं और हमारे लोग शहर में कत्लेआम मचाये हुए हैं···तो क्या हम भी लड़ें ?'

'हम क्यों लड़ें ?'

'शहर में दंगा जो चल रहा है।'

'यह भी कोई वजह हुई ?'

'हिन्दू लोग मुसलमानों को गाजर-मूली की तरह काट रहे हैं।'

'वे बेवकूफ हैं।'

'मुसलमानों ने भी कत्लेआम मचा रखा है।'

'वे जाहिल हैं।'

'मुझे शक है कि कहीं आप मुझे न मार दें।'

'मुझे भी शक है कि आप···'

'न न···मेरा मन नहीं मानता। आपके बहुत एहसान हैं मुझ पर।'

'आपने भी तो कुछ कम नहीं किया मेरे वास्ते।'

'आप सच्चे हिन्दू हैं।'

'आप सच्चे मुसलमान हैं।'

'आपकी जर्रानावाजी है·· आप बहुत प्यार करते हैं मुझे।'

'आपका दिल भी तो दरिया है।'

'फिर भला हम कैसे लड़ सकते हैं ?'

'हमें लड़ना भी नहीं चाहिए।'

'भगवान बड़ा मेहरबान है।'

'खुदा की बड़ी मेहरबानी है।'

'खुदा नहीं भगवान···।'

'भगवान नहीं खुदा······।'

'मैं कहता हूँ, भगवान···।'

'मैं कहता हूँ, खुदा।'

'नहीं भगवान।'

'नहीं खुदा।'

'भगवान।'

'खुदा।'

नहीं भगवान···नहीं खुदा।···न खुदा···न भगवान/न भगवान···न खुदा। खुदा न भगवान—भगवान न खुदा···खुदा न भगवान न भगवान न खुदा न खुदा न भगवान···।'

□

—सारिका, १०, दरियागंज, नई दिल्ली—२

दुर्घटना की वजह

—दिलीप नीमा

एक पूर्वाग्रह बन गया। होने वाली दुर्घटनाओं से लोग उसे खतरनाक मोड़ कहने लगे। मोड़ के प्रति लोगों में तरह-तरह की शंकाएँ उपजने लगीं। भयवश कइयों ने रास्ता ही बदल लिया पर कई डरते-डरते मोड़ पार करते और सफल हो जाते तो भगवान का नाम लेते। लेकिन दुर्घटना होने पर सारा आक्रोश प्रतिद्वन्द्वी पर ही निकालते।

मामले बढ़ने लगे। बात यातायात पुलिस के कानों तक पहुँची। दुर्घटनाएँ क्यों होती हैं ? इसकी तहकीकात के लिए लगे हाथ एक जिम्मेदार इन्सपेक्टर को केस सौंपा गया।

इन्सपेक्टर ने पहले क्षेत्र का मुआयना किया और खास कर उस खतरनाक मोड़ का भी जहाँ अब भी दुर्घटनाएँ बराबर घट रही थीं। पहले उसने अनुमान लगाया कि हो न हो आमतौर पर ऐसे स्थलों पर दुर्घटना होने के कारणों में से अश्लील पोस्टर देखने, कन्याओं को छेड़ने निहारने और चालक द्वारा लापरवाही से तेज गति से वाहन चलाने के कारण शामिल हो सकते हैं।

तहकीकात के दौरान जब इसमें एक भी कारण फलीभूत नहीं हुआ तो उसने दुर्घटनाग्रस्त लोगों को कुरेदा। दुर्घटना कैसे हो गयी इस पर उन्होंने भी अनभिज्ञता प्रकट की तो इन्सपेक्टर ने अपना सिर पीट लिया। यह अवश्य लग रहा था कि भयवश ये कुछ छिपा रहे हैं। खैर, अन्तिम शस्त्र के रूप में इन्सपेक्टर ने खुद ही सायकल से मोड़ पार करने की सोच ली। विचार बनते ही वह सायकल ले पिछले चौराहे पर जा पहुँचा और मोड़ की तरफ आने लगा। वह सावधानी से धीमे-धीमे आते हुए चौतरफ चौकन्नी निगाह फेंक आगे बढ़ रहा था कि ऐन मोड़ पर मुड़ते ही कोने में गोल पत्थर से गढी वर्क लगी हुई शंकर भगवान की छोटी सी मूर्ति पर निगाह चली गयी और श्रद्धा से स्वयमेव प्रमाण की मुद्रा में उसके हाथ उठे कि अचानक तभी पीछे से आते एक वाहन ने उसे जोरदार टक्कर दी। बैलेंस बिगड़ा और वह चारों खाने चित्त। पर बेहोशी के बाद होश में आते ही चोट की परवाह किये बगैर वह खुशी से चिल्ला पड़ा—'वजह मिल गई।' और अगले ही दिन उसने रिपोर्ट लिख दी। □

—'सुनील' सदन २०/१ लोधीपुरा, इन्दौर–४५२००२

मैं मानती हूँ कि जीवन्त के तीखे अनुभवों, तराशे हुए क्षणों और मूल सत्यों को अपनी यथार्थपरक प्रक्रिया तथा सशक्त प्रक्रिया के माध्यम से, जो आवाज, कम से कम शब्दों द्वारा, अपनी पहचान को पुख्ता स्वर देने हेतु कृत संकल्प है, साहित्यिक परिभाषा के तहत, उसे मैं लघुकथा मानती हूँ। **—अंजना अनिल**

मजहब

—उपेन्द्र प्रसाद राय

आदमी की जब सृष्टि हुई और उसे धरती पर जाने के लिए कहा गया तो उसने भगवान से करबद्ध प्रार्थना की, 'पिता ! जब तुमने हमें मुँह दिये तो इनके लिये भोजन भी दो।'

भगवान ने कहा, 'तुम धरती को खोदोगे, बीज बोओगे और अन्न उपजाओगे। तुम्हारे लिए भोजन की कमी नहीं होगी।'

आदमी ने फिर प्रार्थना की, 'पिता ! हम धरती पर खुश रहें, इसके लिए भी तो कुछ दो।'

भगवान ने आशीर्वाद दिया, 'धरती पर नदियाँ होंगी और समुन्दर होंगे, रंग-बिरंगे फूल होंगे और हरे-भरे पेड़-पौधे होंगे, तुम उन्हें देखना, गीत गाना और खुश रहना।'

'पिता ! जीवन में भागदौड़ के बाद हमें थोड़ी शान्ति भी तो चाहिए। इसके लिए क्या दे रहे हो ?' आदमी ने पूछा।

'इसके लिए तुम्हें रात दे रहा हूँ, चाँद दे रहा हूँ, तारों से भरा हुआ एक नीला आकाश दे रहा हूँ और तुम्हारी पलकों में नींद दे रहा हूँ।' भगवान ने उत्तर दिया।

इतनी सारी वस्तुएँ प्राप्त करने के बाद भी आदमी को लग रहा था कि कहीं कोई कमी रह गयी है। फिर, भीतर ही भीतर कोई खूँखार प्रवृत्ति उसे नाखून भी चुभा रही थी। उसने उद्विग्न होकर कहा, 'पिता ! अन्तिम चीज माँग रहा हूँ। निराश मत करना। तुमने सब कुछ दिये, शुक्रिया। किन्तु आपस में लड़ाई-झगड़े के लिए भी तो कुछ दो। इसके बिना तो हम रह ही न सकेंगे।'

'पुत्र दिल को दुखी मत कर ! तुम्हारी इस जरूरत का भी ख्याल रखा है मैंने।' भगवान ने घोष किया, 'धरती पर लड़ाई-झगड़े के लिए मैं तुम्हें अन्य कारगर मुद्दों के साथ मजहब दे रहा हूँ। भाइयों की हत्या करने के लिए, पड़ोसियों की माँ बहनों के साथ बलात्कार करने के लिए, निर्दोष व्यक्तियों के बसे-बसाये घर को उजाड़ने के लिए तुम तरह-तरह के मजहब बनाओगे और दंगे करवाओगे। बोलो और कुछ चाहिए ?'

आदमी सन्तुष्ट हो गया। इसके बाद उसे और चाहिए ही क्या था ? □

—केन्द्रीय विद्यालय, हीनू, राँची–२ (बिहार)

समीचीन : 12

संस्कार

—महावीर प्रसाद जैन

वह पूरे डिब्बे में घूम चुकी थी और अब डिब्बे के गलियारे में बैठी, पिछले आधे-पौने घंटे तक दी दुआओं के बदले हासिल हुई रोटियाँ गिन रही थी···वह खुश थी कि आज दो दिन बाद एक ही डिब्बे से इतनी रोटियाँ मिल गयी हैं कि अब और माँगने की जरूरत नहीं पड़ेगी · और अगले दो रोज की गुजर भी इन्हीं से हो जाएगी।

सूखी सब्जी और अचार को रोटियों की तह में लगाकर, उन्हें वहीं कोने में रख कर बाथरूम में घुस गयी।

बाथरूम से लौटने पर उसने देखा कि रग्घू वहीं बैठा रोटी खा रहा है। वह काफी अरसे से उसे जानती है। वह भी इसी गाड़ी में ही भीख माँगा करता है। परन्तु अपनी रोटियों पर नजर पड़ते ही वह सकते में आ गयी और धोती से हाथ पोंछते-पोंछते पल्लू झटक कर चिल्लाई, 'क्यों रे! यह रोटियाँ तूने यहाँ से ली हैं···?'

'हाँ।'

'क्यों?' वह फिर चिल्लाई।

'भूख लगी थी···' वह अब भी रोटी खा रहा था।

'भूख लगी थी, तो अपनी माँग कर खाता, हरामजादे! तेरी माँ लगती हूँ क्या? मैंने कितनी मेहनत से जुटाई थीं और तूने···' कहते-कहते वह रुआँसी-सी हो उठी और पलक झपकते ही बाकी रोटियाँ उठाकर गाड़ी से बाहर फेंक दीं।

इस बीच वहाँ कई व्यक्ति, जिन्हें बैठने को जगह नहीं मिल पायी थी, इकट्ठे हो गये थे। उनमें से एक युवक ने पूछ लिया, 'तूने यह रोटियाँ क्यों फेंक दीं। अब खायेगी क्या···या झूठ बोल रही थी कि दो दिन से भूखी हूँ।'

वह कुछ पल एक टक जलती निगाहों से रग्घू को घूरती रही और फिर अनायास फट पड़ी, 'स्साला भंगी है!' □

—ए-१/२४२ ए, लारेंस रोड, नई दिल्ली-३५

विवशता

—राजेन्द्र राकेश

भंगी को क्वार्टर एलॉट हो गया, इस बात का दुख न था। दुख तो था उसके पाले गये सूअरों से। यह चर्चा उस सेक्टर के लिए आम हो गयी थी, किन्तु संकोचवश कोई उससे शिकायत करने की हिम्मत न जुटा पा रहा था।

संयोगवश, एक दिन मेरी उससे भेंट हो गई। मैंने सहमते हुए उससे कहा—'भाई, वैसे तो सबको इस आजाद देश में जीने का समान अधिकार है लेकिन आपके सूअरों ने तो नाक में दम कर दिया है। मेरा कहा मानो तो कोई अन्य पालतू पशु पाल लो।'

'आपका कहना बिल्कुल सही है, साहब। कदाचित मैं भी अब ऊब चुका हूँ। फिर भी पालता हूँ क्योंकि इससे मुझे काफी लाभ हैं। बिना खिलाए-पिलाए ही साल में कम से कम सोलह बच्चों का लाभ तो अवश्य ही मिल जाता है। केवल आर्थिक लाभ के लिए ही पाल रहा हूँ।'

'अगर आर्थिक लाभ ही चाहिए तो सूअर की जगह गाय क्यों नहीं पाल लेते? आजकल दूध देने में भैंस को भी मात कर देने वाली गायें उपलब्ध हैं।'

'बात तो ठीक जँचती है, किन्तु इस भंगी के घर का दूध खरीदेगा कौन?'

□

—साहित्य सृजन संस्थान
जनवृत २/२-३८७, बोकारो
इस्पात नगर, बिहार

जीवन सत्यों के किसी प्रसंग खंड, अंश-प्रश्न, स्थिति, विचार, कोण, अर्थ अथवा विशिष्ट चरित्र में लघुकथा की कथात्मक क्षमताएँ ढूँढ़ी जा सकती हैं। जिन्हें कहानी के लिए अनुपयुक्त मानकर छोड़ दिया जाता है यानी कि जिनकी तीव्रता का कहानी के वर्णन एवं विवरण में बेकार हो जाने का खतरा रहता है। लघुकथा उसे पूर्णता प्रदान कर उसे मानवीय संवेदना के साथ जोड़ देती है। —**डॉ० कमल चोपड़ा**

समीचीन : 12

विशेषता

—शल अखारा

एक व्यक्ति नौकरी के लिए आयोग का आवेदन-पत्र भर रहा था। विशेष योग्यता वाले कॉलम में उसने लिखा—मैं अध्यक्ष महोदय की ही जाति का आदमी हूँ।

और उसकी नियुक्ति हो गई। □

द्वारा श्री मंगलानन्द अखौरी,
बानो मन्जिल रोड
पहाड़ी के निकट, राँची

पवित्र लोग

—नीलम लाला

रश्मि ले ये पैसे, गंगा माँ को दे दे। रश्मि माँ के हाथ से पैसे ले दूर तक उछाल दी। नन्हें हाथों से फेंका गया पैसा लहराता, बलखाता नहा रहे बच्चों की टोलियों में जा गिरा। वे सभी टूट पड़े उस चवन्नी को खोजने।

दे ऽ ऽ माइजी ऽ ऽ···शीला के सामने एक टूटी कटोरी पसर गयी। शीला आग्नेय दृष्टि को देख वह काला कलूटा घिनौना सा भिखमंगा सहम कर हट गया।

रश्मि बचकर ! देख छुआ मत जाना, नहीं तो फिर नहाना पड़ेगा।

इस तरह अपवित्र शरीरों से बचते हुए, हाथ में पूजा की थाल संभालते हुए वे बढ़ चलीं देवताओं को खुश करने। □

द्वारा श्री आर० पी० लाला
नवागढ़, पो० खरखरी,
धनबाद

पहचान

—ज्योतिर्मय आनन्द

बस रोक दी गई। चार-पाँच धार्मिक उन्मादी अन्दर प्रवेश कर गए। चारों-पाँचों खुसुर-फुसुर करने लगे—'आखिर कैसे पता किया जाए कि कौन हमारे धर्म का नहीं है ? सभी तो एक जैसे ही लग रहे हैं।'

तभी एक ने कुछ सुझाव दिया। चारों-पाँचों नीचे उतर आए और एक-एक कर सभी यात्रियों को बस से नीचे उतारते और पेट या जबड़े में जोर का मुक्का मारते। फिर उनके मुँह से निकले ईश्वर के शब्द से पहचान करने लगे। □

—सोनाली, कटिहार—८५५११४

फर्क

—फजल इमाम मल्लिक

दोनों में झगड़ा बस मामूली सी बात पर हुआ था। एक ने कहा था, 'मंदिर पवित्र होता है' और दूसरे ने मस्जिद को पाक बताया था, और इसी बात को लेकर दोनों में तू-तू मैं-मैं जारी थी ! उसी समय मंदिर-कलश पर बैठे कबूतर को मस्जिद की गुम्बद पर एक कबूतर नजर आया। वह वहाँ से उड़ा और मस्जिद की गुम्बद पर जा पहुँचा। दोनों ने चोंच से चोंच मिलाकर बातें की और फिर बगल वाले छत पर दाना चुगने के लिए उतर पड़े···!

मन्दिर और मस्जिद के बीच झगड़े ने दंगे की शक्ल ले ली थी और ऊपर दोनों कबूतर बेफिक्र दाना चुगने में मशगूल थे, निरन्तर ·· □

—कुतुबुद्दीन लेन, दरियापुर,
पटना—८००००४

गिद्ध

—श्यामसुन्दर चौधरी

दंगे के बाद सड़क पर सन्नाटा छा गया। खून से लथपथ लाशें बिखरी हुई थीं। हथगोलों की गन्ध सारे वातावरण में फैल चुकी थी। दूर सामने की झोपड़ी में एक रिक्शावाला और उसकी पत्नी सहमे हुए से यह सब देख रहे थे।

'··बुरा हो इन लोगों का। कैसे मारा है इन बेचारों को। किस मुँए के दिमाग में पहली बार इसको बनाने की बात आयी। मिल जाये तो'···पत्नी कुछ तैश और करुणा मिश्रित आवाज में बोल रही थी।

'क्या करोगी मिल जाये तो ?' रिक्शे वाला पत्नी की बात से कुछ खिन्न-सा लग रहा था, 'यह तो सिर्फ हथगोले हैं, आज आदमी कितनी तरक्की कर चुका है, कुछ मालूम है। अब तो ऐसे भी बम बन चुके हैं कि पूरी दुनिया पल भर में खत्म हो सकती है···'

'क्या···?' पत्नी आश्चर्य चकित सी बोली।

'हाँ···और मजेदार बात यह है कि लोग तो मर जायेंगे पर किसी भी मकान या सामान पर जरा-सा भी असर नहीं होगा, सब कुछ वैसा ही रहेगा।'

पत्नी का मुँह खुला का खुला रह गया। वह कभी सड़क पर देखती, कभी अपने पति की ओर—'लोग मर जायेंगे और किसी भी मकान या सामान पर··उफ ! इतनी तरक्की और मुझे मालूम ही नहीं···' उसकी आँखें मानो बाहर निकल आना चाहती थीं।

'चलो अब तो मालूम हो गया··'

'लेकिन ··' उसने कुछ सोचते हुए पूछा, 'यह बम भी इन्सानों ने ही बनाया है न···?'

'क्या मतलब ?'

'कुछ नहीं···ऐसे ही···!' पत्नी की आँखें अभी भी सड़क पर टिकी हुई थीं। गिद्ध उन इन्सानों की लाशों के ऊपर बैठे चोंच मार रहे थे। □

—साहनी कालोनी, टैगोर रोड (कैन्ट), कानपुर (उ० प्र०)

अवसर

—राजश्री रंजोता

साम्प्रदायिक दंगों का नाम देकर मनमानी हो रही थी। दरवाजे पर थाप सुनकर उसने दरवाजा खोल दिया। सामने एक अजनबी को देख जैसे ही उसने दरवाजा बन्द करना चाहा, कुछ युवक उसे अन्दर धकेलते ले गए। किवाड़ बन्द हो गए।

'छोड़ दे मुझे कमीने'··· की अन्दर से आती आवाज सभी पड़ोसियों ने सुनी। परन्तु सभी अपने-अपने घर में मुँह छिपाए पड़े रहे। यही सोचकर कि पड़ोसिन मुस्लिम है·· घर में हिन्दू ही होंगे। □

—२११७, राईट टाउन, जबलपुर—२

मानवीय अवमूल्यन

आदमी

—विनय कुमार सिंह

'तूने आदमी देखा है ?'

'हाँ, हम लोग ?'

'नहीं, तुम लोग तो कायस्थ हो।'

'तुम्हारे पापा।'

'वे तो साहब हैं।'

'तब तुम्हीं बताओ।'

'दुनिया में दो आदमी हैं--एक हमारा चपरासी बनवारी और दूसरे वर्मा साहब।'

'वो कैसे ?'

'एक बार पापा ने बनवारी को अखबार लाने के लिए बाजार भेजा। लेकिन वह खाली हाथ लौट आया। उस समय पापा ने कहा था कि बनवारी बेकार आदमी है।'

'और वर्मा साहब ?'

'पापा मम्मी से कह रहे थे कि हमारे नए बॉस वर्मा साहब बड़े काम के आदमी हैं।' □

—सिंह हाउस, पंडित जी रोड, हजारी बाग

तलाश

—राघवेन्द्र वर्मा

देश के सभी प्रमुख समाचार-पत्रों में एक विज्ञापन छपा।

'एक ईमानदार, नैतिक, सच्चरित्र, समाजसेवी व्यक्ति, जिसके लिए देशहित और समाज-हित, निजहित से बढ़कर था, वर्षों पहले खो गया है। जिस सज्जन को भी मिले ! कृपया निम्न पते पर सूचित करने का कष्ट करें।'

काफी दिनों के इन्तजार के बाद एक पत्र मिला :

'प्रिय महोदय !

इस प्रकार का एक व्यक्ति मेरे मुहल्ले में वर्षों पहले रहता था। उसके दिन बड़े बुरे गुजरे थे। उसने भूख और लोगों की गालियाँ सही थीं और अन्त में कंगाली और तंगहाली से लड़ता-तड़पता मरा था।

उसे लोग पागल कहते थे, कहीं आप भी पागल तो नहीं, जो उसे ढूँढ रहे हैं ?' □

असमंजस

—मदन प्रसाद सिंह

गुरु जी आप कहते हैं, लिखो लेकिन किस पर लिखूँ—जाति पर, सम्प्रदाय पर, देश या दुनिया पर ? जिधर देखता हूँ—'आग ही आग ··घर-घर देखा एक ही लेखा। आज सारा संसार बेचैनी से गुजर रहा है। जब घर की ओर देखता हूँ—घर को चारों तरफ से आग की लपटों के बीच पाता हूँ।'

हर कोई एकाधिकार करने पर तुला है। इस माहौल में लिखने से ज्यादा जरूरत इनसे जूझने की है। □

फर्क

—विष्णु प्रभाकर

उस दिन उसके मन में इच्छा हुई कि भारत और पाक के बीच की सीमा-रेखा को देखा जाये जो कभी एक देश था, वह अब दो होकर कैसा लगता है। दो थे तो दोनों एक-दूसरे के प्रति शंकुल थे। दोनों ओर पहरा था। बीच में कुछ भूमि होती है जिस पर किसी का अधिकार नहीं होता। दोनों उस पर खड़े हो सकते हैं। वह वहीं खड़ा था, लेकिन अकेला नहीं था—पत्नी थी और थे अठारह सशस्त्र सैनिक और उनका कमाण्डर भी। दूसरे देश के सैनिकों के सामने वे उसे अकेला कैसे छोड़ सकते थे। इतना ही नहीं, कमाण्डर ने उसके कान में कहा, 'उधर के सैनिक आपको चाय के लिए बुला सकते हैं, जाइयेगा नहीं। पता नहीं क्या हो जाये ? आपकी पत्नी साथ में है और फिर कल हमने उनके छः तस्कर मार डाले थे।'

उसने उत्तर दिया, 'जी नहीं, मैं उधर कैसे जा सकता हूँ ?'

और मन-ही-मन कहा, मुझे आप इतना मूर्ख कैसे समझते हैं ? मैं इन्सान हूँ, अपने पराये में भेद करना मैं जानता हूँ। इतना विवेक मुझमें है।

वह यह सब सोच ही रहा था कि सचमुच उधर के सैनिक वहाँ पहुँचे। रौबीले पठान थे। बड़े तपाक से हाथ मिलाया। उस दिन ईद थी। उसने उन्हें मुबारकबाद कहा। बड़ी गरमजोशी के साथ एक बार फिर हाथ मिलाकर वे बोले, 'इधर तशरीफ लाइये। हम लोगों के साथ एक प्याला चाय पीजिये।'

इसका उत्तर उसके पास तैयार था। अत्यन्त विनम्रता से मुस्कराकर उसने कहा, 'बहुत-बहुत शुक्रिया। बड़ी खुशी होती आपके साथ बैठकर, लेकिन मुझे आज ही वापिस लौटना है और वक्त बहुत कम है। आज तो माफी चाहता हूँ।'

इसी प्रकार शिष्टाचार की कुछ बातें हुईं कि पाकिस्तान की ओर से कुलाँचें भरता हुआ बकरियों का एक दल उनके पास से गुजरा और भारत की सीमा में दाखिल हो गया। एक साथ सबने उनकी ओर देखा। एक क्षण बाद उसने पूछा, 'ये आपकी हैं ?'

उनमें से एक सैनिक ने गहरी मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया, 'जी हाँ जनाब। हमारी हैं। जानवर हैं, फर्क करना नहीं जानते ?' □

—८१८, कुंडेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली–११०००६

समीचीन : 12

कलयुग

—कालीचरण

खचेड़ू दोपहरी में दिशा-मैदान के लिए ज्वार के खेत में घुसा तो उसे कुछ विचित्र-सी फुसफुसाहटें सुनाई दीं। उसके कान खड़े हो गए। वह आहट लेता हुआ पास पहुँचा ! अचानक वह बुरी तरह चौंक पड़ा। ज्वार के बीच खेत में हरखू चमेली को संग लिये पड़ा था। खचेड़ू कुछ देर तक स्तब्ध-सा देखता रहा।

'बहाइनचो ····हरखू के बच्चे ! ···चमेली के साथ ये कुकर्म ? साले शर्म नहीं आती ?····· अपनी माँ-बहन को··· 'खचेड़ू भभकने लगा।

हरखू और चमेली दोनों सहमकर खड़े हो गये। वे इस अप्रत्याशित स्थिति के लिए तैयार नहीं थे। अतः घबड़ा गए।

'भैया ! ···· भैया खचेड़ू !' हरखू गिड़गिड़ाने लगा देख तू तो मेरे भाई समान है ···· मेरा जिगरी दोस्त !·······जो कुछ तूने देखा है किसी से कहना मत······नहीं तो बखेड़ा खड़ा हो जायेगा····· देख मेरी इज्जत का सवाल है·······।'

खचेड़ू ने स्थिति का जायजा लिया। फिर बोला, 'अच्छा, तू खैर चाहता है तो भाग जा यहाँ से ·······और सुन !·······चमेली को यहीं छोड़ जा·······बस जा ·······जल्दी भाग।···'

हरखू तो गाँव की तरफ भाग गया पर अब खचेड़ू चमेली को रोंदने लगा था।

□

पो० बॉ० नं० १०७
गाजियाबाद—२०१००१

साँप और आदमी

—शराफत अली खान

शहर की कचहरी से थोड़ी दूर सड़क के किनारे नीम और जामुन के वृक्षों की शीतल छांव में अदालती तारीख पर आए ग्रामीणों को इकट्ठा कर एक मदारी तमाशा दिखा रहा था।

मदारी की डुगडुगी की तेज आवाज देखने वालों के दिलों की धड़कनों को एकबारगी तेज कर देती थी।

काफी मजमा इकट्ठा हो जाने पर मदारी ने डुगडुगी को एक दो बार जोर से झटका। फिर चादर ओढ़कर सोये लड़के से बोला—

—बेटा-जमूरे !

—हाँ, मदारी !

—साहब लोग सोच रहे होंगे कि अब तक हम लोग सपेरे थे। तरह-तरह के जहरीले साँपों को दिखाकर लोगों का मनोरंजन करते थे···

—मगर अब हम लोग मदारी बनकर आ गए, यही न मदारी ?

—हाँ, जमूरे ! मगर तुझे पता है कि हम सपेरे से मदारी क्यों बने ? जरा तू बाबू लोग, साहब और गाँव भाइयों को भी बता दे।

—'मदारी !' ···'हाँ बेटे जमूरे !'

—···पहले हमें साँप घने जंगलों, खेत खलिहानों और बाग-बगीचों में मिल जाते थे ··।'

—जमूरे ! मगर अब क्या हुआ ? कहाँ गए साँप !

—मदारी ! अब साँप जंगलों, खेत खलिहानों या बागों, बिलों में नहीं रहे, अब साँप लोगों के दिलों में घर कर गए हैं···। □

निर्धनता

भारत

—पारस दासोत

दौड़ की प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए……

उसने मास्टर से कहा—'मास्टर साहब….! मैं भी दौडूंगा।'

—तू ..!.. तू दौड़ेगा ?

—अच्छा-अच्छा चल चोगा उतार।

उसने मास्टर के कहने से अपना कुरता उतार दिया।

अब ..

उसकी छनी बनियान देखकर सभी मास्टर हँसने लगे। एक ने उसका मजाक उड़ाते हुए कहा।

—बनियान तो पूरे देश का नक्शा बनी हुई है।

दूसरे ने कहा।

—अरे ..! देश तो राज्यों और जिलों में भी बँटा हुआ है।

इस बीच तीसरे ने पूछा।

—क्यों बे तेरा नाम क्या है ?

उसने जवाब दिया—

—मास्टर सा'ब… मेरा नाम.. मेरा नाम भारत है।

थोड़ी देर बाद…तालियों के गड़गड़ाहट के बीच भारत सबसे आगे था। □

—साकेत नगर, बरेठ रोड
गंजबासौदा (म० प्र०)

भूख

—रत्नेश कुमार

—भूख लगी है ! भूख लगी है।···वह लगातार बोले जा रहा है। उसे भूख जो लगी है। भूख से उसकी हालत खराब है। और हालत यह है कि···एकाएक उसकी माँ उसके मुँह पर अपनी तलहथी रख देती है, वह छिटक कर अलग हट जाता है। फिर रो-रोकर बोलने लगता है—भूख लगी है। भूख लगी है।···

—कितनी बार कहा न कि शहर में कर्फ्यू है। सारी दुकानें बन्द हैं। दो दिन से तेरा बाप कहीं नहीं जा रहा। घर में पड़ा है। बोल, कहाँ से आयेगी रोटी ?

—हमें कुछ नहीं सुनना, हमें भूख लगी है। कल सुबह बस एक टटायी रोटी खायी थी। क्या भूख नहीं लगेगी ? जहाँ से हो हमें रोटी दो।

—अच्छा ठहर, देती हूँ रोटी। फिर उसे वह रूई की तरह धुनने लगती है।

बच्चा रोता-चीखता-चिल्लाता किवाड़ खोलकर सड़क पर आ जाता है, जहाँ सैनिक गश्त लगा रहे हैं।

—ठाँय···एक गोली की आवाज बूटों की आवाज की एकरसता तोड़ती है। और बच्चे की भूख मिट जाती है। □

—मगरहट्टा, हाजीपुर–८४४१०१

जन्म-दिन

—सतीश राठी

—'सुनो ! अपना गोलू आज एक साल का हो गया है।' गोलू के मुँह में सूखा स्तन ठूँसते हुए सुगना ने अपने चौकीदार पति से कहा।

—'तुम्हें कैसे याद रह गया इसका जन्म-दिन ?' चौकीदार का प्रश्न था।

—'उसी दिन तो साहब की अल्सेशियन कुतिया ने यह पिल्ला जना था, जिसका जन्म-दिन कोठी में धूमधाम से मनाया जा रहा है।' ठण्डी साँस लेते हुए सुगना बोली। □

—२१२, उषा नगर, इन्दौर–४५२००६

समीचीन : 12

माँएँ और बच्चे

—रमेश बत्तरा

—माँ, भूख लगी है, रोटी दे दो।
—रोटी ? अभी नहीं है बच्चे !
—कब होगी ?
—जब तेरे बाबा आयेंगे।
—बाबा तो कई दिनों से नहीं आये।
—वह जरूर आयेंगे मेरे बच्चे।
—अच्छा तो तुम मुझे कोई और चीज़ दे दो।
—घर में कोई चीज़ नहीं है।
—फिर पैसा ही दे दो ?
—पैसा भी नहीं है।
—पर मुझे भूख लगी है, मैं क्या खाऊँ ?
—तो मुझे खा ले राक्षस।
—मगर कैसे ? □

—सारिका, १०, दरियागंज, नई दिल्ली-२

भूख

—विजय कुमार सिंह

एक लड़का तेजी से भाग रहा था। उसके पीछे एक कुत्ता भी दौड़ रहा था। मैंने झट लड़के को किनारे खींच लिया। लड़का मेरी पकड़ से छूटने की कोशिश करने लगा। तब तक उसकी माँ भी पहुँच गई। उसने मेरी ओर क्रोध भरी दृष्टि से देखा। मैंने लड़के को छोड़ दिया। लड़का तेजी से दौड़ा। उसके पीछे उसकी माँ भी। जब वह वापस लौटा तो उसके हाथ में टिफिन था। उसने टिफिन से रोटियाँ निकालीं—एक स्वयं खायी, दूसरी माँ के मुँह में ठूँस दी। एक आदमी दौड़ता हुआ वहाँ पहुँचा। लड़के ने टिफिन उस आदमी की ओर फेंक दिया। उस पर कुत्ता टूट पड़ा। □

यह भी मिल सके तो

—शैलसहाय

डकैत केस में सजा काट रहे एक कैदी के नाम पर सन्देह होने पर जेल के एक अधिकारी ने उसे बुलाकर पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'जी,···विश्व···ना···थ · सिं···ह···!'

'क्या तुम सच बोल रहे हो ?'

'जी, यहाँ मैं इसी से सजा काट रहा हूँ'

'फिर तुम्हारा सही नाम क्या है ?'

'जी···जो, शिवचन्द्र राम ।'

'तो तुमने विश्वनाथ सिंह के नाम पर आत्म समर्पण क्यों किया ?'

'मैं बेरोजगार था हुजूर ! मेरे ऊपर दो बच्चों और पत्नी के भरण-पोषण का भार था।'

'क्या जेल में आ जाने से तुम्हें इस भार से मुक्ति मिल गई ?'

'जी नहीं हुजूर ! विश्वनाथ सिंह ने पाँच साल तक जेल की सजा काटने की एवज में पाँच साल तक मेरी पत्नी-बच्चों के भरण-पोषण का भार उठा लिया है।' कैदी ने पूरी बात साफगोई से कह दी। □

कोई फर्क नहीं

—अमरीक

क्यों चिन्ता करते हो ,रामधन···तुम्हारे घर बेटा पैदा होगा···।

—बाबू जी, गरीब के लिए क्या बेटा···क्या बेटी··· ससुरा पेट तो दोनों के ही लगा होता है···! □

—आर० एस० डी० कालोनी, सिरसा–१२५०५५

समीचीन : 12

भूख

—मधुकांत

रात गहरायी हुई थी। दोनों टूटे फर्श पर लेटे अंधकार में कुछ खोज रहे थे।

'बीरू की माँ ! नींद नहीं आ रही।' उसका स्वर कमजोर था।

'हूँ…'

'जरा इधर तो सुन…।'

वह बीरू के मुँह से स्तन छुड़ाकर उसकी बगल में हो गयी।

'आज भी ठेकेदार ने पैसे नहीं दिये।' उसका स्वर भर्रा आया और वह सिकुड़ने लगा।

पत्नी ने ममतामयी हाथ उसकी बगल में डाल दिया, 'चमेली ने दया खाकर थोड़ा-सा भात दे दिया था। सारा निगोड़े बालक खा गये। तुम्हारे कू…।'

'बीरू की माँ, मेरे पास चार रोटियाँ हों तो सारी तुझे खिला दूँ……तेरा पेट भर दूँ।' अपने भूखे पेट को उसने पत्नी के पेट में डाल दिया।

'मेरी क्या, मुझे तो बरत करने की आदत है…तुम्हें तो मजूरी पर जाना है…।' वह स्नेहमयी हो गयी।

'हाँ…हाँ…' अब वह भूख को भूलकर पत्नी के अन्दर धँसता जा रहा था।

'ये क्या कर रहे हो…छोड़ो भी… बच्चे जाग जायेंगे। देखो, मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ पहले ही भूख से अंतड़ियाँ निकली जा रही हैं…'मरना है क्या…।'

'हाँ बीरू की माँ मरना तो है ही; चाहे भूख से मरें… फिर ऐसे ही कौन बुरा है।'

वह निरन्तर अपनी भूख के लिए लड़ता रहा। रात और अधिक गहराती गयी। □

—'प्रज्ञा' साहित्यिक मंच,
सांपला—१२४५०१, (हरियाणा)

निश्चित

—जया नर्गिस

मन्त्री जी के आगामी सप्ताह गाँव के दौरे पर आने की घोषणा करते फिर रहे ताँगे के पीछे कल्लू दिनभर कड़ी धूप में नंगे पैर दौड़ता रहा और वे इश्तहार बटोरता रहा जो ताँगे से बांटे-बिखेरे जा रहे थे।

सांझ ढले तक उसके पास काफी कागज इकट्ठा हो गया था। भूख-प्यास और थकान से निढाल होकर भी कल्लू की आंखों में एक चमक थी। आज उसे और उसके बीमार बापू को रोज की तरह पानी पीकर नहीं सोना पड़ेगा। इस रद्दी को बेचकर वह दो मुट्ठी आटे का इन्तजाम तो कर ही लेगा। □

—सं० प्रासंगिक सरोकार,
जी० २०/१५, साउथ टी० टी० नगर, भोपाल

इस बार

—पारस दासोत

होटल के पीछे……

वह दीवार से सटा किसी का इन्तजार कर रहा था कि…अचानक धम्म ऽऽ…की आवाज आई। धम्म की आवाज की तरफ…कुत्तों के साथ-साथ वह भी दौड़ पड़ा।

काफी प्रयास करने पर…उसने कुत्ते से रोटी छीन ली।

अब…वह एक तरफ बैठा…रक्त रंजित हाथों से रोटी खाते हुए कुत्तों की तरफ… इस तरह देख रहा था मानो कह रहा हो…'इस बार…अगर उससे रोटी छीनने की कोशिश की गई तो…'

…वह उन्हें काट खायेगा। □

—साकेत नगर, बरेठ रोड, गंज बासौदा (म० प्र०)

एक मौत

—रंजीत राय

सूखी रोटियों को जहर में चुपड़ कर सड़क पर डाल दिया गया था, आवारा कुत्तों को खाकर मरने के लिए। लेकिन पाँच वर्ष का एक बालक दुनिया के छल-प्रपंच से दूर, अपने पेट में उठ रहे दावानल को दबाने के लिए, उन सूखी रोटियों को खाकर, चेहरे पर तृप्ति का भाव लिये, दुनिया से कूच कर गया था।

भीड़ जुटने लगी। चारों ओर केवल प्रश्नों की बौछार। कब? क्यों? कैसे? मात्र औपचारिकतावश! वैसे ही जैसे किसी गरीब के जीवन भर की कमाई चोरी हो जाने पर पुलिस विभाग की पूछताछ! उसके मरने पर लोगों के हृदय के किसी कोने में सरसों के बराबर भी दुःख नहीं। होना भी नहीं चाहिए क्योंकि भारत के गरीब बच्चे और आवारा कुत्ते में अन्तर ही कितना है? दोनों में तो आश्चर्यजनक समानता है।

'मरने के समय कम से कम भर पेट खाकर तो मरा।' किसी ने कहा। □

द्वारा : शिवबचन राय,
सी० टी० ओ० कुल्टी वर्क्स
कुल्टी, जिला-बर्दवान—७१३३४३

शोषण

किसान

—कमलेश भारतीय

जब उसने बैलों को खेतों की तरफ हाँका, तब उसे लगा शक्ति है, वह बहुत काम कर सकता है, बहुत कुछ !

जब उसने बीज बोया, तब उसे लगा कि उसने दिल का छोटे-से-छोटा हिस्सा खेत में बिखेर दिया ।

जब उसने सिंचाई की, तब उसे लगा उसने अपना स्नेह बहा दिया, और फिर अंकुर फूटे···उसके सपने जन्मने लगे ।

और फसल लहलहाने लगी उसके सपने लहलहाने लगे···उसे लगने लगा कि समूचा आकाश रंगीन तारों सहित उसके खेतों में उतर आया है ।

फसल लादकर घर से बैलगाड़ी हांकने लगा तो पत्नी ने अपनी फरमाइशें रख दी वह मुस्कराता रहा ।

मंडी में उसने बैलगाड़ी रोकी तो उसे महसूस हुआ मानो किसी श्मशान में आ रुका है, जहाँ छोटे-बड़े सभी गिद्ध पहले से उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

फसल बिकी हिसाब बना ।

जाने किसने किससे बेईमानी की थी, वह 'उधार' के हाथों 'नकद' का दाँव हार गया, 'ब्याज' के हाथों 'मूल' गँवा आया ।

वह फिर खाली हाथ था, फटे हाल था, बैल भूखे थे, वह भूखा था, अपनी टूटी बैलगाड़ी की तरह भीतर-बाहर से टूटा हुआ था, वह 'लालपरी' के संग कोई लोकगीत गुनगुनाता वापिस जा रहा था···और उसे लग रहा था कि आकाश बहुत ऊँचा है तथा तारे कितने फीके हैं ! रात कितना·· अजब अँधेरा है···गाँव तक पहुच भी पायेगा कि नहीं ? □

—शारदा मुहल्ला, नवांशहर, दोआबा (पंजाब)

उसका दुःख

—तारीक असलम तस्नीम

पंचायत के आगे ग्रामवासियों की भीड़ इकट्ठी थी। नेताजी आये थे शहर से। गरीबों भूमिहीनों को खेती युक्त भूमि निःशुल्क वितरण के लिए। इसलिए सभी लोग प्रसन्न दिख रहे थे।

तभी एक ऊँचे स्थान पर बने मन्च पर खड़े होकर गाँव के मुखिया ने एक-एक व्यक्ति का नाम पढ़ना शुरू किया, जिन्हें सरकार की ओर से भूमि दी जा रही थी। तदोपरान्त ग्रामीण बैंक के मार्फत बैलों की एक जोड़ी भी देने की घोषणा की गई।

एक दिन सीबूआ भी सरकारी भूमि के अतिरिक्त दो बैलों का मालिक बन गया। खुशी के मारे रात भर ठीक से सो नहीं पाया। मगर उसे क्या पता था, उसकी बदलती स्थिति को देखकर किसी के सीने पर साँप लोट गया है।

दूसरे दिन सुबह-सवेरे किशन बैलों को लेकर अपने खेतों पर पहुँचा। वह आश्चर्य चकित रह गया। साहूकार के आदमी वहाँ पहले से मौजूद थे। वह कुछ पूछता इससे पूर्व ही कहीं से आकर साहूकार ने पूछा—'का रे! किशना हमार हिसाब-किताब होई की न?'

'मालिक! फसल कटते ही पाई-पाई चुकता कर देब। थोड़ी सी और मोहलत दे दो।' उसने विनती की।

'चुप स्साला!' साहूकार गरजा। फिर कहा, 'कान खोलकर सुन ले, अब! एक दिन की भी मोहलत नहीं दूँगा। अभी हिसाब कर दे, नहीं तो ठीक नहीं होगा।'

'मगर मालिक अभी तो जेब में फूटी कौड़ी भी नहीं' वह घिघियाया।

"तो फिर ये दोनों बैल हमारे आदमी ले जायेंगे और जब तक रुपया नहीं चुकायेगा, हमार खेत की जुताई करेंगे।' उसने अपना फैसला सुनाया। यह सुनकर किशन फफक कर रोया। साहूकार के पाँव पकड़कर गिड़गिड़ाया। मगर वह नहीं पसीजा।

एक दिन किशना का खेत भी साहूकार के बहीखाते पर चढ़ गया। □

—हारून नगर कॉलोनी,
फेज २, प्लाट ६,
फुलवारी शरीफ—८०१५०५
(पटना)

'लघुकथा का संघर्ष रोटी पर लगे घी के लिए नहीं···रोटी के लिए है।'

—पारस दासोत

अनुभव

—मदन शर्मा

दोनों साँप एक ही किस्म के थे। लम्बाई, मोटाई, फन, जहर और फुंकार में भी एक जैसे। दोनों ने एक दूसरे को दुम की ओर से खाना शुरू कर दिया और एक दूसरे को वे खाते ही चले गये। किन्तु कमी किसी भी चीज में नहीं आई। क्योंकि वे दोनों साँप, पूरे के पूरे समीप बैठे बूढ़े और अनुभवी अजगर के पेट में चले गये थे। □

—क्यू० ए० ७२/३, न्यू एरिया फैक्ट्री क्वार्टर्स,
रायपुर, देहरादून—८

समीकरण

—श्यामबिहारी सिंह श्यामल

शोषित-दमित गाँवों का दल अपनी व्यथा सुनाने राजा के पास पहुँचा। वहाँ यह देख सभी अचम्भित रह गए—राजा आराम से लेटा हुआ था,·····'आतंक', 'अपराध', 'भ्रष्टाचार' व 'शोषण' सेवक मुद्रा में उसकी देह दबा रहे थे और दासी मुद्रा में खड़ी 'मँहगाई' व 'अराजकता' पंखा झल रही थीं···। □

—श्री द्वारिकापुरी, नावाटोली, डाल्टनगंज—८२२१०१

हाथ-दर-हाथ

—मधुकांत

जमींदार ने अंगूठा लगवाकर उन हाथों को खरीद रखा था। बही पर रखे ढेर सारे हाथों को देखकर वह बहुत खुश होता। कभी कभार एक दो हाथ कम होते तो वह बदले में दुगुने खरीद लेता था।

इतने हाथों को देखकर एक बार वह सरपंच के चुनाव में खड़ा हो गया। कुछ हथेलियों पर शराब, किसी मुट्ठी में सिक्के और कुछ अंगुलियों पर केवल आश्वासन चिपकाकर वह सरपंच बन गया।

अब वह खरीदे हुए हाथों का खून पीने लगा। उसके विरोध में कुछ हाथ उठे तो उनको कुचलकर जमींदार ने जमीन में दबवा दिया।

कुछ समय बाद उस जमीन में बहुत तेज धारदार नाखून वाले हाथ उगे जिन्हें देखकर अब जमींदार डरा-डरा सा रहता है। □

—प्रज्ञा साहित्यिक मंच, सांपला–१२४५०१

लघुकथा में संवेदना के साथ ही भाषा का विशेष महत्त्व है। वैसे तो यह साहित्य की किसी भी विधा के लिए महत्त्वपूर्ण है; किन्तु लघुकथा के लिए कविता की तरह इसका विशेष महत्त्व है। इसकी भाषा में एक खास तरह की तराश आवश्यक है। फीलपांवी भाषा का सर्वथा निषेध इसकी एक मुख्य आवश्यकता है। इसकी भाषा प्राणस्पर्शी होनी चाहिए। क्योंकि थोड़े में अधिक कहना इसकी निजता है और यह जीवित और स्पर्शी भाषा से ही सम्भव है। इसकी भाषा कोशीय नहीं, जीवन के जीवित सन्दर्भों से ली गई होनी चाहिए।

(—'लघुकथा : बहस के चौराहे पर', पृ० १३० से साभार)

सम्बन्ध-जगत : विविध परिदृश्य

पत्नी की इच्छा

—सतीशराज पुष्करणा

अपने पुत्र अरुण को डॉक्टर बनाने के लिए राधे ने रिक्शा चलाते-चलाते जवानी में ही बुढ़ापे को न्यौता दे दिया था। क्योंकि उसकी स्वर्गीय पत्नी की हार्दिक इच्छा थी कि बड़ा होकर अरुण डॉक्टर बने ताकि अरुण की तरह अन्य बच्चे मातृहीन न हों।

राधे का पसीना रंग लाया। समय आने पर अरुण डॉक्टर बन गया। उसकी शादी भी कर दी गयी। अरुण की पत्नी ने आते ही इच्छा जाहिर की कि इस घर को छोड़कर किसी सुन्दर बंगले में चलें। इससे पर्सनैलिटी में अन्तर पड़ता है। अरुण ने भी सहमति दे दी।

एक दिन साहस बटोरकर अरुण ने अपनी पत्नी की इच्छा को राधे के सामने रखा। इतना सुतते ही राधे को चक्कर आ गया।

राधे ने कहा, 'बेटा ! यह कैसे हो सकता है ? जिस घर में तुम्हारी देवी स्वरूपा माँ की आत्मा का वास हो, उस घर को छोड़ने की बात तुम्हारे दिमाग में कैसे आ गयी ? क्या तुम भूल गये कि उसी की इच्छा का परिणाम है कि तुम एक डॉक्टर हो और एक बड़े घर की सुन्दर लड़की के स्वामी हो ?

अरुण ने उत्तर दिया, 'पिताजी ! मैं तो आप ही के पद-चिह्नों पर चल रहा हूँ। आपने पत्नी की इच्छा को पूरी करने के लिए अपनी जवानी को बुढ़ापे में बदल दिया, तो क्या मैं अपनी पत्नी की छोटी-सी इच्छा के लिए घर भी नहीं बदल सकता हूँ ?' □

—निदेशक,
अखिल भारतीय हिन्दी प्रसार प्रतिष्ठान
महेन्द्रू, पटना–८००००६

ठेका

—साबिर हुसैन

'सुनो, मैंने महेश बाबू से उनके बेटे के लिए बात की है।'

'कौन, वही जो इंजीनियर है ?'

'हाँ, उसी के लिए।'

'उनका तो मुँह बहुत बड़ा है।'

'हाँ, करीब एक लाख में शादी होगी। गाँव की जमीन बेच दूँगा और ये मकान गिरवी रख दूँगा। बाकी उधार व्यवहार से पूरा हो जायेगा।'

'ऐसे रिश्ते से क्या लाभ कि घर फूँक कर तमाशा देखो। कल वे और माँग करेंगे तब क्या करोगे, बेटी को मरवा दोगे ? राजेन्द्र बाबू का लड़का कौन बुरा है, प्रोफेसर है अच्छा कमाता है और जा मर्जी हो दे दो।'

'अरे मैं भी ठेकेदार हूँ, हर ठेका नाप-तौल कर लेता हूँ। तुम नहीं समझीं··· अरे इंजीनियर दामाद होगा तो बड़े ठेके भी मिलेंगे और सम्हाले भी रहेगा। उससे कमायेंगे तो उसे भी देंगे।'

वह खामोश रह गयी। □

—ज्योति प्रेस, पलिया कलाँ, खीरी (उ० प्र०)

चरित्र

—सुरंजन

निरंजन की शादी की बातचीत राँची में चल रही थी। एक दिन वह अपने परिवार के साथ लड़की देखने चला गया। वह लड़की पसन्द थी। बात पक्की हो गयी।

दशहरे के मौके पर निरंजन को रांची आने का आमन्त्रण और साथ में उस लड़की का प्रेम भरा एक पत्र भी मिला। वह राँची चला गया।

लड़की के पिता डॉक्टर थे और माँ लेक्चरर थी। निरंजन का हार्दिक स्वागत हुआ। वह लड़की निरंजन को कार में बिठाकर अपने शहर का ओर-छोर दिखाने ले गयी।

रात काफी ढल चुकी थी। वे दोनों एक पार्क में बैठे, रात के गहरे अन्धकार में खोये हुए थे। ठंडी हवा का एक झोंका जैसे ही बहा, वह लड़की एकाएक निरंजन की बाहों में झूल गयी और उसने निरंजन के होठों पर अपने होठ रख दिए। उसके होठों की लाली दहकने लगी थी। उसकी धड़कन में एक भूचाल-सा आ गया था और निरंजन ने चाहकर भी परीक्षा की घड़ी को ठोकर मार दी।

निरंजन ने उस लड़की को समझाते हुए कहा—'अभी नहीं, शादी के बाद ! दोनों रात के बारह बजे घर लौटे, किसी ने पूछा नहीं कि इतनी रात में अब तक कहाँ थे ।

लड़की का चेहरा उदास था ।

दूसरे दिन निरंजन अपने घर लौट गया । चौथे दिन उसे एक पत्र मिला—'मेरी बेटी को लड़के का चरित्र ठीक नहीं लगा । □

वरदान

—नरेन्द्र मौर्य

पारो तपस्या पर बैठ गयी । उसने एक वर्ष अंडे और डबल रोटी खाकर गॉड शिवा के सामने भाँगड़ा किया । चार महीने बीयर और कॉफी पीकर 'कि प्याला तेरे नाम का पिया' गीत गाया । चार दिन तम्बाकू और सिगरेट पर निकाले । चार घंटे तक निराहार रही । तब कहीं जाकर भगवान की नींद खुली । उन्होंने जल्दी से हेलिकाप्टर में पेट्रोल भरा और पारो के पास आये ।

पारो थोड़ा अकड़ गयी—क्या प्रभु इतनी देर लगा दी । मेरा तो रंग काला हो गया धूप में खड़े-खड़े ।

भगवान ने आश्वस्त करते हुए कहा—हम तुम्हें फिर वही रूप देंगे ।

—नहीं भगवान, रूप के लिए तो मार्केट में बहुत से टायलेट सोप मिलते हैं ।

—तो फिर क्या चाहती हो ?

—डियर प्रभु, मुझे हस्बेंड चाहिये ।

भगवान ने पूछा—नरों, किन्नरों, यक्षों, नागों, देवों, दिग्पालों, राक्षसों, भूतों, प्रेतों, घोड़ों, गधों में से तुम किसको चाहती हो ?

—नहीं इनमें से कोई नहीं ।

—बाला, इनमें से नहीं तो क्या स्वर्ग के सम्राट इन्द्र से प्रेम करती हो ?

—ही इज आलरेडी मेरीड···

—तो क्या तुम अजर अमर कागभुशण्डिजी से विवाह करना चाहती हो ?

—नहीं ।

—फिर तुम्हीं बताओ बाला, तुम किसे चाहती हो ?

पारो ने नजरें झुकाकर अंगुली से फिल्मी अन्दाज में जमीन कुरेदते हुए कहा—डियर शिवा, यदि तुम रियली खुश हो तो राहतकार्य का ओव्हरसीयर हमारा हस्बेंड बने । □

गढ़ीपुरा, हरदा, (म० प्र०)

जल्लाद

—कृष्णशंकर भटनागर

'डैडी जल्लाद क्या होता है ?'

पुत्र के इस असामयिक प्रश्न पर वे चौंके, बोले, 'क्यूँ बेटा ?'

'डैडी यूँ ही ।'

उन्होंने अपने मस्तिष्क पर जोर दिया, और बोले, 'बेटे जल्लाद वह व्यक्ति होता है जो क्रूर होता है, कठोर होता है, और अपराधियों को फांसी के तख्ते पर लटकाता है···।'

'फांसी क्या होती है, डैडी ?

डैडी ने तीन बार ऊँगलियाँ चटकाईं, सिगरेट की राग की राख एशट्रे में में झाड़ी, सोचा और बोले, बेटे···'फांसी'···!

'आदमी अगर कोई जघन्य अपराध करता है और अदालत उसे फांसी की सजा सुना देती है तो उसके गले में रस्सी का फंदा डालकर पट्टा हटा दिया जाता है···इसे फाँसी कहते हैं ।'

'फांसी का फंदा गले में कौन डालता है' :

'जल्लाद···।'

'इसे जल्लाद क्यों कहते हैं ?'

'क्योंकि वह क्रूर होता है, कठोर होता है···।'

'गलत' बेटे ने अखबार आगे बढ़ाकर कहा, 'डैडी देखो न्यूज छपी है ! एक जल्लाद, बूढ़े के गले में फाँसी का रस्सा डालने से पहले ही बेहोश हो गया ।

'बेहोश हो गया···!'

'हाँ डैडी क्योंकि उस बूढ़े की शक्ल उसके बाप से मिलती थी, और बूढ़े ने कनटोप पहनते हुए कहा था, बेटा देखकर आहिस्ता से लगाना, मैं तेरे वालिद की तरह हूँ ।'

'कमाल है···।'

'हाँ डैडी···! वह आदमी जल्लाद क्यों हुआ ?' पुत्र ने आशंका प्रगट की, 'डैडी कठोर तो आप भी हैं··· आपने दादीजी को घर से निकाल दिया, डैडी आप जल्लाद नहीं हैं न,···डैडी आप बेहोश नहीं हुए आप जल्लाद से भी बड़े हैं क्या ?' डैडी हतप्रभ रह गये । □

८/३२१, कम्बोहा कटरा सहारनपुर २४७००१

लघुकथाओं में बोझिलता का दोष यदि है तो केवल इसीलिए कि 'परिवेश का ईमानदार चित्रण' के अर्थ में कथाकार परिवेश में निहित तथ्यों और इन तथ्यों को उजागर करने वाली सूचनाओं को ठूँस-ठूँस कर लिख लेते हैं । इसे लघुकथाएँ सूचनात्मक और रिपोर्टिंग की तरह लगने लगती हैं । —विक्रम सोनी आगमन अंक-३० पृ० १८

स्थिति

—बालकृष्ण नीमा

'देखा आज तुमने ? सक्सेना जी कितने सम्पन्न हो गये हैं। उनके यहाँ क्या कुछ नहीं है ? कुछ समय पहले वे भी तुम्हारी ही 'पोस्ट' पर थे परन्तु आज कम्पनी के भागीदार हैं और तुम ?'

'शीला मैं इस ऊँचाई तक नहीं जाना चाहता जहाँ से धरातल भी नहीं दिखाई दे। वह 'औरत' पर जिन्दा है।

यदि मैनेजिंग डायरेक्टर का तुम्हें भेजने का वह अनुरोध स्वीकार कर लेता तो मैं भी ...' □

—दी बैंक ऑफ राजस्थान लि०
नीमच (म० प्र०)

पापा

—केदार नाथ

एक बार पाँच-छः वर्ष के बच्चे आपस में बातें कर रहे थे। एक ने कहा, 'तुम बड़ा होकर क्या बनोगे ?'

'मास्टर साहब'

'मैं तो पापा बनूँगा।'

'क्यों ?'

'मैं जब पापा बनूँगा, मेरे डर से सभी घर में सहमे रहेंगे। जानते हो, पापा लोग हम लोगों को तो डाँटते ही हैं, दादा जी को भी डाँटते हैं—'आप चुप रहिए।' उनको घर में किसी से डर नहीं होता।

'हूँ ऽ ! ठीक कहते हो, मैं भी पापा बनूँगा।' □

समीचीन : 12

खू-खाता

—कमल चोपड़ा

तारीख पक्की करते समय सोचा था कि अभी दो ढाई महीने हैं कुछ ना कुछ कहीं ना कहीं से इन्तजाम हो जाएगा···पर क्या पता था कि इसके उसके पाँव चाटने पर भी अगला पसीजता ही नहीं और अपनी मजबूरी पहले आगे रख देता है···। अब वो मद्द उड़ेगी कि··दुनिया देखेगी सिर्फ आठ दिन रह गये हैं और इधर पैसों का कोई इन्तजाम नहीं है·····।

लड़की का बाप होना और ऊपर से गरीब होना कितनी बड़ी लानत है।

शिवचरण जी परेशान थे कि बाकी सब तैयारियाँ हो चुकी हैं। दो तीन सो आदमियों की रोटी के इन्तजाम के लिए कहीं से उधार मिल जाता तो बेटी राजी-खुशी विदा हो जाती ··। उनकी भूख प्यास नींद सब उड़ चुकी थी ·। चिन्ता··· चिन्ता। क्या किया जाए ? क्या होगा ?

उसी दिन अचानक शाम को शिवचरण जी की माँ मर गई। भगवान क्या परीक्षा ले रहे हैं ? बेटी की शादी के ऐन वक्त पर माँ की मृत्यु···। माँ ने भी अभी मर कर रंग में भंग डालना था। पाँच-सात सौ रुपयों का और अनिवार्य खर्चा···।

लड़के वालों को भी इस हादसे का पता चला तो लड़के के पिता भी शव यात्रा में शरीफ होने आये। सभी को रोता बिलखता देख वे भी थोड़ा भावुक हो उठे।

शिवचरण जी रोते-रोते अचानक थोड़ा अन्दर ही अन्दर मुस्कुराये कि चलो माँ के मरने का अच्छा बहाना है अब शादी की तारीख आगे टाली जा सकती है और तब तक कुछ न कुछ इन्तजाम अवश्य ही हो जाएगा···।

समधी जी लौटने लगे तो बोले, 'भाई शिवचरण जी···ऊपर वाला जो करता है उसका रहस्य हम क्या समझेंगे ··'

इसमें क्या समझना ? रंग में भंग तो डाल दिया भगवान ने···अब बेटी की शादी कैसे कर पाऊँगा ? करूंगा भी तो लोग क्या कहेंगे ? अब तो आगे की कोई तारीख गिनवानी पड़ेगी।'

'नहीं भाई शिवचरण जो होना था·· वो नुकसान तो पूरा क्या होगा··· अब ये है कि शादी उसी तारीख पर ही होगी··· मैं सिर्फ सात आठ आदमियों की बारात लेकर आऊँगा और सादे तरीके से हम लड़की ब्याह कर ले जायेंगे···'

और सभी कुछ इतनी आसानी से निबट जाएगा शिवचरण ने सपने में भी ना सोचा।

'माँ ने स्वयं मर कर कितनी बड़ी परेशानी से बचा लिया'। शिवचरण 'माँ··माँ' करके रो रहे थे ··

'माँ···माँ··तुम्हारा कर्ज···मूल ब्याज सब डूब ही जाना होता है तो··· जानते हुए भी कोई भी माँ मरते दम तक और कर्ज देना बंद क्यों नहीं करती···'□

१६००/११४, त्रिनगर, दिल्ली–११००३५

मृत्यु की आहट

—अशोक लव

राजधानी का पश्चिम क्षेत्र तेज धमाकों से गूंज उठा। रसोई-गैस के सिलेण्डर पटाखों के समान फट-फट कर आसमान में उड़ने लगे। उनके टुकड़े साथ लगे गली-मौहल्लों में गिरने लगे। पूरे क्षेत्र में कोहराम मच गया। लोग छतों पर चढ़कर दूर लगी आग को देखने लगे। बात-ही-बात में खबर फैल गई कि विशाल टैंकरों में भरी गैस को भी आग लग गई है। दस-बारह किलोमीटर तक सब स्वाहा हो जाएगा।

अभी तक गैस के सिलेण्डरों का उड़ना लोगों के लिए एक तमाशा था। अब तमाशा मौत बन रहा था। लोग घर-बार छोड़कर भागने लगे। स्त्रियों ने धन-गहने भी संभाले। सभी जल्दी-से-जल्दी मौत के दायरे से बाहर निकल जाना चाहते थे।

नरेन्द्र अपने एक मित्र के घर राजौरी गार्डन गया हुआ था। आग लगने का समाचार सुनकर मोटर सायकिल दौड़ाता आया। जल्दी-जल्दी पत्नी और दोनों बच्चों को पीछे बिठाया। मोटर सायकिल स्टार्ट करने ही वाला था कि माँ चिल्लाती आई—'बेटे मुझे भी साथ ले चल। यहाँ जिन्दा जलने के लिए मत छोड़ जा।'

नरेन्द्र ने मोटर सायकिल स्टार्ट करते हुए कहा—'इन्हें छोड़कर अभी आता हूँ माँ! आकर तुम्हें ले जाऊँगा।'

क्षण भर में मोटर सायकिल आँखों से ओझल हो गयी। माँ अवाक् दहलीज पर खड़ी देखती रही। फिर आंगन में आकर आग के रूप में आती मृत्यु की आहट सुनने लगी। उसकी आँखों के सामने वैधव्य और नन्हें नरेन्द्र को जवानी तक पहुँचाने के कष्टप्रद दिनों के अनेक चित्र घूम गये। आँखों से बहते आँसुओं की धाराएँ फूटती चली गईं।

अचानक गली में शोर। आग पर दमकल वालों ने नियन्त्रण कर लिया है। गैस के भरे विशाल टैंकरों तक तो आग पहुँची ही नहीं थी। माँ ने तटस्थ भाव से जीवन को लौट आते महसूस किया।

तभी मोटर सायकिल के रुकने की आवाज आई। नरेन्द्र पत्नी और बच्चों के साथ घर में दाखिल हो रहा था। माँ की आँखें पथरा चुकी थीं। उसने अपने बेटे को देखकर भी अनदेखा कर दिया। □

—फ्लैट-१३, एयरफोर्स स्कूल, सुब्रोतो पार्क, दिल्ली

क्षितिज

—सतीशराज पुष्करणा

प्यार की पैंग पूरी तरह परवान भी न चढ़ पायी थी कि जलते हुए दो बदन एक हो गये और दूसरा बसन्त अभी आँगन स्पर्श भी न कर पाया था कि आँगन में मधुर-मधुर किलकारियों की गूँज सुनाई पड़ने लगी। प्रेम की परवान को बरकरार रखने की कोशिश में उसने जरूरी समझा कि बेरोजगारी का कोई ठोस हल निकाला जाये। इस समस्या के समाधान हेतु उसे अपने घर से हजारों मील दूर जाना पड़ा। पत्नी और बच्चे की खुशहाली के लिए उसे जरूरत थी पैसों की। इतने पैसों की कि फिर उसे कभी वियोग न सहना पड़े। शरीर के गाढ़े पसीने ने यह प्रबन्ध भी कर दिया। इससे पूर्व कि वह अपनी पत्नी और बच्चे के पास घर जाने हेतु स्टेशन पर गाड़ी पकड़ने के लिये अपने बोरिये-बिस्तरे सहित निकलता कि डाकिए ने एक पत्र उसके हाथों में थमा दिया, जिसमें लिखा था—

"····तुम भी वहाँ अपना नया घर बसा लेना। मैं यहाँ कैप्टन शर्मा, जो कभी मेरा सहपाठी था, के साथ अपनी जीवन-यात्रा एक नये सिरे से शुरू करने के साथ ही तुम्हारे मासूम प्यार की निशानी मण्टू को अपने साथ लिये जा रही हूँ···। मैं तुम्हारे प्यार, वफादारी और ईमानदार भोली भावनाओं की हृदय से कद्र करती हूँ। तुम्हारा नया जीवन सुखमय हो, इसकी कामना करते हुए एक दोस्त की हैसियत से एक सुझाव देती हूँ कि अपनी नयी पत्नी को पैसों से ज्यादा अपना प्यार तथा सान्निध्य देना।"

इतने में हवा का एक तेज झोंका आया और उसके हाथ के पत्र को उड़ाकर उसकी दृष्टि से ओझल कहीं ले गया और वह उसे अपनी बीती हुई जिंदगी की तरह क्षितिज तक देखता रहा।

—निदेशक
अखिल भारतीय हिन्दी प्रसार प्रतिष्ठान
महेन्द्रू, पटना (बिहार)

बहू का सवाल

—बलराम

रम्मू काका काफी रात गये घर लौटे तो काकी ने जरा तेज आवाज में पूछा।

—कहाँ चलेगे रहब। तुमका घर केरि तनकव चिन्ता फिकरी नाई रहति हय। कोट की जेब से हाथ निकालते हुए रम्मू काका ने विलम्ब का कारण बताया।

—जरा ज्योतिष जी के घर लग चलेगे रहन। बहू के बारे में पूछंय का रहय!

रम्मू काका का जवाब सुनकर काकी का चेहरा खिल उठा, सूरज निकल आने पर खिल गये सूरजमुखी के फूल की मानिंद। तब आशा भरे स्वर में काकी ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

—का बताओ हइनि ?

चारपाई पर बैठते हुए रम्मू काका ने कम्पुआइन (कानपुर वाली) भाभी को भी अपने पास बुला लिया और बड़े धीरज से समझाते हुए बताया।

—शादी के बाद आठ-साल लग तुम्हारी कोखि पर शनीचर देउता क्यार असरु रह्यो, ज्योतिषी जी उतावत रहंय। हवन-पूजन कराय कय उई शनीचर देउता का शान्त करि द्याहंय। तुन्हंय तब आठ सन्तान क्यार जोगु हय। अगले मंगल का हवन-पूजन होई। ज्योतिषी जी ते हम कहि आये हन। रम्मू काका एक ही साँस में सारी बातें कह गये।

कम्पुआइन भाभी और भैया चार दिन की छुट्टी पर कानपुर से गाँव आये थे और सोमवार को उन्हें कानपुर पहुँच जाना था। रम्मू काका की बात काटते हुए कम्पुआइन भाभी ने कहा।

—हमने बड़े-बड़े डॉक्टरों से चेकअप करवाया है कि मैं कभी भी माँ नहीं बन सकूंगी।

कम्पुआइन भाभी का यह जवाब सुनकर रम्मू काका सकते में आ गये और अपेक्षाकृत तेज आवाज में बोले।

—तब फिरि ई साल बबुआ केरि दूसरी शादी करि देव। अर्वा ओखेरि उमर का हय। तीसय बत्तिस बरस क्यार तव हय।

रम्मू काका की यह बात सुनते ही भाभी को क्रोध आ गया तो उन्होंने भी बात उगल दी।

—कमी मेरी कोख में नहीं, आपके बबुआ के शरीर में है। माँ मैं तो बन सकती हूँ, पर वे बाप नहीं बन सकते और अब यह जानकर क्या आप मुझे भी दूसरी शादी की अनुमति दे सकते हैं? □

—सारिका, १०, दरियागंज नई दिल्ली–२

शीतयुद्ध

—धीरेन्द्र शर्मा

शहर के इस क्षेत्र में जब से एक महिला इन्स्पेक्टर की तैनाती हुई है तब से महिलाएँ और लड़कियाँ कुछ सुरक्षित महसूस करती हुई सी महसूस करती हैं। वह है भी तो बहुत तेज-तर्रार और हिम्मतवाली। 'शरीफ' घरों के बदतमीजी करने वाले लड़कों और पेशेवर असामाजिक तत्त्वों से निपटना वह अच्छी तरह जानती है। आम लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं।

इस परिवर्तन के बावजूद भी यहाँ देह-व्यापार की रस्म बदस्तूर उसी तरह से और उसी जोर-शोर से जारी थी। बल्कि इधर कुछ दिनों से एक नई और खूबसूरत लड़की के आ जाने के कारण मंडी में आवागमन कुछ अधिक बढ़ गया था।

आज जब वह महिला इन्स्पेक्टर गश्त पर निकली तो वह नयी लड़की बाँके की चाय की दुकान पर शायद चाय पीने के लिये खड़ी थी—पूरी सज-धज के साथ।

वह कई दिनों से इस नई देह-रूप जीवा से मिलना चाहती थी, न जाने क्यों ? आज उसे बाहर खड़ी देखकर सहज ही उसके पाँव उसकी ओर उठ गये। उसे देखकर जहाँ कुछ मनचले इधर-उधर हो गये वहीं आदतन उस लड़की ने सलाम ठोंक दिया और बड़े संकोच के साथ चाय पीने का आमंत्रण दिया।

'तुम यह सब काम क्यों करती हो ?'—बड़े सहज भाव से महिला इंस्पेक्टर ने बात शुरू की। सवाल सुनकर वह किसी सम्भावित खतरे से आशंकित हो उठी लेकिन संयत होकर बोली, "पेट के लिए साहब !" इंस्पेक्टर मुस्कुरा पड़ी और सर हिलाते हुए बोली—'तुम अपना एक अच्छा-सा घर भी तो बसा सकती थी ?' सवाल सुनकर कुछ पल के लिए वह रुकी और फिर कुछ सोचकर बोली—'आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ।'

'बोलो !'

'आप भी तो अपना घर बसा सकती थीं'—कुछ देखते हुए उसने आगे कहा—'क्या कमी है आप में ?'

'मेरी बात और है'—हृदय की गहराई में उतरकर वह बोली—'एक वक्त था जब पढ़ाई करना मेरी मजबूरी थी। एक वक्त यह है जब मेरी शादी न करना मेरे माँ-बाप की मजबूरी है।'

साश्चर्य एक सवाल हुआ—'क्यों ?'

'अब अगर मेरे माँ-बाप मेरी शादी करते हैं तो उनकी आमदनी का जरिया खत्म हो जायेगा'—कुछ ठंडे स्वर में उसने आगे कहा—'और मैंने भी उनकी इच्छाओं को मंजूर कर लिया है।'

'यही मजबूरी तो मेरी भी है बहन जी !' आत्मीयता से वह पिघल गयी—'जिससे यह नरक भोग रही हूँ···।'

'अपने दायरे का नरक तुम भी भोग रही हो और अपने दायरे का नरक मैं भी भोग रही हूँ, आश्चर्य है इस समानता पर !' भर्राये कंठ से वह आगे बोली—'यह सब उस घर के लिए है जो इस व्यवस्था का एक हिस्सा है···नौकरी तो करनी ही थी, सबसे पहले यही मिली और ज्वाइन कर लिया···अब बत्तीस दाँतों के बीच एक जबान है—हर पल खौफ पश्त···असुरक्षित···अनिश्चित···शोषित···स्थितियों से एक भयंकर शीतयुद्ध···'

दोनों की चाय पाला हो चुकी थी।

—द्वारा अंतरा

लघुकथा लेखक अब साहित्य के लल्लू-पंजू नहीं हैं। वे तो समाज को भीतर तक देखते हैं, जानते हैं, परखते हैं—एक विशेषज्ञ निर्माता की तरह और कुरूपताओं, विडम्बनाओं को चीरते, उधेड़ते हैं, एक कुशल सर्जन की तरह।

—**कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर**

समीचीन : 12

नजरिया अपना-अपना

—रमणिका गुप्ता

एकाएक रेल के चक्के चीख उठे और एक घिसटती गूंज के साथ चुप हो गये। एक धक्का लगा और ऊपर पड़ा मेरा ब्रीफ केस नीचे आ गिरा। खिड़की का शीशा उठाकर बाहर झांका। पीछे से लोग उतर-उतर कर इन्जन की ओर भाग रहे थे। मेरा नौकर भी उधर ही बढ़ा। जब लौटकर आया तो उसने कहा कि एक औरत गाड़ी के नीचे दब गयी है। दूसरा आदमी पीछे से किसी से कह रहा था, "भरी गोदी का बच्चा एकदम ठीक था। कैसे टुकुर-टुकुर ताक रहा था जैसे कुछ भी न हुआ हो।

तभी एक ओर आवाज सुनाई पड़ी। कोई कह रहा था "साली डर-डर घुस रही थी मरने के लिये। मरना कोई आसान नहीं। अन्दर घुसकर लाइन से उसे गार्ड ने निकाला है।"

एक औरत चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थी, "कुल्टा जो अपना पाप लेकर मरने गई थी अब तो मरी नहीं, जायेगी जेल की हवा खाने।"

एक दबी बूढ़ा जबान में कह रहा था, 'बेचारी मर जाती तो अच्छा था—किसी ने धोखा दिया होगा। किसी की भी बहु-बेटी पर ऐसी मुसीबत आ सकती है। किसने भूल नहीं होती जवानी में।'

तभी एक दादा-सा दिखने वाला फुसफुसाया, "अरे यार माल अच्छा था। हरामजादी हाथ से निकल गई।"

तभी गाड़ी चल दी उस अधमरी लाश को उठाकर बच्चे के साथ। मैंने देखा। गाड़ी खम्भे के पास से होकर गुजरी तो खून-ही-खून पत्थरों पर बिखरा था—खून जो मेरी रगों में भी है और उसकी रगों में भी—और जो सबकी रगों में है और उसकी रगों में भी है जिसकी वजह से वह मरने आई थी। □

—सं० आम आदमी, नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग

माँ

—प्रबोध कुमार गोविल

उसका बाप सुबह-सुबह तैयार होकर काम पर चला गया। माँ रोटी देकर ढेर सारे कपड़े लेकर नहर पर चली गयी। वह घर से बाहर निकली थी कि उसी की तरह रूखे-उलझे मैले बालों वाली उसकी सहेली अपना फटा और थोड़ा ऊँचा फ्राक बार-बार नीचे खींचती आ गई। फिर एक-एक करके बस्ती के दो-चार बच्चे और आ गये।

—चलो, घर-घर खेलें।

—पहले खाना बनाएँगे, तू जाकर लकड़ी बीन ला और तू यहाँ सफाई कर दे।

—अरे ऐसे नहीं। पहले आग तो जला।

—मैं तो इधर बैठूंगी।

—चल अपने दोनों चलकर कपड़े धोयेंगे।

—नहीं, चलो पहले सब बैठ जाओ, खाना खाओ, फिर बाहर जाना।

—मैं तो इसमें लूँगा।

—अरे ! भात तो खत्म हो गया। इतने सारे लोग आ गये...
चलो तुम लोग खाओ,—मैं बाद में खा लूंगी।

—तू 'माँ' बनी है, क्या ? □

लघुकथा में समकालीन यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ-साथ सामाजिकों को सकारात्मक सामाजिक उद्देश्यों की ओर प्रवृत्त करने की भी भरपूर क्षमता है। क्योंकि जिस प्रकार एक इकाई का जीवन एक ईकाई का ही जीवन नहीं होता। उसी प्रकार एक पल का सच केवल एक पल का ही सच नहीं होता। एक पल के सच में पूरे समाज, पूरे जीवन की अनुगूँज भी सुनी जा सकती है। एक साधारण छोटी-सी घटना महज एक घटना ही नहीं होती, जीवन की व्यापकता में काम करती हुई कई परस्पर विरोधी शक्तियों का परिणाम होती है। कथाकार इन्हीं साधारण सी घटनाओं के भीतर छिपे व्यापक आशयों या अर्थों को लघुकथा के माध्यम से उजागर करता है। □

—**निशान्तर,** हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ लघु कथायें, पृ० १०५

समीचीन : 12

विविध

कुर्बानी

—सतीशराज पुष्पकरण

दो देशों का आपसी युद्ध थम चुका था। स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहा देश पूरी तरह स्वतन्त्र हो गया था। एक बुढ़िया, जिसके पाँचों पुत्र अपने पिता सहित स्वतन्त्रता के काम आये थे, की कुटिया में वहाँ के राष्ट्रपति आये और उसके पति एवं पुत्रों को श्रद्धांजलि देने के पश्चात् बोले, "माँ ! आज से सरकार तुम्हारा सारा खर्च वहन करेगी, इसके अतिरिक्त जो आप चाहेंगी आपकी हर बात पूरी की जायेगी।

बुढ़िया दहाड़ी, 'बेटा ! मेरे पूरे परिवार की कुर्बानी को खरीदना चाहते हो, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ उन्हें बजाए सिजदा करने के उनके नाम पर थूकें और उन्हें 'बिके हुए शहीद' कहकर संबोधित करें। अभी सारे देश को और कई प्रकार की कुर्बानियों की आवश्यकता है। मुझ पर किये जाने वाले खर्चे को देश की उन्नति में लगाओ। मैं जीवन-पर्यन्त अपनी मेहनत से ही अपना पेट पालूंगी।'

उस देश का राष्ट्रपति शर्म से सिर झुकाए लौट आया।

—निदेशक, अखिल भारतीय हिन्दी प्रसार प्रतिष्ठान, महेन्द्रू, पटना

आहट

—अनिल रिसबुड 'बजरंगी'

स्टेशन आने पर मालूम हुआ कि गाड़ी पैंतालीस मिनट लेट है। मुझे आवश्यक कार्य से बाहर जाना था, अतः मैं प्लेटफार्म पर ही चहल-कदमी करने लगा। फिर मुड़कर 'बुकस्टाल' की ओर बढ़ लिया।

मैं 'बुकस्टाल' तक पहुँच भी न पाया था कि "बाबूजी ······ पांच पैसा!" का करुण स्वर सुनकर मैंने पीछे मुड़कर देखा ······ जर्जर वस्त्र पहिने एक नेत्रहीन बूढ़ी महिला, जिसके कपाल पर अनगिनत झुर्रियाँ, चेहरे से निराशा रिसती स्पष्ट दिखायी पड़ रही थी, याचना कर रही थी। मेरा भावुक हृदय तुरन्त पिघल गया। हाथ यंत्रवत जेब में गया और बाहर आया। एक दस पैसे का सिक्का उसकी हथेली पर रख दिया। फिर मैं बढ़ गया 'बुकस्टाल' की ओर।

"बाबू साहब ······ पाँच पैसा" का करुण स्वर पुनः कर्णपटल से टकराया। मैंने पीछे मुड़कर उस नेत्रहीन भिखारिन के अगले याचक को देखना चाहा—एक क्षण तो मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। वह अंधी भिखारिन मात्र 'आहट' पाकर एक भिखारी से ही भीख माँग रही थी। उसे क्या मालूम था कि वह जिस व्यक्ति से भीख की याचना कर रही है, वह खुद भी एक भिखारी है। किन्तु तब मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उस भिखारी ने बिना कुछ कहे अपनी मुट्ठी में दबे चंद पैसों में से एक पाँच पैसे का सिक्का भिखारिन की हथेली पर रख दिया।

—भूमि विकास बैंक, स्टेशन रोड, सोहागपुर-४६१७७१
(म० प्र०)

अभिव्यक्ति की सहजता, समकालीन जीवन के प्रति संबद्धता, कथा की संवेदनीयता, आधुनिक दृष्टि और अधिकाधिक युवा रचनाकारों के समर्पण-भाव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आज लघुकथा की प्रासंगिकता असंदिग्ध है। **—डॉ० रत्नलाल शर्मा**

पहला उपदेश

—कृष्ण किसलय

एक बार एक नगर में सिद्ध महात्मा पधारे हुए थे। नगर में उनके भक्तों ने एक व्याख्यानमाला का आयोजन किया था, जिसमें प्रतिदिन वे प्रवचन करते थे। उनके उपदेशमय व्याख्यान का लोगों पर यथोचित प्रभाव पड़ रहा था। उनके भक्त खूब प्रसन्न थे। व्याख्यानमाला में लोगों की भीड़ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी।

एक दिन अचानक सिद्ध महात्मा के पास उनके कुछ अति श्रद्धालु भक्त दुःखी मन पहुँचे। महात्मा ने उनके व्यथित होने का कारण पूछा। भक्तों ने कहा—महात्मन् आपके उपदेशों से सभी तरह के लोग खूब प्रभावित हो रहे हैं और उन्हें लाभ भी प्राप्त हो रहा है किन्तु व्याख्यान-मंडल से कुछ दूर बैठे एक भिखारी पर आज तक कोई प्रभाव पड़ता हुआ हमें नहीं दिखा है।

सिद्ध महात्मा मुस्कराये, उन्होंने कहा—"कल उस भिखारी को मेरे पास ले आओ। मैं उसे उपदेश दूँगा।"

दूसरे दिन भक्तों ने उस भिखारी को महात्मा के समक्ष उपस्थित किया। महात्मा ने भक्तों से कहा—"इसे भरपेट खाना खिलाओ और जाने दो।"

भक्तों ने आज्ञा का पालन किया, लेकिन उनके मन में कौतूहल हो रहा था। उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया—"महात्मन्, आज आपने भिखारी को उपदेश देने के लिए बुलाया था, किन्तु उसे आपने भरपेट खाना खिलाकर वापस क्यों भेज दिया?

सिद्ध महात्मा मुस्कराये और कहा—वत्स, कई दिनों के भूखे उस भिखारी के लिये भरपेट भोजन ही आज का पहला उपदेश था। इसके बाद उस पर अन्य उपदेशों का प्रभाव पड़ने लगेगा। □

लघुकथा के विकास के साथ ही कुछ लोगों ने लघुकथा के झंडाबरदार बनकर नये लोगों को 'ट्रेन्ड' करने की जिम्मेदारी ले ली है। मानों लघुकथा कोई फैक्ट्री में बनने वाला कच्चा माल हो। इन लघुकथा के कथित मसीहों ने इसी बहाने अपनी डेढ़ ईंट की मस्जिद अलग बनाई और एक दूसरे का राग अलाप कर खुद को प्रचारित करने का ठेका उठा लिया। इससे ईमानदार सृजनधर्मी जो अपनी पूरी ईमानदारी से लघुकथा को विकसित कर रहे थे इस दौड़ में पीछे छूट गये।

—फजल इमाम मल्लिक

समीचीन : 12

सहानुभूति

—अशोक भाटिया

रेलगाड़ी में एक आदमी भीख माँग रहा था। एक बाबू ने आस-पास देखा और जेब से अठन्नी निकालकर आगे बड़ा दी—'भाई ! चवन्नी वापस कर दो।'

लोग देखने लगे—कितना अमीर है, कितना महान् है ! चवन्नी दान दे दी।

भिखारी खूब दुआयें देते हुए आगे बढ़ गया। वहाँ एक भारी देह का सेठ उठा और जेब से रुपया निकालकर आगे बढ़ा दिया—'अठन्नी वापस कर दो।'

सब लोग उसे देखने लगे—'वाह ! कितना बड़ा आदमी है अठन्नी दान दे दी।'

भिखारी ने सारी दुआयें दे डालीं। वह थोड़ा और आगे बढ़ा। एक आदमी खाना खाने लगा था। उसने कहा—'बाबा मेरे पास रोटी है। तुम्हें भूख लगी होगी। आओ, हम मिलकर खा लेते हैं।'

भिखारी थोड़ा सहम गया। पहली बार किसी ने ऐसा कहा था। उस आदमी ने फिर कहा तो लोग सोचने लगे—साला बेवकूफ है। भिखारी को पास बिठायेगा—गंदे कपड़े, मैला सिर। दिमाग खराब हो गया है इसका।

भिखारी बड़ी मुश्किल से नजदीक आया। उस आदमी ने लाठी पकड़कर उसे अपने सामने बिठा लिया। भिखारी की आँखें भीग गयी थीं। संकोच में उसने थोड़ा-सा खाना खाया और उठने लगा।

'बस बाबा, भूख मिट गयी है ?' उस आदमी ने पूछा।

'बेटा, सच व हूँ, सारी भूख मिट गयी है। मुझे आज तक किसी ने इतना नहीं दिया, जितना तूने थोड़ी देर में दे दिया है।'

□

—१८, गोविन्द नगर, अम्बाला छावनी

संस्कार

— सतीश दूबे

उसने अपने अधो-वस्त्र निकाल दिये तथा ग्राहक से मुस्कराकर बोली।

—एक मिनट ठहरो।

और सामने की दीवार पर उपदेशी मुद्रा में विराजमान भगवान के चेहरे पर कपड़ा डाल दिया।

□

—७६६, सुदामानगर, इन्दौर

गिरवी पड़ी हुई आत्मा

—शान्ति मेहरोत्रा

"तुम चाँदी के सिक्कों के हाथ बिक गये? तुम! पथ-निर्माता! युग-प्रवर्तक!! अपनी आत्मा को गिरवी डाल दिया? तुम भूल गये कि तुम्हारी कला तुम्हारी अपनी ही नहीं, सम्पूर्ण मावनता की थाती है। आह! तुमने झुककर हमें झुका दिया। तुमने बिककर हमें बेच दिया।" मित्रों ने उलाहना देते हुए कहा।

बात तीर-सी लगी। साहित्यकार ने कहा, "तुम ठीक कहते हो।" और उसने अपनी गिरवी पड़ी हुई आत्मा को छुड़ा लिया। वह मुक्त हो गया। किन्तु उसका अभागा शरीर अपने पद की महानता को भूलकर भूख से छटपटाने लगा। साहित्य के मर्म से अनभिज्ञ मूर्ख बच्चे अपने पीले चेहरे, धंसी हुई आँखें और गिनी जाने वाली हड्डियाँ दिखा-दिखाकर कुछ माँगने लगे। असहयोगी पत्नी ने खाट पकड़ ली।

वह तिलमिला उठा। मित्रों के पास जाकर व्यथापूर्ण स्वर में स्वाभिमान के साथ बोला, "मित्रों, मेरी सहायता करो! एक दिन तुमने मेरी आत्मा को दासता से बचाया था, आज इस शरीर को नष्ट होने से बचा लो। तुम से माँगने में मुझे कुछ लाज नहीं है क्योंकि तुम मेरे अपने हो, हितैषी हो, मित्र हो, हमराही हो! यह मेरा अधिकार है।"

मित्र कुछ क्षण परेशान से चुप रहे, फिर निराशा के साथ सिर हिलाते हुए संवेदनात्मक भाव से एक-दूसरे से कहने लगे, "इस बेचारे का पतन हो गया! दूसरों के आगे हाथ फैलाता है!" □

खुदकुशी

—मुकेश रावल

नरेश जिंदगी से हार चुका था। खुदकुशी करने का निर्णय करके एक कुएँ के पास पहुँचा।

कुएँ में गिरने ही जा रहा था कि एक साँप पानी में तैरता देखा। अब वह घर लौट आया।

४, राधाकृष्ण नगर, अक्षर फार्म के पास, विद्या नगररोड़,
आनन्द–३४४००१

दहेज

—रमेश श्रीवास्तव

—अरे···तुम यहाँ !

—हाँ, भई यहीं ।

लेकिन तुम तो चौक रोड पर बैठते थे ? वहाँ पर तो तुम्हारी अच्छी-खासी कमाई हो जाती थी। भीड़ भरा चौक । धनवानों का तो वहाँ रेलमपेल रहता था ।

—भई, तुम्हारी बात सही है लेकिन यह भी तो जरूरी था । तुम जानते ही हो कि हम गरीबों की बेटियाँ बहुत जल्द जवान हो जाती हैं ।

—किन्तु मेरी समझ में नहीं आ रहा कि बेटी और भीख माँगने की जगह से तुम्हारा क्या मतलब है ? यहाँ पर तो दिन भर में तुम्हें कुछ भी नहीं मिल सकेगा।

—क्या करता ? बेटी की शादी करनी ही थी। दहेज के बिना शादी असम्भव ही बन गयी है। दहेज के रूप में उसे चौक वाली जगह ही दे दी। □

—नई गोदाम, गया (बिहार)

इज्जत

—सुरेन्द्र कुमार भक्त

माँ ने बच्ची को एक विदेशी के सामने हाथ फैलाते देखा। विदेशी ने बच्ची के हाथ में एक रुपया थमा दिया, बच्ची खुश थी।

विदेशी के हटते ही माँ ने बच्ची के गालों पर जोर से तमाचा मारा। बच्ची गिर गयी। रुपया दूर जा गिरा। माँ उसकी ओर बढ़ी, 'हम गरीब हैं, घर में माँगकर खायेंगे किन्तु तू विदेशियों के सामने हाथ फैलाकर घर की इज्जत बेचती है···? □

जूते की जात

—विक्रम सोनी

उस दिन धर्म पर कुण्डली मारकर बैठे पण्डित सियाराम मिसिर की गर्दन न जाने कैसे, अचानक ऐंठ गयी और उन्हें महसूस हुआ कि उनकी गर्दन में 'हूल' पैदा हो गया है। पार साल लखमी ठाकुर के भी ऐसा ही हूल पीठ पर उठा था। अगर रमोली चमार उसके हूल पर जूता न छुवाता तो···कैसा तड़प रहा था। यह सोचकर उसके सारे बदन में झुरझुरी रेंग गई। तो क्या उन्हें भी रमोली चमार से अपनी गर्दन पर जूता छुवाना होगा ? हूँ ! वह खुद से बोले, 'उस चमार की यह मजाल !' तभी उनकी गर्दन में असहनीय झटका-सा लगा और वे कराह उठे।

'अरे क्या है—बस, जूता ही तो छुवाना है। उसके बाद तो गंगा-जल से स्नान कर लेंगे। जब शरीर ही नहीं रहेगा, तो काहे का धर्म और काहे का पुण्य ?' मन ही मन अपनी तर्कगत बातों को समेटते हुए उठते ही जा रहे थे कि रमोली दिख गया। रमोली को देखते ही मिसिर जी ने उसे करीब बुलाकर कहा, 'अरे रमोलिया ! ले तो हमार गर्दन में एक-दो जूता तो छुआ दे। हूल भर गइलवा।'

'ग्यारह रोपया लूंगा मिसिर महाराज।'

'का कहले रे, फेर के बोल···हरांमखोर, तोरा बापो कमाइल रहल ग्यारह रोपल्ला ?'

'मिसिरजी, इस जूते को कोई खरीदेगा नहीं और मैं झूठ बोलकर बेचूंगा नहीं।'

'खैर, चल लगा जूता, आज तोर दिन हव ! देख, तनिक धीरे से छुवाना समझे !'

जब रमोली जूता लेकर टोंटका दूर करने उठा, तो उसकी आंखों के आगे सृष्टि निर्माण से लेकर इस पल तक निरन्तर सहे गये जुल्मों-सितम तथा अपमान का एक-एक दृश्य साकार हो उठा।

उसने पूरी ताकत से, मिसिर जी की गर्दन पर जूता जड़ दिया। मिसिर जी के मुख पर एक घबराहट उभर आई और वे डकराकर दीवार से टिक गए। वह डकराहट ठीक वैसी ही थी, जैसी उसके पिता के मुख से तब निकली थी, जब मिसिर जी के गुण्डे चोरी का झूठा इल्जाम लगाकर उन्हें पीट रहे थे। क्या वह अपने पिता की दुहाई मांगते मुँह की डकराहट कभी भूल सकता है ?

'देख मिसिर देख, तोरा हूल हमरे जुतवा में समा गइल रे।' और मिसिर के मुड़े-मुड़ाए सिर पर लाठियों के समान जूते पड़ने लगे। पास-पड़ौस के लोग हैरान-परेशान थे, किन्तु विचित्र उत्साह से सब इस दृश्य को देख रहे थे। □

—सं०, लघु आघात, आई-१६६, रविशंकर शुक्ल नगर, इन्दौर–४५२००८.

समीचीन : 12

नजर अपनी-अपनी

—रतीलाल शाहीन

सोहन बुखार में तपता ही रहा। शाम भी हो गयी।

कामिनी देवी ने सोहन के माथे को छुआ। देखा, बुखार से माथा तप रहा है। वे रसोईघर में दौड़ पड़ी।

लौटी तो उनकी मुठ्ठी में नमक था। कुछ बुदबुदाते हुए उन्होंने नमकभरी मुठ्ठी सोहन के चारों ओर घुमानी शुरू की। इतने में सुनन्दा आ गयी ......, "अम्मा ! आप यह क्या कर रही हैं ?", दफ्तर से लौटी सुनन्दा ने बैग वगैरह टेबल पर रखते हुए पूछा।

"देख सुनि ! बुखार उतर ही नहीं रहा है। सुबह से तीन बार नजर उतार चुकी।"

सुनन्दा ने अपनी अम्मा का हाथ रोक लिया, "अम्मा ! यह नमक मुझे दो। नजर और बुखार ...... दोनों मैं उतारूंगी।"

और सुनन्दा ने उस मुठ्ठी भर नमक को एक गिलास पानी में मिलाया। उसमें अपनी रूमाल भिगोयी। गारा, और फिर दस मिनट तक अपने सात वर्षीय छोटे भाई सोहन के माथे पर रूमाल-पट्टी रखती रही। भिगोती, गारती और माथे पर रखती ...... कुछ ही देर में बुखार सिर पर पैर रखकर भाग चला।

अंधविश्वासी माँ समझ नहीं पाई कि नमक तो वही था, नजर कहाँ गयी। दिन में तीन बार तो वह खुद अपने हाथों सोहन की नजर उतार चुकी थीं लेकिन बुखार तो तब भी नहीं उतरा था।

३७, नवपाढ़ा, बांदरा पूर्व बम्बई—४०००५१

रोटी

—शंकर पुणतांबेकर

भगवान ने हमसे कहा, हमारा यह मंदिर खोद डालो। यह मंदिर नहीं साक्षात भ्रष्टाचार खड़ा हुआ है।

हमने कहा, 'हमारे पास तो सिर्फ कलम है। इससे जल्दी नहीं खोद पायेंगे। जिनके पास सही हथियार है, आप उनसे क्यों नहीं कहते ?'

इस पर हमने कहा, 'आप उन्हें रोटी देकर ताकत क्यों नहीं देते ?'

भगवान बोले, 'मैं उन्हें रोटी तो दे दूँ, पर वह उनके अधिकार की नहीं, भीख की चीज होगी। भीख की रोटी काहिल बना देती है... और काहिल लोग जड़ नहीं खोद सकते ......।'

१६३, मिल्हा पेठ, जलगाँव

संतोषी माता का भोग

—मातादीन खखार

चाल के अन्दर एक कमरा संतोषी माता का मन्दिर बन गया है। संस्थापकों की बन आयी है। चढ़ावे चढ़ रहे हैं। सुबह-शाम फिल्मी धुन पर भजन-कीर्तन-आरती हो रही है। बाद में भक्त-भक्तिन अपने-अपने घर और संस्थापक अपने-अपने कामों में चले जाते हैं।

मन्दिर की देख-रेख के लिए रह जाता है अकेला वेतनभोगी युवक नारायण दास। दान-दक्षिणा चढ़ावे के नाम पर उसे कुछ ऊपरी आमदनी भी हो जाती है। दोनों समय का भोजन भी मुफ्त में ही मिल जाता है।

कालनियों में रहने वाले कुछ भक्त-भक्तिनों से उसका दोपहर और रात का भोजन बँधा हुआ है। दोनों समय का फेरा लगाकर वह भोग के नाम पर पर्याप्त मात्रा में विविध व्यंजन व फल प्राप्त कर लेता है। वह छक कर खाता है। जो बचता है, पशु-पक्षियों को खिला देता है या नाली में बहा देता है।

पहले वह आया था तो छरहरा सुदर्शन युवक था। अब धर्म की रोटियाँ खा-खाकर भैंसा जैसे बेडौल हो गया है। सफेद गांधी टोपी, कमीज और पैजामे में, तथा ललाट पर अष्टगंध का तिलक लगाये, जब वह मचक-मचक कर चलता है, सर्कस के जोकर की याद दिला देता है।

शरीर की चरबी बढ़ने के साथ-साथ दिमाग की पुरजी भी कुलबुलाई वह आध्यात्मिक रूप से सोचने लगा कि बचे हुए जूठन भोग का उपयोग ठीक से नहीं हो रहा है। भोग पशु-पक्षी खाएँ या नाली में बहे, यह भी कोई बात हुई? अरे कोई मानव रूपी प्राणी खाये, पुण्य भी मिले। वह पुण्य कमाने की योजना पर विचार करने लगा। काफी मनन-चिंतन के बाद उसकी समस्या का समाधान हो गया।

आये दिन उसकी नजर भीख माँगने वाली उन लड़कियों पर पड़ती जो सुबह और रात को घर-घर जाकर जूठन माँगा करती थी।

जूठन के नाम पर बचा हुआ भोग नारायणदास के पास रहता ही था। एक दिन वह एक गदराई अंग वाली लड़की को इशारे से बुलाया और उसे एकांत में कुछ फुसफुसाते हुए समझाया—'ऐ पोरी, तू आगे से ऐसा करना, ठीक समय पर आकर मेरे से भोग ले जाया करना और रात होने पर पीछे के दरवाजे से अकेली आ जाया करना। उस समय तेरे लिए पकवान, मिष्ठान्न और फल रखूँगा। कोई देख भी ले तो कह देना, संतोषी माता का भोग ले रही थी।

और नारायण दास की पुण्य कमाने की योजना फलने फूलने लगी।

—खखार हाउस, कोशेर नगर, अंधेरी पूर्व, बम्बई

संकल्प प्रकाशन

हमारे यहाँ से प्रकाशित प्रचारित हिन्दी पुस्तकें :

१. जलता हुआ सफर (गजल)	: डॉ० हनुमंत नायडू	२५ रु०
२. गूंगेपन के खिलाफ (काव्य)	: डॉ० अरुणा दुबलिश	२५ रु०
३. कथा शिल्पी देवेश ठाकुर (समीक्षा)	: प्रा० सतीश पांडेय	४० रु०
४. देवेश ठाकुर : प्रश्नों के घेरे में	: डॉ० भानुदेव शुक्ल	३५ रु०
५. साहित्य की सामाजिक भूमिका	: डॉ० देवेश ठाकुर	४० रु०
६. रचना प्रक्रिया और रचनाकार	: (सं) डॉ० देवेश ठाकुर	४० रु०
७. नाटककार और नाट्य समीक्षा	: (सं) डॉ० त्रिभुवन राय	४५ रु०
८. लेखक का समाजशास्त्र	: डॉ० वी० डी० गुप्ता	४४ रु०
९. साहित्य का समाज शास्त्र : अवधारणा, सिद्धान्त और पद्धति	: डॉ० वी० डी० गुप्ता	५० रु०
१०. भारतीय उपन्यास साहित्य की भूमिका	: डॉ० वी० डी० गुप्ता	६५ रु०
११. गुरुकुल (उपन्यास)	: देवेश ठाकुर	४० रु०
१२. साहित्य : समाजशास्त्रीय सन्दर्भ	: डॉ० वी० डी० गुप्ता	८५ रु०
१३. देवेश ठाकुर : व्यक्ति, समीक्षक और कथाकार	: (सं०) डॉ० नन्दलाल यादव	४५ रु०

ए–३४, बिल्वकुंज हाउसिंग सोसाइटी, लाल बहादुर शास्त्री मार्ग
मुलुंड (प०), बम्बई–४०० ०८२

With Best Compliments From :

Reshamwala H. R. A.

JUPITER TRADING CORP.

[Authorised Stockists of Gedore and Master Tools, Freeman's measuriug tapes]

38/42, KOLSO STREET, BOMBAY-400 003

Phone : Office : 323968
Res. : 894066

With Best Compliments From :

A WELL WISHER

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

G. R. Bhatt

NAV NATRAJ CO-OP. HOUSING SOCIETY LTD.

II, Hasanabad Lane,
Santacruz (West),
Bombay-400 054

CENTRAL EXCISE, CUSTOMS AND
GOLD MATTERS CONSULTANTS
Phone : 6490294

GMN

With best compliments from :

M/s VIKRAMRAJ ENGINEERS PVT. LTD.

1, Chandrodaya, Bhaweshar Marg,
Ghatkopar (East), Bombay.
Phone : 5130361

GMN

With best wishes from :

A WELL WISHER

SM

STRENGHTHEN COUNTRY'S RURAL ECONOMY
Save Country's Foreign Exchange for Import of Edible Oils
HOW ? A NOBLE WAY ?

CONSUME

—Pure
—Natural Flavoured
—Highly Nutritional
GHANI OIL
—Mustard
—Til
—Groundnut
—Coconut
—Sufflower (Kardi)

ESTABLISH

Power Ghani Units as a
—Individual Enterpreneur
—Co-Operative Society.
—Registered Institution
—(Regd. Under Society's Registration Act. 1860)

AVAIL—KVIC'S
—Financial Assistance as Capital Expenditure & Working Capital Loan on Marginal 4% Interest
—Techanical Assistance
—Training Facilities
—Scheme of Supply of Machinery and Raw Material.

For Details Contact :

KHADI & VILLAGE INDUSTRIES COMMISSION

3, IRLA ROAD, VILEPARLE (West), BOMBAY-400 056
Phone : 6364323—5 & 6363526—9.
TELEX : 1171123 GRAM : KHADIGRAM

RPY

With best Wishes from :

Balak Traders & Balak Rubber

H. O. 20/317, Dr. A. R. Menon Road, Trichur-680 001

Branches :

Bombay

22, Buena Vista,
G. J., Bhosale Marg,
Bombay-400 021
Phone : 5600831

Delhi

62, Ashoka Market,
Old Subji Mandi,
Delhi-110 007
Phone : 292 5521

Dealers in all kind of Natural Rubber and Allied chemicals.

Mukesh S.

With best Compliments from :

S. V. Industries

6, Kembros Industrial Premises,
Behind Blow Plast Ltd.,
Off. L.B.S. Marg, Bhandup,
Bombay–400 078

We undertake Machining jobe on heavy Lathes and
Production jobe on capstan Lathes.

SS

With Best Compliments From :

Sohal Engineering Works

31-1708A-67, L.B.S. Marg, Bhandup,
BOMBAY-400 078

SS

With Best Wishes From :

Maharashtra Gas Co.

91, Kamathipura, 3rd Lane,
Bombay-400 008

Dealers in Industrial Gases Viz. Oxygen, Acetylene,
Nitrogen & Hydrogen Etc. Gases.

Phone : 392157

GMN

With best compliments from :

INDOKEM LIMITED

(Foremost Name in Dyes, Chemicals & Auxiliaries)

7-C, Bhagoji Keer Marg,
Udyog Mandir Compound,
Mahim, BOMBAY-400 016

Tel. : 452029/456299 Grams : INDOKEM

Telex : 11-71348-IKEM IN

TC

With Best Wishes From :

SVAN MECHANICAL INDUSTRIES

Manufacture of Rubber Processing Machinery

11, ANJU BUILDING, MALBAAR HILL ROAD,
MULUND (West), BOMBAY-400 082

TC

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

ADITI ALLOYS

Manufacturers of Graded C. I. Casting Jobs

1, Anand, Off. L. B. S. Marg.
Mulund (West), Bombay-400080
Telephone : 5610484

SS

WITH BEST WISHES FROM :

INDIRA ENGINEERING WORKS

(Famous for Precision Machining)

Plot No. C-8/4, Pasora Mills Compound,
Road No. 12, Wagle Industrial Estate,
THANE-400 604

SS

With Best Compliments From:

V. R. ELECTRICALS

Electrical Engineers and PWD, IAAI
Registered Contractors

V. R. BODHE

41/205, Kanchanganga No 1,
Swami Samartha Nagar,
Off. Four Bunglows, Andheri (West),
BOMBAY-400 058
Phone : 6264443

SM

WITH BEST WISHES FROM :

NATIONAL ENGINEERS & FABRICATORS

Mechanical Engineers & Fabricators

Works :
Road No. 27,
Gala No. 3,
Near V. K. Industries,
Wagle Iudustrial Estate, THANE.
Phone : (O) : 5615887

Regd. Office :
D-85, Gurunanak Nagar,
THANE (East)-400 603

SS

With best Wishes from :

SAPSON MACHINE TOOLS

Dealers In :

All Types of Workshop, Sheet Metal & Wood Working Machineries.

Bhatia Compound No. 1, Makhmali Talao, Shastri Marg, THANE-400 601

Phone : Office : 508277
Qesi. : 5612371

SS

With best wishes from :

SHETTY AUTO CENTRE

MANI BHAVAN, Shop No. 5, Plot No. 408,
A/2, SION-TROMBAY ROAD,
NEAR DIAMOND GARDEN,
CHEMBUR, BOMBAY-400 071

GMN

With best Compliments from :

JAINEX LIMITED

Broach Sadan, Ground Floor.
(Broach Street), Devji Ratansi Marg,
BOMBAY-400 009
Phone : 333888/344245/337229

All Types of Cold Rolled Mild Steels Medium and High Carbon Steel Strips (Manufactured by Tube Investments of India Ltd.) Hardened and Tempered Strips (Manufactured by Anil Steel & Industries Ltd.) Welding Electrodes & Equipments (Manufactured by Philips) Spring Steel Wires

RA

With best Wishes from :

KALPANA METALS

KM

Manufacturers and Dealers of :
STAINLESS STEEL UTENSILS

Specialised In :
LOTA, JUG, DUDH KUNDI, GLASS AND DEKCHI.

MPS

With Best Compliments From :

BABULAL M. JAIN

Room No. 12, Handre Building,
Mangalwadi, Girgaon Road,
BOMBAY-400 004

HPS

With best compliments from :

— **M/s JITENDRA ELECTRONICS**
Shop No. 4, Sector-7, Vashi,
NEW BOMBAY.

— **M/s SUPER ELECTRONICS**

— **M/s SHREE SAINATH ENTERPRISES**
(Builders & Developers)

VASHI, NEW BOMBAY

Proprietor : **JITENDRA B. SINGH**
Phone : 671582/671581/681864

KD

With Best Compliments From :

Mr. BHARUCHA

BOMBAY.

NKM

With Best Wishes From :

PENGUIN CONTRACTING COMPANY

TATA MANSION, 2ND FLOOR,
ALTAMOUNT ROAD,
BOMBAY-400 026

DP

With best compliments from :

MEENA PRINTERS

**ISLAM BUILDING, 3RD FLOOR,
46, VEER NARIMAN ROAD,
BOMBAY-400 023**

Telephone No. : 2047223

DP

With best wishes from :

M/s Ganesh Electric Works

Manufacture and Servicing of Transformers, Rectifiers, Battery Chargers, Stabilisers, Voltage Regulators, Moiors end Other Electrical and Electronic Equipments.

**Plot No. 5, Room No. 189, Naga Baba Nagar,
R. C. Marg, Vashi Naka, Chembur,
BOMBAY-400 074**

DP

WITH BEST WISHES FROM :

B. MEHTALIA AND ASSOCIATES

Architects, Consulting Engineers, Interior Designers,
Registered Valuers, Environmental Engineering,
Air Pollution Control, Water Treatment,
Hazardous Waste Management,
Energy Audit.

807, Imperial Mahal, 3rd Floor, Khodadad Circle,
BOMBAY-400 014

Telephone : 4129717/4129081/4123848
Telex : 011-76044 ESKM-IN

SM

WITH BEST WISHES FROM :

YOUNG WELL WISHERS

SM

With Best Wishes From :

DARABSHAW C. CURSETJEE'S SONS (BOMBAY) PVT. LTD.

Darabshaw House, Ballard Road, BOMBAY-400 038

STEAMSHIP AGENTS—MASTER STEVEDORES—DUBASHES—
LIGHTERAGE CONTRACTORS

GRAMS : 'DEADWIGHT' TELEX : 75024DBCB
PHONE : 260021 (4 LINES) (DOCK OFFICE : 262230)

Also Associates at Culcutta, Visakhupatnam, Kakinada, Mangalore, Bhavnagar, Bedi-Port, Navalakhi, Veraval, Porbunder & Kandala.

Also Sole Govt. Landing Contractors at Jamnagar (Bedi), Bhavnagar

RKS

With best wishes from :

B. M. SHAH

SALES EXECUTIVE
PROGRESSIVE ENGINEERING CORPORATION,
PRECISION HOLDING & C N C TOOLINGS

43, Dhanji Street, BOMBAY-400 003.

PHONE : Sales Office : 349070
Admin. Office : 349809

Raj K.S.

With best Wishes from :

PYARELAL & COMPANY

Manufacturer and Suppliers of All Types of High and Low Pressure Hydraulic, Steam, Oil Resistance, Chemical, Rockdrill, Water and Air, Rubber & PVC Hoses.

Specialist in : All Types of Aeroequip Types of Connectors & Disconnectors, J.I.C Fittings, Camlock Coupling, Hammer & Weco Unions & Compression Fittings.

85/2A, Disilva Niketan Premier Road.
Kurla (West), BOMBAY-400 070.

Phone : Office : 5115391/5113084
Resi. : 5131670

SS

With best compliments from :

Gujrat Spinners Ltd.

145, Maker Chamber III, Nariman Point,
BOMBAY-400 021

PHONE : OFFICE : 231981/230661
RESI. : 359356/360305/387732

CABLE : CHEMFLAKER
TELEX : 011-3905 GSL IN

RPD

With Best Compliments From :

REMI GROUP

52, Mittal Court 'A',
Nariman Point, Bombay-400 021
Telephone : 224127-37-47
Telex : 011-3676 Remi-in

VS

With Best Compliments From :

King Construction Co.

Builder's & Contractors
All Kind of Civil Works, Water Proofing,
Painting & Fabrication.

Proprietor—**M. H. SHAIKH**

Ram Rahim Udyog Nagar, Sonapur,
Bhandup, Bombay-400 078

MPT

एक

बाहर गेट पर उसने चपरासी से पता पूछा और आगे बढ़कर लिफ्ट के सामने खड़ा हो गया। लिफ्ट पर गत्ते की एक तख्ती लटकी थी—'लिफ्ट नाट वर्किंग'।

लिफ्ट के बराबर से ही सीढ़ियाँ ऊपर जाती थीं। उसने बैग कंधे पर डाला और धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

ऊपरी मंजिल पर आकर वह रुक गया। दांयी ओर के दरवाजे पर एक नेम-प्लेट लगी थी—डा० ओछेलाल 'आलोक', पीएच. डी.। वह क्षण-भर के लिए दरवाजे के सामने खड़ा रहा और फिर उसने धीरे से सामने लगा बटन दबा दिया। भीतर घण्टी घनघना उठी।

उसे ज्यादा इन्तजार नहीं करना पड़ा। एक मोटे से लड़के ने दरवाजा खोला। उसे देखकर वह बोला—जी।

—डाक्टर साब हैं? उसने धीरे से पूछा।

—आप कौन? लड़के ने चश्मा ठीक करते हुए जानना चाहा।

—मेरा नाम थापा है विश्वेश्वर थापा। नेपाल से आया हूँ।

—आप जरा रुकिए। लड़का किवाड़ भेड़ कर भीतर चला गया। थोड़ी ही देर बाद वह लौटा और थापा को ड्राइंग रूम में ले गया।

—बैठिए। पिताजी अभी आते हैं।

वह थोड़ा सकुचाते हुए सोफे के एक कोने पर बैठ गया।

लड़का उसके लिए पानी का एक गिलास रख गया।

वह इधर-उधर देख कर कमरे का जायजा लेने लगा।

सामने बैंक आफ इण्डिया का कलैंडर टंगा था। कलैंडर में भेड़ें चर रही थीं। लाल पगड़ी पहने दो ग्वाले फोटो खिंचाने की मुद्रा में खड़े थे। भेड़ों के शरीर पर भरपूर ऊन थी। सबसे ऊपर बैंक का सितारा चमक रहा था। नीचे दो महीनों के दिन-तिथियाँ लिखी हुई थीं।

दरवाजे की तरफ एक कोने में फ्रिज रखा था। फ्रिज पर कुछ किताबें थीं। उसी के ठीक सामने दीवार से लगी एक आलमारी थी। आलमारी में काठ और मिट्टी के खूब सारे खिलौने थे। बीच में एक बुद्ध की प्रतिमा थी और कुछ स्टेनलेस स्टील के चम्मच थे।

सोफे का कवर बदरंग हो चुका था। सैंटर टेबल पर नीचे के खाने में अंग्रेजी की पुरानी पत्रिकाएँ पड़ी थीं। ऊपर पिछले हफ्ते का 'धर्मयुग' और एक पुरानी डायरी रखी थी।

उसे गर्मी लग रही थी। उसने सीलिंग फैन चलाना चाहा लेकिन उसे स्विच-बोर्ड ही नहीं दिखलाई पड़ रहा था।

वह उसी तरह बैठा-बैठा पानी की घूंट भरता रहा।

तभी डॉ० ओछेलाल बैठक में दाखिल हुए। लगा, वे अभी-अभी नहा कर निपटे हैं।

उन्हें देखकर थापा प्रणाम करने के लिए खड़ा हो गया।

—बैठो, बैठो ! उन्होंने सामने की कुर्सी पर बैठते हुए कहा—कब पहुँचे।

—जी, दो-तीन दिन हो गए।

—डॉ० चिंतामणि ने हमें तुम्हारे बारे में लिखा था। कैसे हैं वे ?

—जी ठीक हैं।

—नेपाल में जब डिपार्टमेंट शुरू हुआ था, सरकार चाहती थी, हम वहाँ ज्वाइन कर लें। लेकिन यहाँ इतने साल रहने के बाद और किसी जगह रहा नहीं जा सकता। यहाँ की बात ही दूसरी है···। दो-तीन साल वहाँ यूनिवर्सिटी ने हमारी 'वेट' की, बाद में हमने साफ-साफ कह दिया कि भई हम तो आ नहीं सकते, हाँ एक अच्छा कैंडीडेट आपको दे सकते हैं और हमने चिंतामणि को वहाँ भिजवा दिया। हम दोनों बनारस में साथ-साथ पढ़ते थे···।

थापा चुपचाप उनकी तरफ देखता रहा।

—एम. ए. क्लासेस तो वहाँ खुल गयीं न।

—जी हाँ ! हिन्दी के पहले बैंच में हम छह विद्यार्थी थे। सभी पास हो गए।

—और कौन-कौन हैं डिपार्टमेंट में···चंडी भी है न ?

—जी हैं, डॉ० कालिका प्रसाद हैं, चंडी सक्सेना हैं और पिछले साल कोई एक और प्रोफेसर आए हैं·········चतुर्वेदी या शर्मा हैं शायद······। हमें नहीं पढ़ाते थे।

—चंडी तो अपना विद्यार्थी है। पहले बहुत शरारती था। लेकिन तेज है। हमने उसे समझाया, ये सब, जो तुम करते हो, ज्यादा नहीं चलता। कुछ पढ़ो-लिखो···नहीं तो यहाँ सेकेण्ड्री में ही पड़े रहोगे। बात मान गया हमारी··हमने लिखा चिंतामणि को कि इसे एक चांस दे दो···अब भला चिंतामणि हमारी बात क्या टालते।

फिर कुछ रुक कर डॉ० ओछेलाल ने भीतर आवाज लगाई—अरे भाई कालिन्दी, दो कप चाय तो भिजवा दो···। फिर रुक कर बोले—हाँ, तो बोलो

थापा, हम तुम्हारे लिए क्या कर सकते हैं……।

—सर, सारी बात तो आपको मालूम है ही। डा० चिंतामणि जी ने आपको लिखा है कि मैं आपके निर्देशन में पीएच. डी. करना चाहता हूँ। वहाँ अभी शोध की काई व्यवस्था नहीं है। डा० चिंतामणि ने ही मुझे सुझाया था कि बम्बई चले आओ। वहाँ आप हैं। कोई मुश्किल नहीं होगी।

—शोध के बाद आगे क्या करने का इरादा है।

—अभी क्या बतलाऊँ सर !

—देखो, रजिस्ट्रेशन तो हम कर देंगे। लेकिन शोध, शोध होता है। तुम्हें मेहनत बहुत करनी होगी।

—वह तो मैं करूँगा सर।

—तुम्हारे फादर क्या करते हैं ?

—वे हांगकांग में हैं। कपड़े ओर लैदर वर्क्स का बिजनेस है उनका। मेरे अंकल भी वहीं हैं।

—नेपाल में कौन है ?

—मेरी माँ है, आँटी है, दो छोटे अंकल हैं। भाई-बहिन, कजिन्स सभी वहीं रहते हैं।

—……हूँ।……ओछेलाल सोचने की मुद्रा में आ गये।

श्रीमती ओछेलाल चाय की ट्रे लेकर आ गयी थीं।

थापा ने हाथ जोड़ दिये। धीरे से मुस्करा कर उन्होंने सर हिला दिया। ट्रे रखकर वे डा० ओछेलाल के बराबर में बैठ गयीं।

—ये विश्वेश्वर थापा हैं। नेपाल के हैं। यहाँ हिन्दी में रिसर्च करने आए हैं। फिर कालिंदी की ओर इशारा करके बोले—मिसेज हैं, यहाँ क्रिश्चियन कालेज में प्रोफेसर हैं।

थापा ने श्रीमती ओछेलाल की ओर देखा। श्रीमती लाल ने फिर सिर हिला दिया। उनके होठों पर मुस्कराहट कुछ और फैल गयी। थापा उनकी ओर देखे जा रहा था। वह सोच रहा था, थोड़ी सी मुस्कराहट भी बदसूरत चेहरे को कितना सुन्दर बना देती है।

—लो चाय पियो ! डा० ओछे बोले।

—जी। थापा ने धीरे से चाय की प्याली अपनी ओर सरका ली।

—आप नेपाल में कहाँ रहते हैं। श्रीमती ओछेलाल ने पूछा।

—जी, काठमांडू में……!!

—काठमांडू तो बढ़िया शहर होगा ?

—बहुत बढ़िया है। आप कभी वहाँ आइये न……।

—आएँगे, आएँगे…… । बात यह है थापा, अकेला डिपार्टमेंट हम चला

रहे हैं । कोई काम का कैंडीडेट ही नहीं मिलता जिसकी नियुक्ति करा दें । इसलिए बड़े बिजी रहते हैं । देश में इतनी यूनिवर्सिटियाँ हैं । कभी कहीं से 'सेमिनार' का बुलावा आ जाता है । कोई 'वाइवा' के लिए बुला भेजता है । कहीं मिटिंग अटैंड करने के लिए जाना पड़ता है । कहीं लेक्चर सिरीज देनी पड़ती है । अभी देखो, झुमरुतलैया में हफ्ते भर रहना पड़ा । परसों ही लौटा हूँ····इसी सब में इतना थक जाते हैं कि उसके बाद··· ।

—आप रिसर्च यहीं रह कर करेंगे न । श्रीमती ओछेलाल ने पूछा ।

—जी हाँ । मुझे सरकार ने इसके लिए स्कालरशिप दी है । यूनिवर्सिटी हास्टल में सीट भी मिल जायेगी···। वैसे यहाँ रहने में कोई अड़चन है नहीं । फिर साल-छह महीने में हफ्ते-दो-हफ्ते के लिए घर जा ही सकता हूँ ।

—सो तो है···· ।

डा० ओछेलाल को कालिंदी का बीच में बोल पड़ना अच्छा नहीं लगा था । उनके माथे पर बल पड़ गये थे । लगता था, उनका मूड़ उखड़ रहा है ।

वे बोले—अच्छा थापा, कल डिपार्टमेंट में जाओ । वहीं तुम्हारा विषय डिस्कस करेंगे ···· ।

थापा ने धीरे से अपना बैग उठाया और उसमें से एक प्लास्टिक का थैला निकाल कर मेज पर रख दिया—यह आपके लिए है सर ।

—अरे क्या है इसमें ? ओछेलाल का मूड ठीक होने लगा था ।

थापा कुछ बोला नहीं । थैला उठाकर ओछेलाल को पकड़ा दिया ।

डा० ओछेलाल ने खेल कर देखा—बहुत कीमती सफारी पीस था ।

—अरे भाई, इसकी क्या जरूरत थी ? उन्होंने उसे वापस थैले में डालकर मेज पर रख दिया ।

—अच्छा सर, मैं चलूँ । थापा खड़ा हो गया ।

—जाओगे ? खाना खा लिया है या नहीं । वैसे खाने का टाईम हो गया है ।

—थैंक्स सर । मैं हैवी ब्रेकफास्ट करके चला था । अभी भूख नहीं है ।

थोड़ी देर तक खामोशी रही ।

फिर थापा आलोक दम्पत्ति को अभिवादन करके बाहर निकलने लगा । डा० ओछेलाल पास आते हुए बोले—कल ग्यारह बजे तक डिपार्टमेंट में आ जाना····हम सब करा देंगे । डोन्ट वरी···· ।

थापा ने फिर हाथ जोड़ दिए और मुड़कर सीढ़ियाँ उतरने लगा ।

●●

दो

बाहर से लौटकर डॉ० ओछेलाल ने अपनी पैंट उतारी ही थी कि फोन की घंटी घनघना उठी। उन्होंने जल्दी से पायाजमा पहना और चोगा उठा कर हमेशा की तरह बहुत मीठी आवाज में कहा—हलो।

—कौन ? आलोक जी हैं न !

—जी, कौन ? तिवारी जी ? ओछेलाल ने आवाज पहचान ली थी।

—जी मैं ही हूँ। आज का अखबार देखा आपने ?

—हाँ, देखा तो था। क्यों क्या बात है ?

—डॉक्टर साहब, डिपार्टमैंट में प्रौफेसर की वैकेंसी निकल गयी है। देखा नहीं आपने ? टाइम्स के पेज सात पर है !

—अरे, मुझसे कैसे मिस हो गयी ? मैं तो तीन दिन से रोज अखबार देख रहा हूँ। ऑफिस वालों ने बतलाया था, विज्ञापन दे दिया है। एक-दो दिन में आ जायेगा।

—मेरी अग्रिम बधाई लें।

—धन्यवाद, तिवारी जी······शाम को क्या कर रहे हैं ?

—मेरा कोई खास प्रोग्राम नहीं है। बस जरा उगाही के लिए निकलना था। चक्कियाँ क्या लगायीं, जान की आफत मोल ले ली। जब तक तीन-तीन, चार-चार चक्कर न लगाओ, कोई साला हफ्ता देने का नाम ही नहीं लेता। वैसे आप आदेश दें—यह काम तो कल भी हो जायेगा।

—ज्यादा मुश्किल न हो तो खाने के बाद आ जाएँ।

—जरूर आ जाऊँगा।

—मैं प्रतीक्षा करूँगा आपकी······।

—जी······।

ओछेलाल ने फोन नीचे रख दिया। उनके सारे शरीर में हलचल पैदा हो गयी। उन्हें महसूस हुआ कि उन्हें जल्दी ही टॉयलट जाना चाहिए······उनका दिल जोर से धड़कने लगा था। श्रीमती ओछेलाल को चाय बनाने के लिए कह कर वे बाथरूम में घुस गए।

फ्रैश होने के बाद भी उनकी धड़कन अभी तक तेज ही थी। वे सीधे अपनी

स्टडी में गए। गाव-तकिए पर पसर कर उन्होंने सुबह का अखबार उठा लिया और सातवाँ पन्ना खोल कर विज्ञापन पढ़ने लगे। विज्ञापन को पढ़ते हुए उनकी नब्ज जोरों से चलने लगी थी। पास रखी चाय की प्याली को उन्होंने एक ओर सरका दिया और बार-बार विज्ञापन के अक्षरों को देखते-पढ़ते रहे।

कब से वे इस विज्ञापन की प्रतीक्षा करते रहे हैं, वे सोचने लगे। बुरा हो डॉ० शैलेन्द्र का, उन्हें पिछली बार बुरी तरह रिजेक्ट कर दिया। इसलिए पिछले बीस सालों से रीडरी पर रगड़ रहे हैं। लेकिन डॉ० शैलेन्द्र ने भी क्या उखाड़ लिया। रीडर ही सही, हैं तो तो विभाग के अध्यक्ष, उन्होंने सोचा। पूरा देश उन्हें अध्यक्ष के रूप में ही तो जानता है। रीडर की बात तो कुछ थोड़े से लोगों को मालूम है और वह भी इस शीतांशु के बच्चे के कारण। पता नहीं, क्या समझता है अपने आपको। लेखक न लेखक की दुम। वाचाल इतना कि बड़े-छोटे का लिहाज तक नहीं। पता नहीं, कैसे कालेज में लगा गया। इसे तो किसी ऑफिस में कलम घिसनी चाहिए थी।

डॉ० शीतांशु की याद आते ही, उन्हें लगा कि उनका ब्लडप्रेशर बढ़ने लगा है। उन्होंने घबड़ाहट में इधर-उधर देखा और ठण्डी हो गयी चाय की प्याली को एक ओर सरका दिया फिर वह आराम कुर्सी पर सीधे लेट गए।

श्रीमती ओछेलाल ने कमरे में आकर पूछा—तबियत तो ठीक है न।

डॉ० ओछेलाल ने एक बार उनकी तरफ देखा और फिर मुँह मोड़ कर दीवार की ओर देखने लगे। सामने गणपति का चित्र टंगा हुआ था। उन्होंने धीरे से आँखें बन्द कर लीं।

—अरे आपने तो चाय भी नहीं पी। ठण्डी हो गयी होगी, और बना दूं।

—कालिंदी प्लीज ! इस वक्त डिस्टर्ब मत करो।

—आखिर बात क्या हो गयी। श्रीमती ओछेलाल ने अखबार की तरफ देखते हुए कहा। कहीं तुम्हारे बारे में तो किसी ने उल्टा-सीधा नहीं लिख दिया। और हंसती हुई वह पति के पास ही पलंग पर बैठ गयीं।

—तुम्हें मजाक सूझ रही है। देखती नहीं, प्रोफेसरशिप का विज्ञापन निकल गया है। उन्होंने अखबार को उनकी तरफ सरकाते हुए कहा और फिर आँखें मूँद लीं।

श्रीमती ओछेलाल को जोर की हँसी आ गयी—तो इसमें इतना डिस्टर्ब होने की क्या बात है ? वैकेंसी निकली है तो अच्छा ही है। रिटायर होते-होते प्रोफेसर बन जाओगे। तुम्हारी आखिरी इच्छा भी पूरी हो जायेगी।

—तुमने कह दिया और मुझे पोस्ट मिल गयी। यह सब इतना आसान होता है क्या ? कितने दंद-फंद करने पड़ते हैं। यह तुम्हारी कालेज की लेक्चररशिप नहीं है कि एक फोन कर दिया और तुम्हारी नियुक्ति हो गयी।

तुम कितनी बार इस बात को दोहराओगे। श्रीमती ओछेलाल सहसा ही गंभीर हो गयीं।——लेक्चररशिप के लिए मैं क्वालिफाइड नहीं थी क्या ? और जब मुझे पोस्ट मिली, उस वक्त यहाँ हिन्दी में क्वालिफाइड लोग ही कितने थे ? फिर मुझे तो दो साल का अनुभव भी था। तुम्हारी तरह किसी की दया पर तो ली नहीं गयी थी। मिसेज ओछेलाल ने अंतिम वाक्य को जरा जोर देकर कहा। उनका चेहरा तमतमा आया था

डॉ० ओछेलाल ने चुप रहना ही बेहतर समझा। थोड़ी देर बाद मिसेज आलोक एक झटके से उठीं और चाय की प्याली उठाकर किचन में चली गयीं। डॉ० ओछेलाल उनका जाना देखते रहे और थोड़ी देर रुक कर उन्होंने फिर अखबार उठा लिया लेकिन उसमें उन्हें अक्षर नहीं, डॉ० शीतांशु का मुँह चिढ़ाता चेहरा दीख रहा था। उन्होंने झटके से अखबार एक ओर फेंक दिया।

छाया गीत समाप्त हो चुके थे। अब हिन्दी में खबरें आ रही थीं। तभी दरवाजे की घंटी बजी। डॉ० ओछेलाल ने स्वयं उठकर दरवाजा खोला तो देखा, सामने प्रोफेसर तिवारी पान चबाते खड़े थे।

——नमस्कार, डॉ० साब ! तिवारी ने रूमाल से अपनी पीक पोंछते हुए कहा।

——आइए, आइए तिवारी जी। मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।

तिवारी जी ने बैठक में आकर इधरउधर देखा और फिर सोफे पर लधर गए।

——तो वैकेंसी निकल ही गयी ? तिवारी जी ने मुस्कराते हुए कहा।

——अरे भाई, जरा दो चाय भिजवा देना। उन्होंने किचन की तरफ सर उठा कर आवाज दी——तिवारी जी, चाय पियेंगे कॉफी। डॉ० ओछेलाल ने अपने बोल में रसमलाई घोल दी।

——डॉ० साहब, अब चाय-वाय से क्या होगा। हम तो आज से ही बड़ी पार्टी का इतंजार करने लगे हैं।

——आपके मुँह में घी-शक्कर। काश, ऐसा हो पाता।

——होगा कैसे नहीं। कौन है, पूरे राज्य में जो आपके सामने ठहर सके ?

——वैसे तो मुझे कोई डर नहीं है। बस थोड़ी-सी चिंता है कि कहीं पर स्साला शीतांशु कोई गड़बड़ न कर दे। बाकी तो मैं देख लूँगा।

—क्या पिद्दी, क्या पिद्दी का शोरवा। आप भी किसकी बात ले बैठे डॉ० साहब। तिवारी ने पान को जीभ से चुभलाते हुए कहा और होठों के कोनों पर बह आई पान की पीक को फिर से पोंछ लिया।

—ऐसा है तिवारी जी, अपनी रणनीति अभी से चालू कर देनी चाहिए। सबसे बड़ी बात एक्सपर्टस के एप्वांइटमैंट्स की है। अपने लोग एक्सपर्ट्स बनकर आ

जायें तो समझ लो नाइन्टी परसैंट काम बन गया। वी. सी. को मैंने पटा ही रखा है। खाने-पीने वाला आदमी है। दो-चार बार अपने डिपार्टमैंट के फंक्शन में बुला ही चुका हूँ--बाद में किसी थ्री स्टार, फाइव स्टार में बैठ गए, लो काम बन गया समझो। वैसे भी मैंने उसकी जीवनी लिखी है--पिछले साल उसको छपवाने में अपनी संस्था के पन्द्रह हजार खर्च किए। वह इतना कृतघ्न तो हो नहीं सकता कि ऐन मौके पर "डिच" कर दे। मैं आप से कहूँ तब से उसका व्यवहार ही बदल गया है मेरे साथ।

—वह तो मैं भी जानता हूँ आलोक जी। इतना बुद्धू थोड़े ही हूँ और जहाँ तक एक्सपर्ट्स की बात है, इस मुद्दे को बोर्ड ऑफ स्ट्डीज में मत आने दीजिए। एकेडेमिक कौंसिल में नाम भिजवा दीजिए अपने लोगों के···सभी नाम अपने ही लोगों के होने चाहिएँ। ताकि आगे एक्जीक्यूटिव कौंसिल और वी. सी. भी अगर कुछ करना चाहें तो न कर सकें। आखिर फाइनल नामों का चुनाव तो उसी लिस्ट में से करना पड़ेगा जो नीचे से जायेगी···।

—तिवारी जी, क्या बात करते हैं। क्या अपने सोमानी साहब एक्जीक्यूटिव कौंसिल में नहीं है। लेकिन फिर भी अगर बोर्ड ऑफ स्टडीज से ही नाम लिए जायें तो क्या बुरा है। वहाँ भी तो सभी अपने चमचे हैं--एकाध को छोड़कर।

—डॉ० शीतांशु का बच्चा भी तो बोर्ड में है। अगर उसने कुछ नाम जुड़वा दिए तो···?

—उन्हें बोर्ड के क्लर्क से कहकर कटवा दिया जायेगा··· ।

—और अगर शीतांशु को मालूम पड़ गया तो···? मेरा ख्याल है कि हमारी रणनीति बिल्कुल फूलप्रूफ होनी चाहिए।

डॉ० ओछेलाल सोचने की मुद्रा में हो आए।

चाय आ गयी थी। तिवारी अपना पान थूकने के लिए वाश-बेसिन की तरफ बढ़ गए। डॉ० ओछेलाल ने अपना प्याला उठा लिया।

लौटकर तिवारी बोले—डॉ० साहब, शीतांशु हो या शीतांशु का बाप, नियुक्ति आप की ही होगी। मेरा मन कहता है।

—सो तो खैर होगी ही। हम भी तीस साल से झक नहीं मार रहे हैं। कितने अध्यक्षों को ओब्लाइज किया है इन सालों में। इन्सान बिल्कुल कृतघ्न हो जाये, ऐसा तो हो नहीं सकता न। अब देखो, रीडरी के वक्त डा० पण्डित को सोफा सेट भिजवाया। आज तक उनकी बैठक की शोभा बढ़ा रहा है। अब इतने सालों में उनके कितने ही शिष्य विश्वविद्यालयों के अध्यक्ष हो गए है। दो चार तो ऐसे हैं जो आज भी उनके टॉयलट में पानी का लोटा रखते हैं। वह क्या इस बार हमारी मदद नहीं करेंगे।

—आप उन्हें तुरन्त लिख दीजिए।

—मैं राजधानी में सत्येंद्र जी को भी लिख रहा हूँ। वह खुद तो एक्सपर्ट हो नहीं सकते—अपने बोर्ड में जो हैं लेकिन अपने किसी-विश्वस्त शिष्य का नाम जरूर दे देंगे।

—और रानी लक्ष्मीबाई यूनिवर्सिटी के वी० सी० डॉ० कृष्ण कान्त तो आपके प्रोफेसर रह चुके हैं। पिछली बार भी आपकी प्रोफेसरी के लिए डॉ० शैलेन्द्र से कितना लड़े थे।

—उनसे मेरे बड़े निजी सम्बन्ध हैं। कहते हुए डॉ० ओछेलाल की आँखों में अपने युवा काल के दिन घूम गए। जब वे सुन्दर हुआ करते थे और डॉ० कृष्ण कान्त उन्हें पढ़ाई और पुस्तकों के बहाने अपने घर बुला लिया करते थे। उन दिनों ओछेलाल एम० ए० कर रहे थे और डॉ० कृष्ण चन्द्र की पत्नी उनसे झगड़ कर अपने मायके रह रही थीं।

—लेकिन इन दिनों वह बड़े डिस्टर्ब रहते हैं। उसकी एक मात्र विधवा बहिन को कैंसर हो गया है। वह उन्हीं के साथ रहती हैं।

—ठीक है पर परिवार की परेशानियों के बावजूद सारे काम तो चलते ही रहते हैं। आप उन्हें जरूर लिख दीजिए।

—मैं उनसे खुद मिल कर आऊँगा।

—और किसका नाम रिकमंड किया जा सकता है?

—वैसे बौड़म का नाम भी दिया जा सकता है।

—किसका?

—अरे जो साबरमती राष्ट्रभाषा पीठ का अध्यक्ष बना बैठा है। बलजीत नाहर का।

—हाँ तिवारी जी, अच्छा याद दिलाया। उसे तो आदेश दिया जा सकता है।

चाय पीते हुए दोनों दोस्तों ने कुछ और नामों पर विचार किया। कुछ को छोड़ दिया गया, कुछ को जोड़ दिया गया। अन्त में नौ-दस नामों की एक अच्छी खासी सूची तैयार हो गयी।

डॉ० ओछेलाल अब काफी आश्वस्त दीखने लगे थे। उन्हें लगने लगा था कि उनका सपना पूरा होने को है। सूची बनाने के बाद अब उन्हें डॉ० शीतांशु का भय भी काफी कम महसूस होने लगा था। उन्होंने हवा में एक मुक्का ताना—कुछ इस तरह की जैसे शीतांशु की छाती पर पिस्तौल तान दी हो। इस यूनिवर्सिटी में एक वही तो उनका प्रतिद्वन्द्वी हो सकता था।

बाहर निकल कर उन्होंने पास की दूकान से प्रोफेसर तिवारी को एक पान खिलाया और धीरे-धीरे चहल कदमी करते हुए अपने फ्लैट पर लौट आए।

●●

तीन

डॉ० शीतांशु खाना खाने के बाद अपनी टेबल पर आकर बैठ गए। उन्होंने प्रूफ के लिए आए पन्नों को उलट-पुलटकर देखा। दो फर्मे थे, जो सुबह की डाक से आए थे। लगातार तीन सालों की मेहनत के बाद उन्होंने 'साहित्य के इतिहासों का समाजशास्त्रीय अनुशीलन' विषय पर अपनी यह पुस्तक पूरी की थी। उन्हें यह सन्तोष था कि एक अच्छा काम पूरा हो गया। अभी तक इस विषय पर एक-दो किताबें ही निकली थीं—और वह भी बहुत सतही। ज्यादातर एंसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज और ब्रिटेनिका में लिखे मैटर का रूपान्तर मात्र था। थोड़े से देशीय साहित्य के उद्धरण थे और बस। लेकिन उन्होंने इस विषय पर गहराई से चिंतन किया था और बड़ी लगन से इस शोध को पूरा करने के बाद सन्तोष की सांस ली थी।

अभी उन्होंने दो-तीन पृष्ठ ही देखे थे कि उनकी पत्नी अनुराधा दूध लेकर आ गयी।

—दवाई अभी लोगे या बाद में ? उन्होंने दूध के गिलास को मेज पर रखते हुए पूछा।

डा० शीतांशु का ध्यान टूटा।

—अनु, दवाई के अलावा कभी और भी कोई बात कर लिया करो। वह मुस्करा कर बोले।

अनुराधा पास आकर बैठ गयी।—तुम अपनी मेहन का ख्याल रखते नहीं हो। कभी हमारे पास बैठने की तुम्हें फुरसत नहीं रहती···तो तुमसे क्या बात की जा सकती है।

—देखो, दो फर्मों के प्रूफ पढ़ने हैं। दस तो इसी में बज जायेंगे। फिर सुबह सात बजे का पहला लेक्चर लेना है···तुम समझती क्यों नहीं···।

—अच्छा तुम अपने प्रूफ पढ़ो। मैं सोने जाती हूँ। मुझे तो तुमसे भी पहले उठना पड़ता है।

—ऐसी बात नहीं है अनु, तुम बैठो तो। तुमसे एक सलाह लेनी है। अनुराधा उठते-उठते बैठ गयी—बोलो, क्या बात है ?

—यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर की पोस्ट निकली है। एप्लाई करूँ क्या ?

—मैं क्या बतलाऊँ ?

—देखो, सच्चाई तो यह है पोस्ट मुझे मिलने वाली है नहीं। ओछेलाल बीस साल से वहाँ जमा बैठा है। इस बीच उसने अपने कितने ही बाप बना लिए हैं। खुद भी कम चलता पुरजा नहीं है। अपना स्वार्थ साधने के लिए किसी भी स्तर तक जा सकता है। पैसा खिला सकता है, सप्लायर बन सकता है। हर तरह का जोड़-तोड़ कर सकता है। जितने भी लफंगे हैं, सब उनके साथ हैं। लेकिन फिर भी सोचता हूँ एप्लाई तो कर ही दूँ।

—ऐसे में एप्लाई करके क्या होगा ?

—होगा कुछ नहीं। बस, थोड़ा-सा उसका ब्लडप्रेशर तो बढ़ ही जायेगा। रिजल्ट निकलने तक थोड़ा-सा डिस्टर्ब होगा। थोड़ी बहुत भाग-दौड़ भी करेगा···। भई, उनके पास 4-5 सालों का मुझसे ज्यादा एक्सपीरियेंस है। इसके अलावा और क्या है उसके पास। उससे मेरी क्वालिफिकेशन कहीं ज्यादा है। मेरी तीस किताबें आ चुकी हैं। डेढ़ हजार से ज्यादा आर्टिकल छप चुके हैं। उसने तो सारी उम्र गोटियां जमाने में और गिरोह बनाने में गंवा दी। मैं एप्लाई कर दूँ तो कम से कम उसकी टैंशन तो बढ़ेगी।

—क्या बाहर वाले एप्लाई करेंगे ?

—उम्मीद तो कम ही है अब। कौन अपनी जमी जमायी नौकरी और घर-परिवार छोड़कर अधेड़ उम्र में नये शहर में बसना चाहेगा। वह भी इस जैसे शहर में जहाँ मकान का भाड़ा देने में ही आधी तनख्वाह निकल जाती है।

भई, मैं क्या बतलाऊँ। एप्लाई करना चाहते हो तो कर लो। लेकिन अपने प्रिंसिपल से भी पूछ देखो। क्या कहते हैं। तुम्हारे दोस्त हैं। दूसरे लोगों से भी सलाह मशविरा कर लो···· देखो, वे क्या राय देते हैं।

प्रिंसिपल से तो मैंने पूछ लिया है। वह कहते हैं, शीतांशु जरूर एप्लाई करो। लेकिन प्रो० गुंजीकर समझाने लगे—किस क़िल्लत में पड़ रहे हो। कालेज में अध्यक्ष हो। साथी सहयोगी अच्छे हैं। अब बेकार में क्यों टेंशन लेते हो··· अपना लिखो पढ़ो···· दुनिया तुम्हें जानती है···· यूनिवर्सिटी की प्रोफेसरी कोई प्राइम-मिनिस्ट्री तो नहीं। कालेज में तो बस एक बाप होता है। वहाँ रजिस्ट्रार और वी. सी. से लेकर न जाने कितनों को बाप कहना पड़ेगा। तुम कहाँ लफड़े में पड़ने जा रहे हो। बेकार में साल-छह महीने की टेंशन रहेगी और जबकि तुम अच्छी तरह जानते हो—तुम्हारा नहीं ही होगा।

—तो तुमने क्या सोचा है···· ?

—मैं कुछ सोच नहीं पा रहा हूँ। इसीलिए तो तुमसे पूछ रहा हूँ।

—करना है तो कर दो ···· लेकिन टैंशन मत लो ··· मजे-मजे में एप्लाई

कर दो । इण्टरव्यू के लिए बुलावा आए तो चले जाओ और सब कुछ समय पर छोड़ दो···।

—अनुराधा तुम भी अजीब हो, भड़ुओं की इस दुनिया में समय की बात कर रही हो । ये साले तो समय की धार भी बदल डालते हैं ।

—तुम्हारी जबान गन्दी है ।

—गन्दे लोगों के लिए गन्दी है । अब देखो, तुम्हारे साथ कितने प्यार से बात कर रहा हूँ । डा. शीतांशु को चुहल सूझने लगी थी ।

—जरा अपनी उम्र का तो ख्याल करो । बेटियाँ शादी लायक हो रही हैं । अगर कल वे भी अपने मर्दों से इसी तरह बोलने लगीं तो···।

—वे नहीं बोलेंगी ।

—क्यों ?

—क्योंकि राष्ट्र भाषा का अध्यापक बन कर मैं तो इन ओछेलालों, तिवारियों और जैनों के नाबदान में रहने के लिए मजबूर हो गया हूँ । बच्चियों के साथ ऐसी कोई मजबूरी नहीं है । फिर उन पर तुम्हारे संस्कार जो गए हैं ।

—आखिर तुम्हारे ओछेलाल पर भी तो किसी के संस्कार गये होंगे ।

—वह मुझे मालूम नहीं । लेकिन एक बात है । उनके पितृ श्री ने उनका नाम बड़ा सटीक रखा है ।

—बस, तुम्हें बात बनानी खूब आती है । ऐसी बातें बोलते हो तभी तो दुश्मन बना रखे हैं ।

—दुश्मन उनके ही बनते हैं अनु, जिसका अपना कुछ होता है । अब प्रोफेसर उपाध्याय और प्रा. लाल जैसों के दुश्मन थोड़े ही बनेंगे जिनके न रीढ़ है, न हड्डी । जो चलते नहीं रेंगते हैं ।

—अच्छा मैं चली । तुम अपने प्रूफ पढ़ो । दूध ठण्डा हो रहा है, पी लेना । कहो तो दवाई दे जाऊँ ।

—नहीं मैं सोते वक्त खुद ले लूँगा ।

अनुराधा उठकर सोने के कमरे में जाने लगी तो उन्होंने फिर पूछ लिया—तो तुम क्या कहती हो अनु, एप्लाई करूँ या नहीं ।

अंशु, जैसा तुम ठीक समझो । कहते हुए वह दूसरे कमरे में चली गयी । डा. शीतांशु ने मुस्कराते हुए चश्मा उठाया और प्रूफ के पन्ने पर झुक गए । उनका मन पत्नी के इतने-से साथ से काफी हल्का हो गया था ।

हफ्ते भर के सोच-विचार और सलाह-मशविरे के बाद डॉ० शीतांशु ने तय कर लिया कि वह एप्लाई जरुर करेंगे। जब परिणाम का पता पहले से ही हो तो परिणाम निकलने पर कोई खास धक्का नहीं लगता। और भी कुछ नहीं तो विश्व-विद्यालय और एक्सपर्टस को तो एक्सपोज करने का मौका मिलेगा। इस व्यवस्था पर एक उपन्यास तो लिखा जा सकेगा। और जो थोड़ी-बहुत निराशा होगी, भी, उसे वह झेल जायेंगे। उनका दिल इतना मजबूत तो है ही।

तो, एक दिन बड़े सहज भाव से उन्होंने अपनी अर्जी भेज दी। अर्जी भेजने के बाद उन्होंने शहर के बाहर अपने कुछ शुभचिंतकों को कांटेक्ट किया। उन्हें वस्तु स्थिति समझाई और उन्हें सलाह देने के लिये लिखा।

सभी लोगों ने उनके लिये शुभकामनाएँ भेजीं। लेकिन साथ ही यह भी लिखा कि ओछेलाल के हाथ उनसे कहीं लम्बे हैं। प्रोफेसरों-रीडरों की नियुक्ति का धन्धा करने-कराने वालों के बीच उन्होंने काफी इन्वेस्ट कर रखा है। सो नियुक्ति ओछेलाल की ही होगी और उन्हें इसके लिये मानसिक रूप से तैयार रहना चाहिये।

डॉ० शीतांशु ने मन में सोचा—मानसिक रूप से तैयार होकर ही तो वे इस तमाशे में शिरकत कर रहे हैं।

लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते गए, डॉ० शीतांशु को भी थोड़ी-बहुत चिंता सताने लगी। एक दिन वह इसी मनस्थिति में वह अपने पुराने कॉलेज के वरिष्ठ सहयोगी के पास पहुँच गये जिनका वी० सी० पर काफी प्रभाव था। अब तक विज्ञा-पन निकले दो महीने हो चुके थे।

जिस वक्त वह अपने सहयोगी ओर मित्र ड़ॉ० परचुरे के घर पहुंचे, रात के आठ बज रहे थे। वे डॉक्टर परचुरे से सालों बाद मिल रहे थे। अपनी बात कह कर डॉ० परचुरे के बोलने की प्रतीक्षा करने लगे.........

डॉ० परचुरे कम बोलते थे। थोड़ी देर यों ही गुमसुम रहने के बाद उन्होंने कहा—डॉ० शीतांशु, प्रोफेसरशिप तो उसी को मिलेगी, जिसे एक्सपर्ट चाहेंगे। वी० सी० और विश्वविद्यालय के दूसरे अधिकारी तो इन्टरव्यू में बस नाम मात्र के लिये बैठते हैं। अगर तुम अपने पक्ष का एक भी एक्सपर्ट रखवा सको तो काम तुम्हारे लिए आसान भले ही न हो लेकिन ओछेलाल के लिए मुश्किल जरूर पैदा हो सकती है। तुमने इस बारे में कुछ किया है।

—'क्या यूनिवर्सिटी के अधिकारी कुछ नहीं कर सकते ?'

—वे चाह कर भी कुछ नहीं कर पायेंगे। नियम और कानून हो ऐसे है।

—नियमों में 'फ्ला' भी होता है। क्या नियम व्यक्ति से भी बढ़कर हैं।

—सिद्धांततः नहीं हैं। लेकिन व्यावहारिक रूप में हैं। एक व्यक्ति के लिए उनको बदला नहीं जा सकता।

—'जो नियम उचित को अनुचित और अनुचित को उचित ठहरा दें, उनको भी नहीं ?'

—'नहीं। व्यवस्था ही ऐसी है। अब तक एक्सपर्ट की नियुक्ति हो गयी होगी। पता लगाओ, कौन-कौन हैं। और क्या उनमें कोई तुम्हारे पक्ष में जोर देकर बोल सकता है ?'

—'मैं देखूँगा।'

—'वैसे मैं कहूँ, ओछेलाल को मैं भी खूब अच्छी तरह जानता हूँ। पुराने वी० सी० उससे घृणा करते रहे हैं। इसलिये थर्ड और फोर्थ प्लान में पोस्ट ही नहीं बनायी गयी। इस बार जब डॉ० कृष्ण कमलाकर वी० सी० हो गए तो उसने पहले दिन से ही उनकी मालिश शुरू कर दी। पिछले तीन सालों में उसने कितनी सेवकाई की है, उसे तुम नहीं जानते। नतीजा सामने है। नयी योजना में पोस्ट सैंक्शन हो गयी। मैं कहूँ, यह पोस्ट ओछेलाल के लिए ही बनायी गयी है। इसलिए एक्सपर्ट भी वही बनेंगे, जिन्हें वह चाहेगा।

—इसका मतलबतो यह हुआ कि व्यक्ति की योग्यता और उसके काम का कोई महत्त्व नहीं रह गया।

—महत्त्व कहाँ है। महत्त्व होता तो इतने डॉक्टर और इंजीनियर अपना देश, अपने सम्बन्धियों और दोस्तों को छोड़कर विदेशों में बसते ? तुम्हें मालूम है कि एक डॉक्टर या एक इंजीनियर बनाने में सरकार का कितना खर्च होता है। लेकिन वह पूरा पैसा गटर में जा रहा है कि नहीं ? यूनिवर्सिटी की प्रोफेसरी तो समुद्र में पड़ी बूँद का सौवां हिस्सा भी नहीं है।

—लेकिन परचुरे जी······।'

—शीतांशु, तुम तो लेखक हो। इस बात को मुझसे ज्यादा जानते हो कि व्यवस्था शासक के इशारे से चलती है। और जहाँ शासक और सत्ता ही भ्रष्ट हो, वहाँ कानून, ईमानदारी, मेहनत, निष्ठा, चरित्र और आदर्श जैसे शब्दों का कोई मतलब नहीं रह जाता। हालांकि सत्ता इन्हीं शब्दों को हवा में फेंकती है और इन्हीं की आड़ में सारा भ्रष्टाचार और दुराचार करती है।

—तो मैं इन्टरव्यू अटेंड न करूँ ? आप क्या कहते हैं ?

—'इन्टरव्यू लैटर तो आने दो। ओछेलाल जानता है कि यहाँ एक तुम्हीं उसके प्रतिद्वन्द्वी हो। हो सकता है, वह तुम्हारे इन्टरव्यू लैटर को बीच में ही गोल करवा दे। मैं तुम्हे बतलाऊँ, वह किसी भी सीमा तक जा सकता है। वह इस पोस्ट को पाने के लिए कोई रिस्क नहीं लेगा। यह उसका सपना है। उसकी महत्त्वाकाँक्षा की कोई सीमा नहीं है। तुम मेरे इतने नजदीक के आदमी हो। इस बात को लेकर तुम आज मेरे पास आए हो। और ओछेलाल इस बीच मुझसे छह-सात बार

मिल चुका है । इससे पहले कैम्पस में कभी-कभार हमारी दुआ-सलाम भर हो जाया करती थी । बस ! अब तुम सोच सकते हो, तुम जैसों के लिए इस तरह के लोगो से पार पाना कितना मुश्किल हो सकता है ।

—तो मेरे लिए आप क्या कहते हैं ? डॉ० शीतांशु ने अपने स्वर को बहुत मुलायम बनाते हुए पूछा । वह इन सब बातो को न जानते हों, ऐसी बात नहीं थी । लेकिन सामने वाले के मुख से दो-टूक शब्दो में उन्हें सुनकर उनके भीतर कुछ उबलने लगा था—क्या ऐसा कुछ नहीं हो सकता कि उसकी प्लान्स को डिस्टर्ब किया जा सके ?

—करने के लिए क्या नहीं किया जा सकता । लेकिन वह सब तुम नहीं कर पाओगे ?

—आप बतलाइये तो, क्या करना होगा ?

—पहले तुम कन्फर्म कर लो कि कौन-कौन एक्सपर्ट आ रहे हैं और इन्टरव्यू लेटर कब तक इश्यू हो रहे हैं । मुझे लगता है, अभी इस सब में दो-चार महीने और लग जायेंगे ।

—ठीक है, मैं इस बारे में पता लगाने की कोशिश करता हूँ । बाद में आपसे मिल सकता हूँ न ।

—तुम कभी आओ शीतांशु । मैं तुम्हारा हितैषी हूँ । मैं खुद चाहता हूँ कि तुम जैसे लोग कैम्पस में आएँ । जब तुम कॉलेज में रह कर इतना काम कर रहे हो तो कैम्पस में तो तुम्हें और भी मौका मिलेगा। । लेकिन जो सच्चाई है, मैंने तुम्हें बतला दी है । हालांकि वी० सी० और रजिस्ट्रार तक सब जानते हैं कि तुम्हारा डिपार्टमेंट जो पिछले बीस सालो से जहाँ का तहाँ पड़ा है, उसके पीछे ओछेलाल की ही निष्क्रियता और उदासीनता है । हिन्दोस्तान में है कोई ऐसा विश्वविद्यालय, जिसका कोई विभाग 20 सालों तक एक रीडर, एक क्लर्क और एक चपरासी पर चलता रहा है । फिर भी आइ विश यू गुड लक......।

थोड़ी देर बाद जब शीतांशु डॉ० परचुरे के फ्लैट से बाहर निकल कर सड़क पर आए तो उनके पैर रास्ते में पड़े नारियल से टकरा गए । उन्हो ने उस पर जोर की ठोकर मारी और बाद में यह आश्वस्ति लेकर धीरे-धीरे चलने लगे कि उन्हो ने सत्ता और व्यवस्था के सर पर ठोकर मारकर उसे लुढ़का दिया है । एक दिन इस व्यवस्था को भी इस कच्चे नारियल की तरह लुढ़काकर धूल चटा दी जायेगी, इसकी कल्पना करके उनका चेहरा खिल आया ।

तभी सड़क के पार पटरियों पर एक गाड़ी धड़धड़ाती हुई निकल गयी ।

●●

चार

प्रो० प्रमोद जैन और डॉ० कन्हैयालाल कुलश्रेष्ठ के आने पर कोरम पूरा हो गया।

प्रो० राधारमण और डॉ० तिवारी पहले से ही आकर जम चुके थे। डॉ० तिवारी ने पान की पुड़िया निकालकर एक पान अपने मुँह में रखा और बोले—'तो डॉक्टर साब' अब शुरू कीजिए।'

तभी श्रीमती ओछेलाल एक बड़ी सी ट्रे में चाय की प्यालियाँ लेकर दाखिल हुईं। उनके पूरे चेहरे पर मुस्कान झलक रही थी। पीछे से उनकी लड़की दूसरी ट्रे में नमकीन की कुछ प्लेटें लेकर आयी और उन्हें बीच मेज पर रख कर वापस चली गयीं। मिसेज ओछेलाल एक-एक प्याला उठा कर सब के हाथों में पकड़ाती चल रही थीं।

—आप क्यों तकलीफ कर रही हैं ? लाइए मुझे दीजिए। यह प्रो० जैन का स्वर था। उन्होंने चश्मे के भीतर से झाँकती अपनी शरारती आँखों से डॉ० तिवारी की ओर देखते हुए मुस्करा दिया। डॉ० तिवारी ने बाहर निकली हुई पान की पीक हाथ से पौंछ ली और हाथ को अपने भूरे बालों से पौंछ किया।

चाय की चुस्की लेते डॉ० कन्हैयालाल बोले—सर, मैंने अपने कॉलिज के वाइस प्रिंसिपल से बात कर ली है। वह खुद भी एकेडेमिक कांसिल में हैं और दो-चार और लोगों से भी उनके नजदीकी ताल्लुक हैं। रानी लक्ष्मी बाई यूनिवर्सिटी के वी० सी० का नाम तो वह प्रोपोज करवा देंगे।'

—वैसे मैंने भी बलजीत नाहर के नाम के लिए डॉ० तनेजा से कह दिया, है।' डॉ० तिवारी बोले—'उन्होंने पूरा आश्वासन दिया है। लेकिन डॉक्टर साहब तनेजा को आप जानते ही हैं। खाने-पीने वाला आदमी है। एक दिन उसकी दावत क्यों न कर दी जाय।'

—अरे दावत कौन-सी बड़ी बात है। डॉ० ओछेलाल बोले—लेकिन उसके लिये मेरा इनिशियेटिव लेना ठीक रहेगा क्या ?

—मैं अपने घर पर एरैंज करवा लेता—लेकिन मिसेज को ड्रिंक्स वगैरह से परहेज है।

—बुढ़ापे की शादी का यही नुकसान होता है। जवान पत्नी से कई बातों में डरना पड़ता है। डॉ० कुलश्रेष्ठ ने फिकरा कसा। सब लोग हँस पड़े। डॉ० तिवारी झेंप गये। वे पीक पोंछने के बहाने अपना रूमाल टटोलने लगे।

—क्या ऐसा नहीं हो सकता, किसी होटल में एरेंज कर लें। वैसे 'राज महल' अच्छा है लेकिन वहाँ सिर्फ बियर मिलती है। जुनेजा तो पक्का पीने वाला है।

जुनेजा साहब को मेरे यहाँ बुला लीजिये—अगर आप ठीक समझें तो। इस बार प्रो० जैन ने उचक कर कहा।

—तुम अभी काफी जूनियर हो। शायद जुनेजा इस बात को पसन्द न करें।

—खैर इस बात पर बाद में बात करेंगे। मैं समझता हूँ कि अगर किसी तरह लक्ष्मीबाई यूनिवर्सिटी के वी० सी० का नाम इन्क्लूड करवा लिया जाय तो अपना वी० सी० उसे जरूर टिक कर देगा। डॉ० राधारमण ने पेशकश की।

—श्योर···इसमें कोई शक नहीं है। फिर डॉक्टर साहब से तो वह सलाह लेंगे ही। उनके लिये पोस्ट निकलवाई है और इनसे एक्सपर्ट के मामले में सलाह न लें, यह कैसे हो सकता है। कितनी मेहनत से डॉक्टर साहब ने उनकी जीवनी लिखी है······

—मैंने क्या लिखी है भाई। अगर डॉ० कुलश्रेष्ठ और डॉ० राधारमण मेरी मदद न करते तो इतनी जल्दी इसका लिखा जाना सम्भव ही नहीं हो सकता था।

—क्या बात करते हैं डॉक्टर साहब, पूरी गाइडेंस तो आपकी थी। कितनी बार आपसे डिक्टेशन लिया। उन दिनों की आपकी मेहमाननवाजी को हम भूल सकते हैं क्या ? फिर आप तो हमारे गुरु रहे हैं। प्रो० जैन ने मौका देखकर डॉ० ओछेलाल को अभिभूत करने में कोई कसर नहीं रखी। वैसे वह हमेशा ऐसे ही मौकों की तलाश में रहते थे।

दूसरी चाय आने तक विद्वानों की इस मंडली ने पहले से सोचे हुये कुछ नामों में से छः नाम तय कर लिये थे और यह भी तय कर लिया था कि कौन किसका नाम प्रोपोज करवाने के लिये किससे संपर्क करेगा।

साढ़े नौ बजे के करीब मंडली उठ गयी।

●

डिपार्टमेंट में डॉ० ओछेलाल आकर बैठे ही थे कि चपरासी ने एक चिट लाकर उनके सामने रख दी।

चश्मा चढ़ाकर ओछेलाल ने चिट पर एक नजर डाली और कहा—भेज दो।

चपरासी निकल गया।

थोड़ी देर बाद थापा सकुचाते हुए अन्दर आया और उसने नेपाली अंदाज में डॉ० ओछेलाल को प्रणाम किया।

—आओ-आओ बैठो थापा। तुम तीन-चार बार आए और हम मिले नहीं। बात यह है कि इन दिनों हम थोड़े बिजी हो गए हैं। डिपार्टमेंट में 'सीनियर' प्रोफेसर की पोस्ट निकली है। उसी में थोड़ा व्यस्त हो गए हैं। बस, अब ठीक है। एप्लाई करने की फॉरमेलिटी तो निभानी पड़ती है न। उसी में इतना वक्त निकल गया। अब हम तुम्हारी थीसिस की रूप-रेखा तैयार करवा देगें।

—मैं सोचता था सर, अगर सब्जेक्ट तय हो जाता तो मैं भी एक रफ सिनॉपसिस बनाने की कोशिश करता। बाद में आप उसे देख लेते।

—तुम्हारी किस विषय में रुचि है।

—सर, मैं तो किसी सैद्धान्तिक विषय पर शोध करना चाहता हूँ वैसे आप जो भी विषय निश्चित करें।

—जैसे ?

—जैसे 'सामाजिक संरचना और साहित्य—स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के संदर्भ में।'

डॉ० ओछेलाल इस विषय के बारे में कुछ देर तक सोचने की मुद्रा में बने रहे। उन्हें समझ ही नहीं आ रहा था कि इस विषय पर शोध की प्रक्रिया क्या होगी। उनका अपना विषय 'कवि सींगा' की रचनाओं से सम्बन्धित था।

लेकिन वह जल्दी सम्भल गए। बोले—विषय तो अच्छा है। लेकिन जहाँ तक मैं समझता हूँ, तुम्हें यह मुश्किल पड़ सकता है।

—तो आप ही कोई उचित विषय सुझा दीजिए।

डॉ० ओछेलाल फिर सोचने की मुद्रा में आ गए। फिर एकाएक कुर्सी से उचके और आगे की ओर झुककर बोले—तुम अपनी रिसर्च के सिलसिले में कुछ दिन दिल्ली में रह सकते हो न ?

—जी, मुझे इसमें कोई मुश्किल नहीं होगी।

—तो ऐसा करो। एक नितांत नया विषय कब से मेरे दिमाग में घूम रहा है। मुझे लगता है, तुम उस पर अवश्य काम कर सकते हो।

थापा उनके बोलने की प्रतीक्षा करने लगा।

—'दिल्ली विश्वविद्यालय में डॉ० शैलेन्द्र का युग।'

—समीक्षक डॉ० शैलेन्द्र न सर।

—हाँ, वही डॉ० शैलेन्द्र इतिहास वाले। इसमें केवल उनके समीक्षा सिद्धांतों और समीक्षा ग्रंथों का अध्ययन नहीं करना होगा। उनके व्यक्तित्व को भी उनके लेखन से जोड़कर उसका विश्लेषण करना होगा। दिल्ली विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष के रूप में उन्होंने क्या-क्या गुल खिलाए—इस सब का विवेचन-विश्लेषण भी

करना होगा। दूसरे शब्दों में उनके साहित्य के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व की भी शोध करनी होगी। और मैं कहूँ कि तुम्हें इस शोध में अनेक चौंकाने वाले तथ्य मिल सकते हैं।

—अगर आप समझते हैं कि इस विषय पर अच्छा काम हो सकता है तो मैं तैयार हूँ।

—तो तुम ऐसा करो, इन्हीं लाइंस पर रूपरेखा बनाकर लाओ। फिर हम देखते हैं कि, उसमें क्या जोड़ा-घटाया जा सकता है।

—जी सर······अगर आप···।

तभी कमरे में एक भरे बदन की युवती ने प्रवेश किया। और थापा की ओर देखकर डॉ० ओछेलाल के बायीं ओर की कुर्सी पर ठसक कर बैठ गयी।

डॉ० ओछेलाल का चेहरा खिल गया।

—तुम कल नहीं आयी सुमन। डॉ० ओछेलाल उसकी ओर मुड़ कर बोले।

—सर, कल रेडियो में एक टॉक की रेकार्डिंग थी। इसीलिए···

—अरे, कम से कम घर में फोन तो कर देती।···थापा, सुमन झा हमारी रिसर्च स्टुडेंट हैं। यू० जी० सी० स्कॉलरशिप मिल रहा है इन्हें···।

थापा सुमन की तरफ देखकर मुस्करा दिया। —ये विश्वास थापा है···।

—विश्वास नहीं सर, विश्वेश्वर थापा। थापा ने डॉ० ओछेलाल की गलती को ठीक करने की नीयत से कहा।

—अरे एक ही बात है। अभी नए-नए हो। नाम याद करने में भी तो वक्त लगता है। साल भर तक हम सुमन को भी कुसुम कहकर ही बुलाते रहे थे···। और जैसे उन्होंने कोई बड़ा मजाक कर दिया हो, ये खुद ही हँस पड़े। थापा को भी मुस्कराना पड़ा।

—अच्छा थापा, तुम चलो···।

थापा के लिये कोई विकल्प नहीं रह गया था। उठते-उठते उसने सुना—तुम एक मोटी रूप रेखा बना लो, बाद में हम देख लेंगे।

—जी···।

दरवाजे की ओर देखकर और निश्चित होकर कि थापा चला गया है, डॉ० ओछेलाल सुमन की ओर मुड़े···।

—जानती हो, हम हफ्ते भर से तुम्हारी राह देख रहे हैं।

—मेरा कुछ काम आगे बढ़ा? सुमन ने डॉ० ओछेलाल की आँखों में सीधे देखकर सीधा-सा प्रश्न कर किया।

—प्रो० जैन को दिया है तुम्हारा लास्ट चैप्टर लिखने को। पिछले शनिवार

को आने वाला था—नहीं आया। अब पूरा करके ही लायेगा। हमने पिछली बार खूब डांट पिला दी है उसे···।

—वह तो आप दो महीने से कह रहे हैं।

—सुमन, तुम समझती क्यों नहीं। थीसिस का काम धीरे-धीरे होता है। वह कोई नोट्स तो है नहीं कि चार दिन में पूरी किताब लिख दी जाये।

—सर, ढाई साल तो हो गया है। बस, स्कालरशिप और छह महीने मिलेगी। उसके बाद तो यूजीसी···।

—यू० जी० सी० नहीं देगी तो हम तो नहीं मर गये···वैसे तुम्हारी थीसिस तो अगले महीने तक पूरी हो जायेगी। फिर किसी जुनियर कॉलेज में लगवा ही देंगे।

—हमें जूनियर कॉलेज में नहीं चाहिये नौकरी···जायेंगे तो सीनियर कॉलेज में जायेंगे।

—अच्छा बाबा, अच्छा। कल क्या कर रही हो······।

—कुछ नहीं।

—हम दो बजे तक घर में हैं।

—ठीक है, हम आ जायेंगे।

—दैट्स गुड ! डॉ० ओछेलाल ने चपरासी को बुलाकर दो कप स्पेशल चाय लाने के लिये कह दिया।

पाँच

प्रो० जैन लाइब्रेरी की सीढ़ियों पर बैठे मिसेज नीला की प्रतीक्षा कर रहे थे। नीला ने ढाई बजे आने के लिये कहा था। अब पौने तीन बज रहे थे। प्रतीक्षा में समय किस तरह रुक जाया करता है, वह सोच रहे थे। तभी सामने से नीला झूमती हुई आती दिखाई दी। हमेशा की तरह कंधे पर लम्बा झोला लटका हुआ था। नीला को देखकर डॉ० जैन के हृदय की धड़कन बढ़ गयी। उन्होंने जेब से अपना मुचड़ा हुआ रूमाल निकाला और अपने चेचकी चेहरे को पोंछ लिया।

—बहुत देर कर दी ? नीला के पास आने पर उन्होंने कुछ शिकायती लहजे में कहा। लेकिन शिकायत करते हुये भी उनके चेहरे पर चिरपरिचित मुस्कान झाँक रही थी।

अपनी मुस्कान को वे तुरुप के पत्ते की तरह इस्तेमाल करने में सिद्धहस्त थे।

उनकी कुछ और भी विशेषताएँ थीं। उनका व्यक्तित्व चिकने घड़े के समान था। उस पर व्यंग्यों, आलोचनाओं और यहाँ तक की गालियों की वर्षा तक का कोई असर नहीं होता था। डॉ० शीतांशु ने उन्हें कई बार दूसरे अध्यापकों के सामने बुरी तरह लताड़ दिया था। यहाँ तक कि बड़े-बड़े अपशब्द भी कह डाले थे लेकिन प्रो० जैन ने उन सब को अपनी मुस्कान पर झेल लिया। और जब भी वह डॉ० शीतांशु से मिलते, मुस्करा कर मिलते और उनके गले में बाहें डाल देते। डॉ० शीतांशु उनकी इस अदा पर कुढ़ कर रह जाते थे। आखिर बेशर्मों के सामने हर कोई नंगा तो नहीं हो सकता।

अपने वरिष्ठ सहयोगियों से प्रो० जैन 75 डिग्री के कोण पर झुक कर बात करते। सामने वाला उनकी विनम्रता से अभिभूत हो जाता। युवतियों को पटाने के मामले में भी उनकी विनम्रता और मृदुता बड़े काम आती। मिसेज नीला भी उनकी इन्हीं विशेषताओं पर मर मिटी थी। वह बी० ए० के दिनों से उनकी विद्यार्थिनी थी और एम० ए० करने के बाद उन्हीं के सहयोग से उनके विभाग में भी लग गयी थी। अब वह उनके निर्देशन में पिछले छह वर्षों से रिसर्च कर रही थी। वैसे प्रो० जैन ने ये सभी गुर डॉ० ओछेलाल से तभी सीख लिये थे जब वह कॉलेज में उनके विद्यार्थी थे और बाद में उसी कॉलेज में प्रोफेसर भी हो गये थे। प्रो० जैन के प्रो० ओछेलाल से वही सम्बन्ध थे जो मिसेज नीला के प्रो० जैन से थे। या प्रोफेसर ओछेलाल के डॉ० कृष्ण कांत वाजपेयी से थे। फर्क सिर्फ दशाओं और दिशाओं का था।

प्रो० जैन की एक अदृश्य पूँछ भी थी जो प्रकटत: चड्ढी और पेंट के नीचे छिपी रहती थी। उसका उपयोग वह विशेष मौकों पर ही करते थे। ऐसे मौकों पर अपनी सुविधा के अनुसार कभी वह ढ़ीली पेंट के पांयचों के साथ एकाकार हो जाती थी और कभी बाहर निकल कर नब्बे डिग्री का कोण बनाती हुई सीधी तन जाती थी। खाली वक्त में वह लाइब्रेरी की सीढ़ियों को साफ करने के काम में आती थी। सीढ़ियों को साफ करने के बाद वे रास्ता चलते किसी सींगदाने वाले से 25-25 पैसों की दो पुड़िया खरीद लेते और साफ की हुई जगह पर बैठ कर एक पुड़िया में से एक-एक दाना डूंगते हुए मिसेज नीला की प्रतीक्षा करते रहते। दूसरी पुड़िया नीला के लिए होती थी—उसे वे सावधानी से अपने झोले में रखे रहते थे।

अपनी पुड़िया से आखिर दाने निकालते हुये उन्होंने उन्हें हथेली में सजा कर नीला को परोस दिया। अपनी मोटी अंगुलियों से एक दाना उठाते हुए नीला बोली—टिकट रिजर्व कराए ?

—बिल्कुल। प्रो० जैन धीरे से बोले। पास से एम० ए० के दो-तीन विद्यार्थी गुजर रहे थे।

—तो फिर बैठे क्यों हैं ?

—पिक्चर साढ़े तीन की है। टैक्सी में मुश्किल से पाँच मिनट लगेंगे।

—टैक्सी में जाना जरूरी है क्या ?

—पैदल चलोगी ?

—और क्या ? आज धूप भी ज्यादा नहीं है। वैसे टैक्सी भी की जा सकती है।

—ठीक है, तुम बैठो, मैं अभी आया।

—कहाँ जा रहे हो ? अध्यक्ष जी के पास•••।

प्रो० जैन मुस्करा दिए। उन्होंने सोचा, नीला अब काफी समझदार होती जा रही है। इन दिनों प्रो० जैन के लिये विभाग के तीन-चार चक्कर लगाना जरूरी हो गया था। पता नहीं, डॉ० ओछेलाल को कब कौन-सा काम पड़ जाये। इन दिनों थोड़ी सी साधना कर ली और डॉ० ओछेलाल को खुश रखा तो भविष्य में उनका भी रीडर बनने का नम्बर लग सकता है। वैसे वह डॉ० ओछेलाल के खिदमतगार तो अपने विद्यार्थी काल से ही थे, आज कल उनकी जिम्मेदारी कुछ ज्यादा बढ़ गयी थी—अब वह उनके बिचौलिये का काम भी कर रहे थे और उनके गुप्तचर विभाग के सरगना भी बने हुये थे।

मिसेज नीला की पुड़िया अभी आधी भी नहीं हुई थी कि प्रो० जैन लौट कर आते दिखाई दिए।

—क्या हुआ ? बड़ी जल्दी लौट आये। मिसेज नीला ने अपना झोला संभालते हुये पूछा।

—डॉक्टर साहब अभी डिपार्टमेंट में आये ही नहीं है। पता नहीं क्या बात है। क्या पता, कहीं नर्सिंग होम में तो दाखिल नही हो गये।

—तो घर या नर्सिग होम में फोन करके देख तो। नीला ने सुझाया।

—बाद में देखेंगे। तुम उठो। फर्स्ट शो के टिकट खरीद रखे हैं। फोन करने पर कहीं इसी वक्त बुला लिया तो पिक्चर धरी रह जायेगी। कितने दिनों बाद तो मौका मिला है······गुरुजी की सेवा तो बाद में भी हो जायेगी···।

नीला उठ खड़ी हुई। उन्होंने अपनी साड़ी को झाड़ा। पीछे से ब्लाउज के भीतर का हुक ठीक किया। बालों पर हाथ फेरा। गर्दन सीधी की और धीरे-धीरे प्रो० जैन के पीछे चलने लगीं। प्रो० जैन ने सड़क पर आकर एक टैक्सी रोक ली और उसका दरवाजा खोल कर साइड में खड़े हो गये। मिसेज नीला ने एक क्षण के लिये इधर-उधर देखा और फिर जल्दी से टैक्सी में बैठ गयी। टैक्सी में चढ़ते हुये उनकी भरी और कसी हुई पिंडलियों पर से साड़ी और पेटीकोट दोनों उठ गए थे उन खुली पिंडलियों को अपनी पनीली आंखों में भर कर प्रो० जैन भी नीला के बराबर में धसक कर बैठ गये। टैक्सी थियेटर 'मल्हार' की दिशा में दौड़ने लगी।

—आज कल मिसेज सोफिया अध्यक्ष जी के आगे-पीछे कुछ ज्यादा ही घूम रही है। बात क्या है ? नीला ने प्रो० जैन की अंगुलियों में अगुलियाँ फंसा कर पूछा।

—मिसेज सोफिया की बहु ने इस साल एम० ए० में एडमिशन लिया है। तुम्हें पता नहीं ?

—तुमने कभी बताया ही नहीं। अच्छा तो यह बात है।

—सिर्फ यही बात नहीं है।

—फिर ?

—बात यह है कि मिसेज सोफिया दो-तीन साल बाद रिटायर होने वाली हैं। रिटायर होने के बाद कॉलेज का फ्लैट भी छोड़ना पड़ेगा। सोफिया चाहती हैं कि उससे पहले उनकी बहू रानी अच्छी पोजीशन लेकर एम० ए० कर ले। रिटायर-मेंट के बाद वह उसे अपनी जगह पर लगवा देंगी तो फ्लैट नहीं छोड़ना पड़ेगा।

—तभी तो। मैं भी सोचूँ कि इस बुढ़ापे में मिसेज सोफिया को यह क्या सूझी।

—तुम्हें पता नहीं, मिसेज सोफिया से अध्यक्ष जी के बहुत पुराने सम्बन्ध हैं। उन्होंने ही इन्हें कॉलेज में लगवाया था। हालाँकि इसी कॉलेज के लिए मिसेज ओछेलाल भी कैंडीडेट थी।

—और उन्होंने अपनी पत्नी के बदले इन्हें······।

—तब इतनी मुश्किल नहीं थी। हिन्दी में लोग मिलते ही नहीं थे। उन्होंने पत्नी को दूसरे कॉलेज में लगवा दिया। चार साल बाद वह वहाँ हेड हो गयी। मिसेज सोफिया को तो बारह साल लग गए हैड बनने में।

—एक बात है। डॉ० ओछेलाल की रणनीति बड़ी मार्के की होती है।

—उनकी हर चीज बड़े मार्के की होती है। कहते हुए प्रो० जैन को महसूस हुआ कि जैसे उनकी पृष्ठभूमि में कोई कड़ी चीज चुभन पैदा कर रही है। वह जरा से उचके और मिसेज नीला से और भी सट कर बैठ गए। उन्हें लगा कि अब उन्हें आराम मिल रहा है। उनके चितकबरे होठों पर एक शरारती मुस्कराहट फैल गयी।

थियेटर 'मल्हार' नजदीक आ रहा था।

पिक्चर छोटी थी जल्दी ही खत्म हो गयी।

हॉल से बाहर निकलते हुए नीला ने अपने बालों को ठीक किया और सीधे टॉयलट में घुस गयीं। प्रो० जैन आगामी पिक्चर के पोस्टरों को देखते हुए उनके लौट आने की प्रतीक्षा करने लगे।

बाहर सड़क पर आकर मिसेज नीला ने घड़ी देखी—अभी साढ़े पाँच ही बज रहे थे।

—एक कप चाय हो जाये। प्रो० जैन का सुझाव था।

—चाय तो मैं भी पीना चाह रही थी। सर में दर्द सा हो रहा है।

—मेरे पास सेरिडॉन है। पहले सेरिडॉन ले लो। बाद में चाय पी लेंगे।

सड़क पार करते हुए प्रो० जैन ने मिसेज नीला का हाथ थाम लिया। एक कार नीला की साड़ी को छूती हुई निकल गयी।

सामने के रेस्तरां में जाकर दोनों कोने की एक चौकोनी मेज पर बैठ गए। मेज पर रखे गिलास से नीला ने एक घूँट के साथ सेरिडॉन की एक टिकिया गटक ली और फिर माथा पकड़ कर बैठ गयी। इस समय उसके श्यामल चेहरे पर विषाद की रेखा साफ दिखाई पड़ रही थी।

—तुम कुछ उदास सी लग रही हो।

ऐसी तो कोई बात नहीं है। मिसेज नीला ने बात टालने की गरज से कहा—बस, थोड़ा सर भारी हो रहा है।

—हॉल में भी तुम अनमनी सी ही थीं।

—तुम्हें ऐसा लगा होगा। दरअसल, ऐसी कोई बात नहीं थी।

मैं कई दिनों से तुममें यह बदलाव देख रहा हूँ। बताओ न क्या बात है।

मिसेज नीला ने कोई जवाब नहीं दिया। बस, सामने रखे पानी के गिलास पर नाखूनों से रेखाएं खींचती रहीं।

—नीला ?

बेयरा चाय की ट्रे रख गया था नीला अभी भी खामोश ही थीं।

—बोलो न।

इस बार नीला ने प्रो० जैन की ओर देखा। प्रो० जैन की आँखें नीला की बिंदी पर गड़ी थीं।

—बोलो न नीला।

मिसेज नीला ने गरदन झुका ली। फिर धीरे से बोलीं—इन दिनों घर में टेंशन कुछ ज्यादा ही बढ़ गयी है।

—अनंत को शक है क्या ?

—कुछ कह नहीं सकती।

—फिर……।

—उससे बोल-चाल ही नहीं हो पाती। वह ज्यादातर गुमसुम पड़ा रहता है। मैं अपनी तरफ से बहुत कोशिश करती हूँ उसे एक्टीवेट करने की। लेकिन मैं भी कितना करूँ……।

प्रो० जैन कुछ नहीं बोलते। बस, नीला को देखते रहते हैं। चश्मे के भीतर से झांकती हुई उनकी आँखों में इस समय एक हल्के से प्रश्न के अलावा और कुछ नहीं है।

नीला ने चाय का प्याला तैयार करके प्रो० जैन की ओर बढ़ा दिया।

—कुछ खाओगी ?

—नहीं, कुछ खाया तो उल्टी हो जायेगी।

प्रो० जैन धीरे-धीरे अपने प्याले की चाय सुड़कने लगे। चाय सुड़कते हुए वे काफी आवाज करते थे।

वे दोनों काफी देर तक वहाँ बैठे रहे। दोनों को लग रहा था कि वे बहुत थक गए हैं।

बेयरा दो बार उनकी मेज के पास आ चुका था। इस बार जब उसने पास आकर प्रो० जैन की ओर देखा तो जैसे नीला होश में आ गयी। उन्होंने पर्स खोल कर एक पाँच का नोट बिल के बराबर में रख दिया।

बेयरा बिल की प्लेट उठा कर ले गया।

—चलें। बहुत थकी हुई आवाज में नीला ने उठने का उपक्रम करते हुए कहा।

बिना कुछ कहे प्रो० जैन धीरे से उठे और बाहर निकल आए। नीला भी उनके पीछे-पीछे आ गयी।

इस समय तक सड़कों की बत्तियां जल चुकी थीं। नीला ने घड़ी में देखा सात हो रहे थे।

—आज फिर देर हो गयी।

—चलो, मैं तुम्हें स्टेशन तक छोड़ आता हूँ।

—नहीं, मैं टैक्सी कर लूँगी।

—कल सुबह का लेक्चर है ? प्रो० जैन ने पूछने के लिए पूछ लिया।

—दूसरा लेक्चर है। सवा आठ बजे का। कहते हुए उसने पास से गुजरती टैक्सी को रोक लिया। और प्रो० जैन को इशारा करके टैक्सी में बैठ गयी।

टैक्सी कुछ दूर आगे बढ़ कर क्रासिंग पर रूक गयी।

प्रो० जैन उस समय तक टैक्सी को देखते रहे जब तक टैक्सी हरे सिगनल के बाद स्टेशन की ओर नहीं मुड़ गयी।

बाद में उन्हें ध्यान आया, उन्हें भी अपने घर जाना है। घर जाकर अध्यक्ष जी को फोन करेंगे। परसों बोर्ड की मीटिंग है। अगले साल के लिए नयी पाठ्य-पुस्तकें निर्धारित करनी हैं। हो सकता है, अध्यक्ष जी के दिमाग में कुछ किताबें और कुछ प्रकाशक हों।

यह सोचते हुए प्रो० जैन के कदम तेजी से बस-स्टॉप की तरफ बढ़ने लगे।

●

छह

बोर्ड की मीटिंग के बाद डा० ओछेलाल, डा० तिवारी को लेकर अपने विभागीय चैम्बर में आ गए। अपनी रिवाल्विंग कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने कहा—आज प्रो० जैन ने कमाल कर दिया। चार में से तीन किताबें हमारे प्रकाशकों की लग गयीं। क्या रणनीति अपनायी उस छोकरे ने।

—सर चौथी भी अपनी ही लग जाती। वह तो ऐन मोके पर प्रो० राधा-रमण टॉयलेट के लिए चले गए।

डा० ओछेलाल ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। बस, अपनी कुर्सी पर दायें-बायें होते रहे।

—आप अक्टूबर की छुटिट्यों में बनारस जा रहे हैं क्या ?

—इस बार तो जाना ही पड़ेगा। लड़की के लिए कुछ लड़के देखने हैं······।

—क्यों एक लड़के से काम नहीं चलेगा।

डा० तिवारी 'ही-ही' करके हँसने लगे।

—अगर बनारस जायें तो शारदा प्रेस वालों से कहिए कि हमारी पांडुलिपि को पड़े तीन महीने से ज्यादा हो गये हैं। हम हर साल उनकी कोई न कोई किताब अपने यहाँ लगवाते हैं। जब से हम इस कुर्सी पर बैठे हैं। हमने उन्हें हमेशा ओब्लाइज किया है। और तीन महीने हो गए, हमारी ही किताब नहीं छाप रहे।

—उनका तो बाप भी छापेगा सर। नहीं छापेंगे तो जायेंगे कहाँ ?

—और उनसे पिछली किताबों के हमारे कमीशन की भी बात कीजिए। पिछले साल उनकी दो टैक्स्ट बुक्स लगी हैं और हमने विभाग के लिए बीस हजार की जो किताबें खरीदी हैं, सो अलग से।

—उसका तो मुझे ध्यान है।

—चाय पियेंगे, तिवारी जी······।

—जी नहीं, आज बहुत चाय हो गयी। और अभी तो मुँह में पान भी है।

उन्होंने अपना मुँह खोल कर दिखा दिया।

—डा० साहब, एक्सपर्टस का कुछ पता लगा। इन्टरव्यू कब तक हो रहे हैं।

डा० तिवारी की बात सुनकर ओछेलाल के होठों पर मुस्कान बिखर आयी। कुर्सी पर तेजी से घूम कर वे आराम करने की मुद्रा में हो गए और बोले—हमने आज तक कच्ची गोलियाँ खेली ही नहीं तिवारी जी। हमारे सारे प्लान फूलप्रूफ होते हैं।

डा० तिवारी उनके दमकते चेहरे को ताकते रहे।

डा० ओछेलाल आगे बोले—अभी पिछले हफ्ते ही वी० सी० ने हमको बुलाया था। एक्जीक्यूटिव कांसिल ने जिन पाँच नामों को रिकमंड किया था, उनकी लिस्ट हमारे सामने रख दी। बोले—कहो, किन-किन को चाहते हो।

इतना कहकर डा० ओछेलाल ने एक रहस्यपूर्ण चुप्पी साध ली।

डा० तिवारी की उत्सुकता को चरम बिंदु पर पहुँचाने के बाद वह बोले—हमने कहा, आप जिसे चाहें, बुला लें। कुछ सीनियर लोग हों तो अच्छा लगेगा। वह बोले—लक्ष्मीबाई विश्वविद्यालय के वी० सी० का नाम भी सूची में है। इनसे तुम्हारे सम्बन्ध ठीक हैं न।

हमने कहा—सर, हम तो बीस साल से विश्वविद्यालय में हैं। देश के हर विद्वान से हमारा परिचय है। आप खुशी से उन्हें रख सकते हैं। और वी० सी० ने उनके नाम के आगे 'टिक' कर दिया।

डा० तिवारी खुशी से उछल पड़े।

—अब तो मैदान मार लिया आपने। पहली बधाई मेरी लें।

—तिवारी जी, इतना ही नहीं अपना बौड़म डा० बलजीत नाहर और डा० सोम प्रसाद के नाम भी फाइनेलाइज हो गए हैं।

—डा० सोम प्रसाद कौन···क्या बनारस वाले······।

—अरे हाँ भई, डा० सत्येन्द्र जी से पूछा था हमने, उन्होंने इनका नाम सुझा दिया। बोले—यह गऊ आदमी है। लेकिन न इसके पूँछ है, न सींग। बस शुद्ध रूप से शाकाहारी है। हम जो कह देंगे, वही करेगा। सो हमने गुरु रामदास कॉलेज के डा० सुरजीत से इनका नाम प्रोपोज करा दिया। हमने वी० सी० से कहा कि राजधानी से भी एक एक्सपर्ट तो होना ही चाहिए। बस हमारे कहने भर की देर थी। वी० सी० की जीवनी लिखना काम आया कि नहीं······हम जानते थे, पोस्ट आने वाली है। वी० सी० को अपने कब्जे में रखो—सब ठीक हो जायेगा······।

—आपका जवाब नहीं है।

डा० ओछेलाल थोड़ा-सा हँस दिये। उनके चेहरे पर वी० सी० से भी बड़े होने का भाव झलक रहा था।

—सर, आपसे एक बात पूछने की सोच रहा था। अपने चक्की वाले की थीसिस सबमिट होने वाली है।

—ठीक है, उसकी सिनॉपसिस बोर्ड की अगली मीटिंग में रखवा देंगे।

—मैं एक्सपर्टस को एप्वाइन्ट करने की बात......।

—बोलो, किस-किस को चाहते हो ?

—मेरा भतीजा भदोई में एक कॉलेज में है। डा० रामलाल तिवारी विभागीय अध्यक्ष है। उसकी बड़ी लड़की की शादी है। सामान खरीदने के लिए बम्बई आना चाहता है। अगर......।

—ठीक है, उसे रख देंगे। पहला नाम रख देंगे उसका। वाइवा के लिये बुला लेंगे। और ?

—दूसरा नाम किसी का भी रख लीजिये। आप को तो सब जगह जान-पहचान है।

—आगरे के पुरुषोत्तम शर्मा को रख देंगे। अपना विद्यार्थी है। वह भी खुश हो जायेगा।

—ठीक है सर ! तो मैं अगले हफ्ते उसकी सिनॉपसिस सबमिट करवा देता हूँ।

—ठीक है तिवारी जी, आप हमारे अपने आदमी हैं। इन छोटी-छोटी बातों के लिये क्यों चिंतित होते हैं। आपके सहयोग से ही तो विभाग चल रहा है। नहीं तो डॉ० शीतांशु और उसके एक-दो चमचे हमारा जीना हराम कर देते।

—आप निश्चित रहें सर। शीतांशु को तो हम कैम्पस में भी देख लेंगे और बाहर सड़क पर भी।

—बस, आपके साथ यही तो मुश्किल है तिवारी जी। आप जोश में जल्दी आ जाते हैं। एक स्तर पर पहुँचने के बाद हमें डिप्लोमेसी से काम करना सीखना चाहिये। सड़क वाली बात हमारे-आपके स्तर की नहीं है। इस मामले में प्रो० जैन आपसे ज्यादा मैच्योर हैं। डॉ० कन्हैया प्रसाद भी।

डा० तिवारी ने कुछ बोलना चाहा लेकिन बोल नहीं पाये। बस, सिर नीचा किए मुँह के पान को चुबलाते रहे।

—तिवारी जी, जिस व्यक्ति को सिर्फ उपेक्षित करके काम निकल सकता है, उसके लिए हाथ-पांव चलाने की जरूरत ही क्या है। अगर डा० शीतांशु अपने स्तर से नीचे आता है, उसे आने दो। हमें सत्तासीन नेताओं की नीति अपनानी चाहिए। वे जानते हैं, जनता कुत्ती है। वह भौंकती रहती है। विपक्ष भौंकता

रहता है। उन्हें भौंकने दो। अपना काम करते चलो। अब देखिए, परीक्षकों का पैनल बनाने वाली कमेटी में सभी हमारे आदमी हैं। टैक्स्ट बुक रिकमैंड करने वाली समिति में भी प्रो० अयोध्या प्रसाद को छोड़कर सभी अपने हैं। है कि नहीं। इस लिए हम जो चाहेंगे, वही होगा।

—……।

—आपने देखा, उसे दस साल तक रिसर्च गाइड नहीं होने दिया। अभी तक उसे एम. ए. तो क्या बी. ए. की एकजामिनरशिप भी नहीं दी। एम. ए. की टीचिंग पांच साल तक रोक ली। बाद में भी, अभी तक इन्टरनल टैस्ट में उसे एसाइनमेंट्स जांचने के लिये नहीं दिए गये। आखिर, हमने यह सब डिप्लोमेसी से ही किया न। लिखता रहे किताबें, बढ़ाता रहे अपनी पेपर क्वालिफिकेशन, करता रहे रिप्रिजेंटेशन यूनिवर्सिटी को—क्या होता है उससे—और मैं पूछता हूँ, क्या उखाड़ लिया उसने हमारा तुम्हारा या किसी और आदमी का। आप तो खामख्वाह जोश में आ जाते हैं।

—उसके अन्डर की किसी थीसिस को रिजेक्ट करवा दीजिये। बस मजा आ जायेगा।

—वह भी हो जायेगा तिवारी जी। ऐसी जगह फंसवा दूंगा कि साल भर तक तो रिपोर्ट ही नहीं आयेगी और जब आयेगी तो अपना सिर ही धुन लेगा। सारी हेकड़ी धरी रह जायेगी। तुम जरा पता लगाओ, उसका सबसे मुँह लगा रिसर्च स्कॉलर कौन है। बाद में हम सब देख लेंगे।

तभी फोन की घंटी घनघना उठी। डॉ० ओछेलाल ने चौंगा उठा लिया और बहुत मासूम लहजे में बोले—हलो……

—जी, मैं बोल रहा हूँ। डॉ० आलोक।

—…………।

—जी………।

—…………।

—जी………।

—…………।

—जी………।

—…………।

—जी………।

—जब आप कहें……।

—…………।

—ठीक है सर।

—············।

—जी·········।

—············।

—जी, हाँ······।

—············।

—ठीक है सर, ।

शायद दूसरी तरफ से फोन कट गया था। डॉ० ओछेलाल ने फोन रख दिया।

—किसका फोन था। तिवारी जी ने पूछा।

—गवर्नर के पी. ए. का था। ये लोग ऐसे ही बोर करते रहते हैं। इनकी कोई कैंडीडेट है। हिस्ट्री में लेक्चररशिप के लिये एप्लाई किया है। हमसे कह रहे थे, हैड आपका दोस्त है, जरा देख लें। अब दोस्ती का यह मतलब होता है क्या कि हम कि हम किसी भी ऐरे गेरे नत्थू खेरे को रिकमंड कर दें। लेकिन क्या करें तिवारी जी, कुर्सी पर बैठे हैं तो यह सब करना ही पड़ता है। कौन नहीं करता।

—सो तो ठीक है डॉक्टरसाब। फिर इन लोगों से सम्पर्क बनाये रखने का अपना महत्व है।

हमारे लिये क्या महत्व है तिवारी जी। जब हमारी डाइरेक्ट एप्रोच मिनिस्ट्री तक है तो गवर्नर के पी. ए. की क्या बिसात है। वैसे आपका कहना भी ठीक है—हमेशा तो मिनिस्ट्रों को एप्रोच नहीं करना चाहिये न······।

—आप तो केन्द्र में भी कई मिनिस्टरों को जानते हैं।

—जानते हैं ? अरे बलिया का सुरेन्द्रजीत अपना लंगोटिया है। एक क्लास जूनियर था हमसे। हमारे नोट्स लेकर तो उसने बी. ए. किया। नहीं तो अभी तक अंग्रेजी के पेपर में लटका रहता। और वह—क्या नाम है उसका ? किदवई का लड़का ? आजकल फाइनेंस में चीफ सेक्रेट्री है। अरे वही, हाँ, अहसान किदवई। एक फोन कर दो, पहली फ्लाइट से दौड़ा आएगा। यह तो संयोग है कि यहाँ डिपार्टमेंट में पड़े हैं। सिर्फ इसलिये तिवारी जी कि हम इंडिपेन्डैन्ट रहना चाहते हैं। नहीं तो कब के कहाँ पहुँच गये होते। पिछली बार किदवई यहाँ आया था, संजयनगर वाला प्लाट दिलवा गया। अब बतलाइये, ढाई हजार स्क्वेयर यार्ड्स का प्लाट पांच हजार में मिल सकता है क्या ? हमने भी सोचा ले लो, काम आएगा। अब हमारे बड़के वहाँ फैक्ट्री लगाने की सोच रहे हैं······

—हाँ, डॉक्टर साहब, अविनाश बेटे की शादी कब कर रहे हैं। अब तो उसे इंजीनियर हुए भी दो-ढाई साल हो गये। सीमेन्ट जैसी कम्पनी में लगा है·········।

—कर लेंगे। जल्दी क्या है। जरा, इस इन्टरव्यू से निपट लें तो सोचेंगे। कश्मीर तक से ऑफर आये हैं। दहेज में सेवों का बगीचा देने को कह रहे हैं। वैसे लकड़ियों के थोक व्यापारी हैं। लड़की एम. बी. ए. कर रही है।

—इंटरव्यू तो फॉरमेलिटी है डॉक्टर साहब......आपको यह पोस्ट तो सालों पहले मिल जानी चाहिये थी।

डॉ० ओछेलाल के चेहरे पर एक हल्की सी रेखा खिंच आयी। वह उस कटु प्रसंग को याद नहीं करना चाहते थे। फिर भी उनके गले में डॉ० शैलेन्द्र के प्रति एक बड़ी सी गाली आकर अटक गयी।

सात

आज बहुत दिनों बाद डॉ० शीतांशु कैम्पस में आए थे। बोर्ड की मीटिंग थी। पहली दो-तीन मीटिंगों में नहीं जा पाये थे। इस बार सोचा, चलो, देख आएँ, क्या चल रहा है।

मीटिंग में अभी कुछ देर थी। फ्रैश होने के लिए वह टॉयलट में चले गये। वह हल्के हो ही रहे थे कि तभी उनके बराबर में ऑफिस का कोई कनिष्ठ अधिकारी आकर खड़ा हो गया।

—गुड मॉर्निंग सर। उसने डॉ० शीतांशु की तरफ मुस्करा कर कहा।

डॉ० शीतांशु ने जिप खींचते हुए, सर हिला दिया। और हाथ धोने के लिए वाश-बेसिन की ओर बढ़ गए।

अधिकारी निपट कर उनके पीछे आकर खड़ा हो गया।

—आज बोर्ड की मीटिंग है क्या सर ! उसने पूछा।

—हाँ, ग्यारह बजे से है।

—आपने भी तो प्रोफेसरशिप के लिए एप्लाई किया है। वह डा० शीतांशु की ओर देखते हुए मुस्करा दिया।

—अरे, आपको भी इसका पता चल गया।

—युनिवर्सिटी में रहते है सर, तो बातें कानों में पड़ ही जाती हैं। डॉ० शीतांशु चुप रहे।

—आपको अपने एक्सपर्ट्स के बारे में मालूम चल गया सर। उसने डा० शीतांशु को कुरेदा।

—नहीं तो ? उनके नाम फाइनल हो गए हैं क्या ?

—कभी के सर।

उसके स्वर में कुछ ऐसा भाव था कि अगर अभी तक उन्हें एक्सपर्ट्स के नामों के बारे में मालूम नहीं है तो क्या खाकर इन्टरव्यू देंगे।

डा० शीतांशु कुछ सोचते हुए टायलट से बाहर निकलने लगे।

—मेरा नाम राठौड़ है। गोपाल सिंह राठौड़। आपने शायद मुझे पहचाना नहीं। मैं आपका स्टुडैंट रह चुका हूँ।

—अच्छा····। डा० शीतांशु के चेहरे पर एक हल्की सी चमक आ गयी।

—आपकी मीटिंग कब तक चलेगी सर। उसने पूछा।

—ज्यादा से ज्यादा बारह बजे तक।

—अगर आपको जल्दी न हो तो मीटिंग के बाद रूम नं० 435 में आ जाइए। शायद मैं आपकी कुछ मदद कर सकूँ।

डा० शीतांशु ने मुस्करा कर सहमति में सर हिला दिया और मीटिंग के लिए कांफ्रेंस हाल की तरफ बढ़ गए।

कांफ्रेंस हाल में जाकर डॉ० शीतांशु ने देखा—सामने की मेज पर मोतीचूर के लड्डुओं के दो बड़े-बड़े डिब्बे रखे हैं और सदस्यगण आपसी चुहल में लगे हैं। अध्यक्ष ओछेलाल अपनी कुर्सी में विराजमान हैं और अपनी बगल में बैठे डॉ० बी. जे. को धीमी आवाज में कुछ समझा रहे हैं।

डॉ० बी. जे. बोर्ड के को-ऑपटेड मेम्बर थे। अपने विश्वविद्यालय से पिछले दिनों अवकाश प्राप्त कर चुके थे। इन दिनों उनका अधिकांश समय विभिन्न बोर्डों की मीटिंगों में जाने, नियुक्तियाँ करने और सलाह देने में बीतता था। अपने सेवा काल में उन्होंने थोड़ा-बहुत लिखा-पढ़ा था और उसे स्वीकृति भी मिली थी। लेकिन बाद के सालों में वह भी भ्रष्टाचार–सिंडीकेट के मेम्बर हो गये थे और उनकी कृपा से बीसियों अध्ययन विरोधी और जोड़-तोड़ में दिन-रात व्यस्त रहने वाले अध्यापक अनेक विश्वविद्यालयों में विभागाध्यक्ष और प्रोफेसर, बन गये थे और अब अपने पद को भुनाने में लगे हुए थे।

डॉ० शीतांशु ने उनकी ओर मुस्करा कर अभिवादन किया और बोले—आप भी आ गए डाक्टर साहब। कब आए ?

डॉ० बी० जे० ने एक क्षण के लिए डॉ० शीतांशु को देखा और अपनी आँखें झुका लीं। अभिवादन का उड़ता-सा उत्तर-देते हुए वह फिर डॉ. ओछेलाल से बातें करने में मशगूल हो गए।

मेज के कोने पर एक कुर्सी पर बैठ कर डॉ. शीतांशु ने पास बैठे एक सहयोगी सदस्य से पूछा—ये लड्डू कैसे हैं भई ?

तभी प्रो. पावसकर उनकी तरफ एक डिब्बा बढ़ाते हुए बोले—डा० साहब, मुझे पी-एच. डी. मिली है। उसी की खुशी में···आपका आशीर्वाद ···।

मेरे आशीर्वाद से तो गालियाँ मिलती हैं पावसकर भाई, पी-एच. डी. नहीं। खैर···बधाई स्वीकारो, और उन्होंने एक लड्डू में से टुकड़ा तोड़ने के लिए हाथ बढ़ाया।

—पूरी लीजिए न सर।

—नहीं भाई, धन्यवाद। डाइबिटीज है। मीठा खाना मना है।

—अच्छा, थोड़ा तो और। और प्रो० पावसकर ने एक बड़ा सा टुकड़ा जबरन उनके मुँह में डाल दिया।

तब तक कुछ और सदस्य आ चुके थे। कोरम पूरा हो चुका था।

—अच्छा, अब सबके मुँह मीठे हो चुके हैं। मीटिंग की कारवाई शुरू की जाय ? मुस्कराते हुए अध्यक्ष महोदय ने सदस्यों की ओर मुखातिब होकर कहा।

डा० वी. जे. ने उनकी ओर देखा और सीधे होकर बैठ गए। साथ ही धोती के छोर से उन्होंने अपनी नाक भी पोंछ ली।

उनकी इस क्रिया पर डा० शीतांशु के होठों पर मुस्कराहट फैल गयी और उनकी जबान से एक शब्द निकलते-निकलते रह गया— बिच्छू कहीं का···।

डा० वी. जे. को 'बिच्छू' नाम देना डा० शीतांशु का अपना आविष्कार था। वैसे विद्वानों की मंडली में उन्हें 'बिज्जू' के नाम से स्मरण किया जाता था।

कुछ क्षणों के बाद जब कमरे में खुसर-पुसर शांत हो गयी तो अध्यक्ष महोदय ने कहना शुरू किया—साथियों, आज डा० पावसकर ने शुरु में ही सब के मुँह मीठे करा दिए हैं, इसलिए मुझे उम्मीद है कि आज की सभा की तीसरी कार्यवाही भी मीठेपन के साथ पूरी हो जायेगी। वैसे अजेंडा में ज्यादा आइटम नहीं हैं। अगले सत्र में एम. ए. का पाठ्यक्रम तैयार करने के लिये एक उपसमिति का चयन करना है और कुछ शोध-प्रबन्धों के लिए परीक्षकों की नियुक्ति करनी है। बस···इसके बाद अगर कोई सदस्य और कोई बात रखना चाहता है तो···।

डा० शीतांशु ने साथ में लाया लिफाफा खोल लिया था। दो शोध-प्रबन्धों के लिए परीक्षकों की नियुक्ति करनी थी। उन्होंने अजेंडा के कार्यक्रम को पूरा पढ़ा भी नहीं था कि अध्यक्ष महोदय ने कहना शुरू कर दिया—

देखिए, यह पहला शोध मेरे ही निर्देशन में लिखा गया है। अगर आप कहें तो मैं इसके लिए परीक्षकों के नाम दे दूँ।

डा० जैन ने जोर की आवाज में इसकी हां भी भर दी। तभी एक अन्य सदस्य ने आगे जोड़ दिया—डा० साहब, यह भी कोई पूछने की बात है।

मुस्कराते हुए डा० ओछेलाल ने सामने रखे कागज के टुकड़े से नाम पढ़ना शुरु कर दिया।

डा० ज्ञानचन्द पाण्डेय, पटना विश्वविद्यालय और डा० श्यामनारायण गहलौत गोरखपुर विश्वविद्यालय।

इसके बाद वह थोड़ा रुके। उन्होंने सभा के सदस्यों के रुख को भाँपा और फिर डा० शीतांशु की ओर देख कर मुस्कराते हुए बोले—शीतांशु जी, तीसरा नाम सजेस्ट कीजिए न। डा० शीतांशु ने भी मुस्कराते हुए जवाब दिया—अध्यक्ष महोदय असली नाम तो आप ने रख ही लिए हैं। अब तीसरा एक्स्ट्रा नाम भी आप ही सुझा दीजिए।

आधे क्षण के लिए अध्यक्ष महोदय के चेहरे पर खिसियानी हँसी बिखरी। वे कुछ कहने जा ही रहे थे कि डा० गौतम राजवंशी ने एक नाम सुझा दिया—डा० साहब, जयपुर के डा० अविनाश चतुर्वेदी का नाम कैसा रहेगा ?

डॉ० ओछेलाल ने डॉ० राजवंशी की तरफ देखा—ठीक है डॉ० चतुर्वेदी ने भी इसी विषय पर शोध किया है। तो, आप लोगों की क्या राय है···?

—वही, जो आपकी है। डॉ० तिवारी ने अपने डाइ किए बालों पर हाथ फेरते हुए कहा।

डॉ० ओछेलाल ने राजवंशी का सुझाया नाम नोट करते हुए डॉ० बी० जे० की ओर देखकर कहा—डॉ० साहब, हमारे बोर्ड के सदस्यों में बड़ा सौहार्द है···आप देख ही रहे हैं न···।

डॉ० बी० जे० उर्फ डॉ० बिच्छू ने सहमति में अपनी गर्दन हिला दी और एक बार फिर अपनी धोती के छोर से पूरे चेहरे को पौंछ लिया।

—अपनी थीसिस डॉ० गयाप्रसाद पांडेय के निर्देशन में लिखी गयी है। मैं चाहता हूँ कि इसके लिए·····पहला नाम डॉ० शैलेन्द्र का रखा जाय।

डॉ० शीतांशु को लगा कि कहीं कुछ गलत हो रहा है। उन्हें मालूम था कि डॉ० गया प्रसाद की ओछेलाल से नहीं बनती। डॉ० शैलेन्द्र के पास थीसिस भेजने का मतलब था—कम से कम दो साल की खामोशी। उन्होंने कहा—डॉ० साहब, डॉ० शैलेन्द्र काफी बूढ़े हो गए हैं। अब कहीं आते-जाते नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि बेचारा कैंडिडेट लटक जाये।

—नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। यह आवाज़ डॉ० बिच्छू की थी, —वे अभी पिछले दिनों एक नियुक्ति के लिए पटना गए थे।

—जैसा आप ठीक समझें। डॉ० शीतांशु ने आगे बात बढ़ाना ठीक नहीं समझा।

डॉ० शैलेन्द्र का नाम नोट कर लिया गया।

—दूसरे नाम के लिए मैं ज्ञानचन्द्र गुलाटी का नाम प्रोपोज करता हूँ। —डॉ० दयाराम मिश्र बोले।

सभा में खामोशी छायी रही। डॉ० ओछेलाल ने यह नाम भी नोट कर लिया।

—और तीसरा नाम ? वे बोले।

—वह भी आप ही तय कीजिए। डॉ० शीतांशु ने व्यंग्य से मुस्कराते हुए कहा।

बड़ी देर तक किसी ने तीसरे नाम की कोई सिफारिश नहीं की। तब डॉ० ओछेलाल ही बोले—आप चाहें तो तीसरा नाम मेरे ऊपर छोड़ दीजिए। मैं याद आने पर खुद किसी योग्य व्यक्ति का नाम जोड़ दूँगा।

अध्यक्ष महोदय के इस प्रस्ताव का किसी ने कोई विरोध नहीं किया।

तभी अध्यक्ष महोदय की बगल में बैठे क्लर्क ने उठकर एक साइक्लोस्टाइल्ड पर्चा बांट दिया। डॉ० शीतांशु ने पर्चा लेकर पढ़ा। उसमें लिखा था कि डॉ०

ओछेलाल आलोक ने डी० लिट् के लिए जो पुस्तक सबमिट की है, उसे बोर्ड के सदस्यों के पास भेजा जा चुका है। उसके लिए भी परीक्षकों की नियुक्ति पर इसी दिन विचार कर लिया जाय।

मीटिंग में एक क्षण के लिए खामोशी छा गयी। कुछ देर बाद अध्यक्ष महोदय ने खड़े होकर कहा—मैं चाहता हूँ कि आप लोग सहानुभूतिपूर्वक मेरे शोध-कार्य पर भी परीक्षकों की नियुक्ति का निर्णय ले लें।

—लेकिन डॉक्टर साहब, आपकी अध्यक्षता में आपकी ही थीसिस पर परीक्षकों की नियुक्ति कैसे की जा सकती है ? डॉ० शीतांशु ने भी खड़े होकर कहा।

—डॉ० शीतांशु जी, मैं मीटिंग से बाहर चला जाता हूँ, और आप लोगों में से जो सबसे सीनियर सदस्य हो, उसकी अध्यक्षता में परीक्षकों के बारे में निर्णय किया ही जा सकता है।

—लेकिन···। डॉ० शीतांशु कुछ कहना ही चाहते थे कि डॉ० बिच्छू ने उन्हें टोक दिया—शीतांशु जी, अब जाने भी दीजिए। इतना सौहार्दपूर्ण वातावरण है। परीक्षकों की ही तो नियुक्ति करनी है। कोई थीसिस थोड़े ही जाँचनी है। चलने भी दीजिए न।

—जैसा आप ठीक समझें डॉक्टर साहब। लेकिन कुछ औपचारिकताएँ भी तो होती हैं।

—शीतांशु जी, तभी तो कह रहा हूँ कि मैं बाहर चला जाता हूँ। आप डॉ० तिवारी की अध्यक्षता में परीक्षक नियुक्त कर लीजिए। वे ही बोर्ड के सबसे सीनियर सदस्य हैं।

डॉ० शीतांशु के पास अब बोलने के लिए कुछ नहीं रह गया था। उन्होंने मुस्कराते हुए बैग से अपना पाइप निकाल लिया और पाउच में से तम्बाकू निकाल कर उसमें भरने लगे··।

जब तक उन्होंने दियासलाई सुलगाई, तक तक डॉ० ओछेलाल बाहर जा चुके थे और डॉ० तिवारी ने अध्यक्ष की कुर्सी सम्भाल ली थी।

कुर्सी पर ठीक से प्रतिष्ठित हो जाने के बाद डॉ० तिवारी ने अपने होठों से बह रही पीक पोंछी और मुस्कराते हुए पास ही बगल में बैठे बी० जी० उर्फ बिच्छू की तरफ मुड़कर बोले—तो डॉक्टर साहब, अब डॉ० आलोक की थीसिस के परीक्षक नियुक्त कर लिए जायें · । आप नाम सुझाइए।

डॉ० बी० जी० ने सर झुकाए ही कहा—एक नाम तो डॉ० गोपीनाथ का रख लीजिए।

—वाह डॉक्टर साहब ! क्या नाम सुझाया है आपने। और डॉ० तिवारी डॉ० गोपीनाथ का नाम नोट करने लगे।

तभी डॉ० शीतांशु ने उठकर कहा—डॉ० साहब, थीसिस के विषय से डॉ० गोपीनाथ का कोई सम्बन्ध नहीं है···। इसके लिए डॉ० शैलेन्द्र ही सबसे ठीक रहेंगे।

डॉ० शैलेन्द्र का नाम सुनकर सभी सदस्यों को साँप सूंघ गया। सभी जानते थे कि डॉ० ओछेलाल के डॉ० शैलेन्द्र से अच्छे सम्बन्ध नहीं हैं। वर्षों पहले वह ओछेलाल को बुरी तरह रिजेक्ट भी कर चुके हैं। लेकिन साथ ही डॉ० शैलेन्द्र के नाम का विरोध करने का साहस भी किसी में नहीं था क्योंकि डॉ० शैलेन्द्र अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान थे और शोध-सम्बन्धी विषय के मर्मज्ञ भी।

कुछ देर की चुप्पी के बाद आखिर में डॉ० तिवारी ही बोले—डॉ० शैलेन्द्र का नाम पी-एच० डी० की एक थीसिस में पहले ही रख लिया गया है। और अकेले वे ही तो विद्वान् नहीं हैं कि सभी जगह उनका ही नाम रखा जाय।

डॉ० शीतांशु ने सुझाव दिया—अध्यक्ष महोदय, पहली बात वो यह है कि ऐसा कोई नियम नहीं है कि एक व्यक्ति को दो शोध-प्रबन्धों के लिए परीक्षक न नियुक्त किया जाय। दूसरी बात यह है कि पी-एच० डी० और डी० लिट्० के शोध-प्रबन्धों में परीक्षक की नियुक्ति का मामला एक ही बात नहीं है। और तीसरी बात यह है कि अगर डॉ० शैलेन्द्र को दो जगह रखने में मुश्किल पड़ रही हो तो पी-एच० डी० से उनका नाम हटा दीजिए।

कुछ समय तक चुप्पी छाई रही। तभी यकायक वी० जे० डॉ० शीतांशु की ओर मुखातिब होकर बोले—शीतांशु जी, इन दिनों डॉ० शैलेन्द्र की तबीवत खराब रहती है। वैसे भी रिटायर होने के बाद वे कहीं आते-जाते नहीं। इससे रिपोर्ट आने में देर हो सकती है···।

—यही बात तो मैंने अभी-अभी पी-एच० डी० के लिए उनकी नियुक्ति के समय कही थी। लेकिन आपने ही बताया था कि अभी पिछले दिनों वह पटना गए थे। अगर वह पटना जा सकते हैं तो यहाँ भी आ सकते हैं। और जहाँ तक उनके बीमार होने का सवाल है—तो ज्यादा से ज्यादा रिपोर्ट थोड़ी लेट हो जाएगी। ऐसी जल्दी भी क्या है।

—जल्दी है। इस बार डॉ० तिवारी ने मेज़ पर मुक्का मारते हुए कहा। हम नहीं चाहते कि विश्वविद्यालय के रिसर्चर्स की रिपोर्ट ही आने में सालों लग जायें।

—डॉ० तिवारी, लेकिन ऐसी जल्दी तो आपने पहले कभी नही मचाई। उस बार मैंने अपने एक स्टूडेंट की थीसिस में डॉ० जगमोहन का नाम रखने पर आपत्ति की थी। मैंने कहा था कि डॉ० जगमोहन एक साल के एपाइन्टमेंट पर विदेश जा रहे हैं। लेकिन···

···डॉ० शीतांशु, आप गड़े मुर्दे क्यों उखाड़ रहे हैं। तब ऐसा हो गया तो क्या उस गलती को सुधार नहीं लेना चाहिए।

फिर कुछ रुक कर बोले—हाँ, तो और दूसरे नाम और सुझाइए डॉ० जैन।

डॉ० जैन ने कुर्सी से आधे उठते हुए कहा—दूसरे नम्बर पर डॉ० विश्वदेव का नाम ठीक रहेगा।

डॉ० तिवारी नाम नोट करने लगे। तभी फिर शीतांशु बोल उठे—डॉ० वाजपेयी को तो लकवा मार गया है। वे इस स्थिति में होंगे कि···।

लेकिन डॉ० शीतांशु की बात को अनसुना कर दिया गया।

—और एक नाम चाहिए।

—डॉ० करोड़ी मल कैसे रहेंगे। कोने से एक आवाज़ आई।

—डॉ० तिवारी डॉ० शीतांशु की प्रतिक्रिया जानने के लिए उनकी तरफ देखा··

—मेरी तरफ क्या देख रहे हैं तिवारी जी। जिसको रखना हो रख लीजिए। मैं तो सिर्फ इतना जानता हूँ कि ये तीनों लोग जब भी यहाँ आते हैं, डा० 'आलोक' के घर पर ही ठहरते हैं। डी० लिट्० की थीसिस के लिए ऐसे लोगों को रखना इस विश्वविद्यालय की डी० लिट्० डिग्री का अपमान करना है।

—तो ?

—तो क्या। आप अपना काम कीजिए। मैं अपना काम करूंगा।

—मतलब ?

—मतलब यह कि इस सब के खिलाफ़ वी० सी० को रिप्रिजेंट करूंगा।

कमरे में एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। फिर डा० बी० जे० समझाने की टोन में बोले—डा० शीतांशु, इस छोटी-सी बात के लिए इतनी दूर तक जाना आप जैसे वरिष्ठ व्यक्ति को शोभा नहीं देता बोर्ड की बात बोर्ड के भीतर सुलझा लेनी चाहिए। बाहर जायेगी तो बवेला मचेगा। बोर्ड की बदनामी होगी···और बोर्ड की बदनामी आपकी-हमारी सबकी बदनामी होगी।

—तो आप पहले एक्सपर्ट के रूप में डा० शैलेन्द्र का नाम क्यों नहीं रख लेते।

—अब एक्सपर्ट के नामों में तो कोई चेंज नहीं हो सकता। डा० तिवारी ने अपनी आवाज़ चढ़ाकर कहा।

—तो मेरे स्टैंड में भी कोई चेंज नहीं हो सकता। डा० शीतांशु का मुँह तमतमाया आया।

—डा० शीतांशु···। वी० जे० ने कुछ कहना चाहा।

—डॉ० साहब, आप अपने विश्वविद्यालय की गन्दगी को यहाँ भी फैला रहे हैं। आप को जो कुछ करना हो, कीजिए ··मुझे जो करना होगा, मैं कर लूँगा।

बाकी लोग खामोश थे। डॉ० शीतांशु के मन में उनकी नपुंसकता को लेकर गुस्सा उबल रहा था। उन्होंने झटके से अपना बैग उठाया और कमरे से बाहर निकल गए।

घर पहुँच कर डॉ० शीतांशु कुछ देर तक बड़े व्यग्र बने रहे। वह जानते थे कि वी. सी. को लिखने से भी कोई नतीजा निकलने वाला नहीं है। विश्वविद्यालय की कई अनियमितताओं को लेकर उन्होंने कई बार रिप्रिजेंटेशन किया था लेकिन कभी, कोई पत्ता नहीं हिला। पर मक्खी निगलने को भी उनका मन नहीं हो रहा था। वह इसी उधेड़ बुन में थे कि बाजार से सब्जी लेकर अनुराधा आ गयी। सब्जियों की बास्केट को किचन की मेज पर रखते हुए वह बोली··· कुछ परेशान नज़र आ रहे हो अंशु। क्या हुआ ? आज तो तुम्हारी बोर्ड की मीटिंग थी न····।

डॉ० शीतांशु भरे हुए तो थे ही, पत्नी के पूछते ही पूरा किस्सा उडेल दिया। फिर बोले—अनु ! इस बार मैं वी० सी० को तो लिखूँगा ही, उससे उससे पर्सनली भी मिलूँगा। आखिर, हद होती है किसी बात की। अनु बड़ी शान्त स्वर में बोली—लेकिन उससे होगा क्या ? क्या हुआ है अब तक। जब पूरा सिस्टम ही बिगड़ा हुआ है तो तुम्हारे अकेले से तो कुछ होने से रहा।

—इसका मतलब तो यह हुआ कि पूरी गन्दगी को ओढ़ते चले जायें ?

—गन्दगी ओढ़ने को कौन कहता है। मैं तो इससे, इस सब से बचने को कहती हूँ। तुम अपने पढ़ने-लिखने में इतना बिजी रहते हो। उसी में लगे रहो। मैं जानती हूँ—तुम जैसा आदमी इस तरह की पॉलिटिक्स नहीं कर सकता। जो करते हैं, करने दो। आखिर, सब काम तो सबके लिए नहीं होते। आखिर इन्सान वही तो करेगा जो वह कर सकता है। तुम दुखी क्यों होते हो।

—तुम भी मुझे ही उपदेश दे रही हो।

—उपदेश देने की बात नहीं है। अपनी प्राथमिकताओं को समझने-जानने की बात। तुम्हारे अपने दोस्त का उदाहरण सामने—संजय पांथरी का। तुमसे एक-

दो साल छोटा-ही होगा। सिर्फ दसवीं तक तो पढ़ा है। लेकिन उसके साहित्य पर यूनिवर्सिटियाँ पी-एच. डी. करवा रही हैं। मैं फिर कहती हूँ, अपनी प्राथमिकताओं को निश्चित करो।

—अच्छा बाबा, इस टॉपिक को बन्द कर दो ··· हर चीज को एक ही एंगिल से नहीं देखा जा सकता ···।

डॉ० शीतांशु इस वक्त ज्यदा जिरह करने के मूड में नहीं थे। वह एक तरफ रखी आरामकुर्सी पर जाकर लेट गए और आँखें बन्द कर लीं।

अनुराधा कपड़े बदलने के लिए दूसरे कमरे में चली गयीं। ●

आठ

कपड़े बदल कर डॉ० ओछेलाल बाहर निकले ही थे कि सामने पोस्टमैन आता दिखाई दिया। पास आकर पोस्टमैन ने तीन-चार पत्र उनके हाथ में पकड़ा दिए। डॉ० लाल ने पत्रों पर सरसरी निगाह डाली और उनमें से एक पत्र को खोल कर पढ़ने लगे। पत्र पढ़ते हुए उनकी आँखों में चमक आ गयी। यू. जी. सी. के चेयरमैन की पत्नी डॉ० कुसुम लता ने सेमिनार में विशेष अतिथि के रूप में आना स्वीकार कर लिया था। डॉ० ओछेलाल को लगा, उन्होंने प्रोफेसरशिप की आधी बाज़ी मार ली है। अब चेयरमैन अपनी मुट्ठी में है, उन्होंने सोचा।

बाकी चिट्ठियों को अपने बैग में डाल कर वह सामने खड़े स्कूटर की ओर बढ़े। बैग को स्कूटर पर रख कर उन्होंने 'किक' लगायी। आज पहली ही किक में स्कूटर स्टार्ट हो गया। इसे ओछेलाल ने अच्छा शकुन माना और धीरे से स्कूटर की गद्दी पर बैठकर उन्होंने स्कूटर को मेन-रोड की तरफ़ मोड़ लिया।

यूनिवर्सिटी में अपनी केबिन में बैठे डॉ० ओछेलाल ने चपरासी से चाय लाने के लिए कहा ही था कि सामने थापा आकर खड़ा हो गया।

थापा को देखकर डॉ० ओछेलाल की भँवें थोड़ी तन गयीं। फिर भी संयम रख कर बोले—बैठो ··।

थापा बैठ गया।

थापा की उपेक्षा कर, डॉ० ओछेलाल काफी देर तक पास पड़ी फाइलों को इधर-उधर करते रहे···।

—सर, मेरा पहला चैप्टर तो पूरा हो गया है। अगर···।

— देखो, हमने डॉ० जैन से कह दिया है। उन्हें दिखा दो ·।

थापा कुछ समय तक चुप बैठा रह गया।

—और कुछ ? डॉक्टर ओछेलाल उसे सरकाने की नीयत से बोले।

—डॉ० जैन ने मुझे बुलाया था। बोले, कि डॉक्टर साहब से मेरी बात हो गयी है। लेकिन मेरे पारिश्रमिक का क्या होगा ?

—यह तुम्हारे और उनके बीच की बात है। इसमें मुझे मत घसीटो।

—लेकिन सर, मेरे गाइड तो आप हैं। थापा की आवाज में थोड़ी झुंझलाहट, थोड़ी, तुर्शी थी।

—गाइड होने का मतलब यह तो नहीं होता कि मैं तुम्हारी वर्तनियाँ ठीक करूँ; तुम्हारी वाक्य-रचना को सुधारूँ। तुम्हें तो अभी तक शुद्ध भाषा भी

लिखनी नहीं आती इसके लिए किसी की मदद तो लेनी ही पड़ेगी....। डॉ० जैन...।

—आप डॉ० जैन की बात मत कीजिए सर ! मैं उनके पास नहीं जा सकता ।

—थापा, मेरे सभी स्टुडैंट्स को डॉ० जैन ही गाइड करते हैं। वह मेरे विद्यार्थी और सहयोगी भी रहे हैं। मैं उनके खिलाफ़...।

—आप उनके खिलाफ़ सुनेंगे नहीं और वह बिना पारिश्रमिक लिए मेरा चैप्टर देखेंगे नहीं और पारिश्रमिक भी उन्हें फॉरेन करंसी में चाहिए।...

—देखो थापा, मैं डिपार्टमेंट में इस तरह की बातें नहीं करना चाहता। तुम मेरे घर आकर बात करना। मैं डॉ० जैन को वहीं बुला लूँगा...।

—तो मैं यह समझूँ कि आप मेरे चैप्टर नहीं देखेंगे।

—मेरे पास तुम्हारी स्पैलिंग और तुम्हारे वाक्य सुधारने का समय नहीं है।

सुनकर थापा यकायक खड़ा हो गया। एक-एक शब्द को पीसते हुए बोला—सर, मुझे आपको प्रोफेसर और गाइड कहने में शर्म महसूस होती है। और डॉ० जैन जो मेरे और आपके बीच भड़ुवागिरी कर रहे हैं—उनको तो मैं देख लूँगा। कह कर वह एक झटके से बाहर निकलने लगा। दरवाजे के पास चपरासी चाय की ट्रे लिए आ रहा था। थापा इतने जोश में था कि चपरासी से टकराने से अपने को बचा नहीं सका। चपरासी के हाथ से ट्रे नीचे गिर गयी।

इससे पहले कि चपरासी थापा को रोक पाता या उससे कुछ कह पाता, वह काफी आगे निकल चुका था। उसने निर्णय कर लिया था कि अब उसे यहाँ शोध-बोध कुछ नहीं करना है।

शाम के तीन बज रहे थे।

डॉ० ओछेलाल अब तक शांत हो चुके थे। पिछली घटना के कारण उनका रक्तचाप अवश्य बढ़ गया था और उन्होंने अब तक दो बार सरपैसिल भी ले ली थी। लेकिन इस वक्त वह काफी हल्का महसूस कर रहे थे।

उनकी केबिन में इस समय डॉ० तिवारी के अलावा बाहर का एक प्रकाशक भी बैठा था। प्रकाशक से एक पांडुलिपि के प्रकाशन की बात चल रही थी। डॉ० ओछेलाल कह रहे थे—त्यागी जी, मनोहर कवि की इस पांडुलिपि को खोजने में

हमने सात साल मेहनत की है। हज़ारों रुपया तो यात्राओं में निकल गया। परिश्रम और परेशानी अलग से। हम आपसे बस इतना चाहते हैं कि इस शोध-ग्रन्थ को आप आर्ट पेपर पर बढ़िया तरीके से प्रकाशित करें। और रायल्टी के बदले हमें ढाई सौ प्रतियाँ दे दें···। वैसे इसमें नुकसान की कोई गुंजाइश नहीं है। इसकी बिक्री में भी हम आपकी मदद कर देंगे।

त्यागी जी के चेहरे पर उदासी थी। लेकिन फिर भी वह ज़बरन मुस्कराकर अपनी सहमति जाहिर करने के लिए मजबूर थे। डॉ० तिवारी ही उन्हें यहाँ लेकर आए थे और उनसे कहा था कि यू. जी. सी. की पुस्तकों की खरीद के लिए पचास हज़ार की एक बड़ी ग्रांट आई है। उसका अधिकांश वह उन्हें दिलवा देंगे। वह इसी लोभ में अहनी सहमति जाहिर कर रहे थे और मन ही मन हिसाब भी लगाए जा रहे थे कि इस पांडुलिपि के प्रकाशन पर कितना खर्च आयेगा। मोटे तौर पर हिसाब लगाने से भी उन्हें महसूस हो रहा था कि अगर 20 हज़ार का आर्डर भी मिला तो भी वह घाटे में रहेंगे···।

लेकिन अपनी चिन्ता को छिपाते हुए उन्होंने कहा—डॉक्टर साहब, क्या आपके पास काव्यशास्त्र या साहित्य के इतिहास की कोई पांडुलिपि नहीं है। उसे छापने में हमें ज्यादा सहूलियत होती···।

—त्यागीजी, हम यूनिवर्सिटी की कुर्सी पर बैठ कर डॉ० शैलेन्द्र की तरह नोट्स नहीं लिखते। गम्भीर शोध करते हैं। अगर आपको सौ बार यह लगता हो कि इस शोध-ग्रन्थ के छापने से आपके प्रकाशन का नाम होगा, तो ही इसे छापिए। हमने तो डॉ० तिवारी के लिहाज से यह पांडुलिपि आपको देने की बात कही है। अन्यथा यहाँ तो दिन भर में तीन-तीन प्रकाशक आते हैं ··।

बात कुछ ज्यादा तीखी हो गयी थी। त्यागीजी औपचारिकता को छोड़कर कुछ कहने ही वाले थे कि डॉ० तिवारी बोल पड़े—त्यागीजी, पैसा ही सब कुछ थोड़े होता है। सम्मान बड़ी बात है। आपके यहाँ से ग्रन्थ छपेगा, आपके प्रकाशन का नाम होगा। डॉक्टर साहब के नाम से सम्पादित होगा— डाक्टर साहब का नाम होगा।

—देखिए त्यागी जी! आप अपना नफ़ा-नुकसान अच्छी तरह से सोच लीजिए। हमारी कोई जबर्दस्ती नहीं है। आ० ओछेलाल थोड़ा नरम पड़ते हुए बोले।

त्यागीजी को वहाँ बैठने में अब मुश्किल महसूस हो रही थी। कुर्सी से उठते हुए उन्होंने कहा—अच्छा डाक्टर साहब, मैं चलूँ। आपकी सेवा करके मुझे खुशी ही होगी···।

—तो आप इसे छाप रहे हैं न।···इस बार डा० तिवारी से पूछा।

—मैं वापिस लौट कर आपको लिख दूँगा। जरा, अपने लड़के से भी पूछ लूँ। आजकल प्रकाशन का काम वही देखता है।

—ठीक है···। डा० तिवारी ने ओछेलाल की ओर देखते हुए कहा—हम आपको नुकसान में नहीं रहने देंगे। अब आप होटल ही जा रहे हैं न।

—जी, एक-दो कालेजों में और जाना है। सात बजे तक मैं होटल में पहुँच जाऊँगा।

—मौका मिला तो हम वहाँ आएँगे।

—आपका आना सर माथे पर। त्यागी जी ने जबर्दस्ती होठों पर मुस्कराहट लाकर कहा और आगे, दरवाजे की तरफ बढ़ गये।

जिस वक्त त्यागी जी कालेज पहुँचे, उस समय डा० शीतांशु अपने कमरे में बैठे किसी महिला से बातें करने में व्यस्त थे। त्यागी जी ने उनके पास जाकर नमस्कार किया और डा० शीतांशु के इशारे पर पास की कुर्सी में बैठ गये।

कुछ देर बाद डा० शीतांशु त्यागी जी की ओर मुखातिब हुए—इस बार आपका बहुत दिनों बाद आना हुआ त्यागी जी ! कहिए क्या आज्ञा है।

—बस, आपके दर्शनों के लिए चला आया ?

—अरे भाई, दर्शन भी कोई करने की चीज़ है। और कोई आज्ञा दीजिए। और हाँ. ये हैं श्रीमती मनीषा शर्मा। आपने इनका नाम सुना ही होगा। उपन्यासकार हैं। आकाशवाणी, दिल्ली में प्रोड्यूसर हैं।

—जी, नाम तो सुना है। उन्होंने मनीषा शर्मा की ओर हाथ जोड़ दिए।

—श्रीमती शर्मा ने भी मुस्करा कर उनके अभिवादन का उत्तर दे दिया।

—और कहिए ?

—डा० साहब, आप हमें कुछ नहीं दे रहे।

—त्यागी जी, ऐसा है कि मेरे तो बंधे हुए प्रकाशक हैं। उनकी मांग पूरी नहीं करता। ऐसी स्थिति में आपको क्या दूँ··।

—कुछ भी ?

— शोध-प्रबन्ध छापेंगे ?

त्यागी जी के चेहरे पर मुस्कराहट फैल गयी।

—क्यों क्या हुआ ?

—इस शहर से सभी शोध-ग्रन्थ छपवाने की बात कहते हैं। अभी डा० ओछेलाल भी अपनी शोध-पांडुलिपि को छपवाने के लिए ज़ोर दे रहे थे। मैं तो

उनके पास जाना भी नहीं चाहता था। वह तो डा० तिवारी जी जबर्दस्ती ले गये।

—उनकी कौन-सी पांडुलिपि है भाई ?

—भक्तिकाल के मनोहर कवि की कोई पांडुलिपि बतला रहे थे।

सुनकर डा० शीतांशु बड़ी ज़ोर से हँसने लगे•••

—क्यों, क्या हुआ डाक्टर साहब। त्यागी जी ने कहा।

—अरे भई, उसे वह 15 साल से छपवाने की कोशिश कर रहे हैं। सोचते हैं, इसी नाते उनके नाम से भी कोई किताब छप जायेगी।

—पन्द्रह साल से ?

—और क्या ? पन्द्रह-सोलह साल पहले उन्होंने बाबूलाल शर्मा से डेढ़ सौ रुपये में वह पांडुलिपि खरीदी थी। बाबूलाल शायद बनारस के आसपास का रहने वाला है। नकली पांडुलिपि बनाना और बेचना उसका धन्धा है। पहले वह मेरे पास आया था। मैंने उसे डाँट कर भगा दिया।

—लेकिन वह तो कह रहे थे कि सालों की खोज के बाद उन्हें यह पांडुलिपि मिल पायी है···:

—गद्दी पर बैठने के बाद आदमी जो कुछ भी बोलता है, वही सच समझा जाता है। वह फिर हँस पड़े···।

कुछ देर रुककर त्यागी जी बोले—डाक्टर साहब, आपके यहाँ यू. जी. सी. की ग्रांट तो आयी होगी। हमें भी कुछ···।

—अपने नए प्रकाशनों की एक-एक प्रति भेज दीजिए। बिल हज़ार रुपये से ज्यादा का न हो···।

—ठीक है। मैं लौटकर जाते ही भेज दूँगा···।

—चाय पियेंगे।

—जी नहीं, मैं चाय लेकर ही यहाँ आया हूँ। त्यागी जी हाथ जोड़ते हुए उठ खड़े हुए।

—हाँ, त्यागी जी, आप डा० ओछेलाल की पुस्तक अवश्य छाप दीजिए।

त्यागी जी ने सवालिया निगाह से डा० शीतांशु की ओर देखा।

—मैं ठीक कह रहा हूँ त्यागी जी। यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर की पोस्ट निकली है। उन बेचारों को भी दिखाना पड़ेगा कि उन्होंने इतना शोध-कार्य किया है।

त्यागी जी और डा० शीतांशु साथ-साथ हंस पड़े।

डा० शीतांशु जब घर पहुँचे तो देखा, उनका एक विद्यार्थी अरोड़ा उनकी प्रतीक्षा में बैठा है। डा० शीतांशु को देखकर वह उठ खड़ा हुआ।

—बैठो, बैठो। डा० शीतांशु ने अपना बैग टेबल पर रखते हुए कहा—कहो, कैसे हो ?

—ठीक हूँ सर ! वह पहले की तरह खड़ा ही रहा।

—चाय-वाय पी। उन्होंने पूछा।

—जी सर, पी ली है।

—अनु, थोड़ा पानी तो पिला दो। उन्होंने पत्नी को आवाज़ लगाई।

पानी पीकर डा० शीतांशु भीतर कपड़े बदलने चले गए।

थोड़ी देर में डा० शीतांशु फ्रेश होकर बैठक में आ गये—और कहो अरोड़ा, आज इतने दिनों बाद कैसे आना हुआ ? तुम्हारा कालेज तो ठीक चल रहा है न।

—जी सर, बिल्कुल ठीक चल रहा है। एम. ए. के बाद अरोड़ा को शीतांशु ने एक जूनियर कालेज में लगवा दिया था।

—तुम्हारे प्रिंसिपल मुखर्जी के क्या हाल हैं ?

—मजे में हैं सर ! आजकल दिल्ली गये हुए हैं।

—अच्छा !·· हाँ, तो कैसे आना हुआ ? कोई खास बात।

अरोड़ा ने एक क्षण के लिए डा० शीतांशु की तरफ देखा ओर फिर धीरे से एक पत्रिका उनकी ओर बढ़ा दी।

डा० शीतांशु ने पत्रिका हाथ में ले ली और उसे उलटने-पलटने लगे।

—सर, इसमें डा० जैन के नाम से एक लेख छपा है—मोहन राकेश के नाटकों में सामाजिक तत्त्व।

—हाँ, तो···?

—सर, मैंने एम. ए. में एक डेज़रटेशन लिखा था—मोहन राकेश के नाटकों में सामाजिकता विषय पर। उसी को इन्होंने अपने नाम से दे दिया है। एक-एक शब्द वही है सर !

—क्या कहते हो ? डेज़रटेशन किसके निर्देशन में लिखा था ?

—उन्हीं के सर।

डा० शीतांशु के होठों पर एक हल्की सी मुस्कराहट आ गयी।

—यह कोई नयी बात नहीं है अरोड़ा। इसका शिकार तो मैं भी हो चुका हूँ।

अरोड़ा की आँखें बड़ी-बड़ी हो आयीं—क्या कह रहे हैं आप ?

—सही कह कहा हूँ। मुझसे पहले, हमारे हैड थे न। उन्होंने एक बार मुझसे कहा कि पन्त पर तुमने शोध की है। उनकी नारी भावना पर एक शोधपरक लेख लिख दो। मैं एक पुस्तक सम्पादित कर रहा हूँ। उसी के लिए चाहिए। सो, मैंने 10–12 दिन मेहनत करके लेख लिखकर उनको दे दिया।

—फिर···।

—फिर 8–10 महीने बाद जब किसी गायत्री शर्मा की पुस्तक मेरे पास समीक्षा के लिए आई तो मैं यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि मेरा वह लेख जस का तस उस किताब के एक अध्याय के रूप में दिया हुआ है।

—किताब का नाम क्या था सर !

—पन्त का काव्य।

—फिर आपने क्या किया ?

—अपना सर पीट लिया। और क्या करता।

—मेरे बारे में आप क्या कहते हैं ? यानी कि मुझे क्या करना चाहिए।

—खामोश बैठ जाओ। और क्या करोगे। वरना चाह-कर भी क्या करोगे।

—मैं रजिस्ट्रार को लिखना चाह रहा हूँ।

—वे पूछेंगे कि क्या प्रूफ है तुम्हारे पास कि वह लेख तुम्हारा ही है।

—सर, डिपार्टमेंट में उस लेख की प्रति होगी। इस बात की जाँच हो सकती है।

—देखो अरोड़ा ! जाँच तो होगी नहीं, जाँच का नाटक जरूर हो सकता है। अन्त में होगा यह कि तुमसे कह दिया जायेगा कि लेख मिसप्लेस हो गया है। तब ?

—क्या यहाँ तक हो सकता है सर।

—इस देश और इस व्यवस्था में क्या नहीं हो सकता। सरकारी दफ्तरों से फाइलों के बण्डल के बण्डल गायब हो जाते हैं। यह तो 10–12 पेज़ का लेख है।

—तो डा० ओछेलाल से बात करूँ··।

—डा० जैन उनके दत्तक पुत्र हैं। तुम समझते हो, वह कोई एक्शन लेंगे, या लेना चाहेंगे।

—तो···।

—मैंने कहा न, खामोश बैठ जाओ और मौके का इन्तज़ार करो।

—वी. सी. से कहने से भी कुछ नहीं होगा।

—नए वी. सी. शुद्ध एकेडेमिक आदमी हैं। वे इस तरह के प्रपंचों से अपने को दूर ही रखते हैं।

—यह तो कोई बात नहीं हुई।

—जो भी हो, यहाँ होता यही है। यही होता रहा है और मैं तुमसे कहूँ, यही होता रहेगा।

—आखिर, ऐसा कब तक होगा सर !

—तब तक होगा अरोड़ा, जब तक ईमानदार हाथों में सत्ता नहीं आती।

—ईमानदार हाथों में सत्ता आएगी कैसे।

—अब मैं क्या बताऊँ। अगर मुझे यह सब मालूम होता तो मैं तीस सालों से इस कॉलेज में न सड़ता रहता ! मैं भी प्रधानमन्त्री या राष्ट्रपति या राज्यपाल न हो जाता। और राष्ट्रपति या राज्यपाल न भी सही, उनका एडवाइज़र ही न बन जाता।

फिर कुछ रुक कर उन्होंने कहा—देखो अरोड़ा, हमें यह मान लेना चाहिए कि इस व्यवस्था में फंसाकर हम-तुम जैसे लोगों को बहुत छोटा और बहुत बौना बना दिया गया है। इतना छोटा और इतना बौना कि हमारी कोई हैसियत और औकात ही नहीं रह गयी है।·· लेकिन एक बात है, यह हालात हमेशा रहने वाली नहीं है। बस, हमें सही मौके का इन्तजार करना चाहिए।

तभी अनु ने बाहर आकर कहा—खाना लग गया है।

—खाना खाओगे ? डॉ० शीतांशु ने अरोड़ा से पूछा।

—जी नहीं सर, घर में तैयार होगा। मैं चलता हूँ। आप खाइए। और वह उठने लगा।

डॉ० शीतांशु भी उठ गये। अरोड़ा के दरवाजे से बाहर निकल जाने के बाद उन्होंने किवाड़ लगा लिए और वाश-बेसिन की तरफ बढ़ गए।

अनु उनकी थाली लगा रही थी।

नौ

पसीने से लथपथ डॉ० तिवारी अपने फ्लैट में दाखिल हुए और निढाल सोफे पर लधर गये। उनकी आँखों आँसू डबडबा रहे थे। अपनी अट्ठावन साल की जिन्दगी में उन्हें इतने अपमान का अहसास पहले कभी नहीं हुआ था।

आज उनके होंठ सूखे हुए थे। पान की लाली और लार का कहीं पता नहीं था। कमरे में सीलिंग फैन पूरी तेज़ी से घूम रहा था लेकिन उन्हें अभी भी पसीना आए जा रहा था।

तभी पत्नी पानी का गिलास लेकर आ गयी। सामने मेज़ पर गिलास रखते हुए बोली—क्या हुआ विश्वास का। जमानत हो गयी।

डॉ० तिवारी ने पानी के गिलास की तरफ देखा और बुदबुदाये - हो गयी। और उन्होंने फिर अपनी आँखें खिड़की से बाहर शून्य में टिका दीं। लाल-लाल आँखों में अभी भी पानी डबडबा रहा था। वह किसी से कुछ भी बोलने के मूड में नहीं थे। पत्नी से भी नहीं।

सकपकायी हुई पत्नी को और कुछ बोलने की हिम्मत नहीं हुई—लो, पानी पी लो। उसने हिम्मत करके कहा।

—रखा रहने दो। पी लूँगा।

पत्नी धीरे से वहाँ से उठ गयी।

आज वर्षों बाद डॉ० तिवारी को अपनी पहली पत्नी का चेहरा याद आ रहा है। तब वह इण्टर में ही पढ़ रहे थे, जब अहिल्या से उनकी शादी कर दी गयी थी। अपने शहर में ही बी. ए. पूरा करते-करते उन्होंने अपनी पत्नी को दो सन्तानें भी दे डाली थीं।

बी. ए. करने के बाद वह अपने मामा के पास यहाँ चले आए थे। यहाँ उनके मामा का चक्कियों का धन्धा था। उसी साल उन्हें एक स्कूल में शिक्षक की नौकरी मिल गयी थी। कुछ साल बाद उन्होंने प्राइवेट एम. ए. भी कर लिया और इस कॉलेज में लेक्चरर हो गये।

यहाँ की चकाचौंध में वह अपनी पत्नी की ओर से उदासीन होते चले गये थे। पहले तो कभी—बरस-दो बरस में वह अपने गाँव जाते भी थे। लेकिन बाद में उनका आना-जाना कम होता चला गया।

इधर, इस शहर में अपनी ही एक विद्यार्थिनी से उनका सम्बन्ध जुड़ गया और एक दिन जवानी के उत्साह में वह उसे अपने घर ले आये। लेकिन इसके

बावजूद कभी-कभार अपनी पत्नी के लिए मनीआर्डर कर देते। पत्नी अपने ससुराल में ही रह अपने बच्चों के कारण नौकरानी-सी जिन्दगी जीती रही। पढ़ी-लिखी वह थी नहीं जो उनके खिलाफ कोई कार्रवाई कर पाती। इसीलिए डॉ० तिवारी उसकी ओर से निर्द्वन्द्व बने रहे।

लेकिन इस ताज़ी घटना ने आज उन्हें अपनी पहली पत्नी की याद दिला दी। वह सोचने लगे, शायद उसके अभिशाप से ही उन्हें यह दिन देखना पड़ा है।

वैसे कुछ साल पहले भी, अपनी पहली पत्नी से उत्पन्न बड़ी लड़की की शादी में भी वह संकट में पड़ गये थे। वर पक्ष को कन्या के घर आने पर मालूम पड़ा कि डॉ० तिवारी ने शहर में किसी गुजराती लड़की को रखा है और उससे उनकी सन्तानें भी हैं। साथ ही यह भी कि कन्या की माँ एक तरह से उपेक्षित और छोड़ी हुई-सी है। इस पर वर के पिता ने बारात वापस ले जाने की हठ ठान ली थी। लेकिन डॉ० तिवारी के उनके पैरों पर अपनी टोपी रख देने और बुरी तरह गिड़गिड़ाने के बाद बात सम्भल गयी। पर वर के पिता ने यह शर्त रख दी कि डॉ० तिवारी भविष्य में कभी भी अपनी लड़की से मिलने की कोशिश नहीं करेंगे। डॉ० तिवारी पत्नी को उपेक्षित करने के बाद भी अपनी इस लड़की से स्नेह करते थे क्योंकि वह उनकी किशोरावस्था की पहली सन्तान थी। उसके नाक-नक्श भी तीखे और पिता के समान ही थे। इसलिए भी डॉ० तिवारी का अपनी इस बिटिया के प्रति आकर्षण था। लेकिन इस सब के बावजूद तिवारी जी को वर के पिता की बात माननी पड़ी थी। तभी जाकर विवाह सम्पन्न हो सका था।

इस कन्या के विवाह के बाद ही अधेड़ावस्था में किसी तरह जोड़-तोड़ करके उन्होंने पी-एच. डी. भी हथिया ली। पी-एच. डी. के उपलक्ष्य में उन्होंने अपने चेलों से ऐसा स्वागत करवाया कि जिसकी याद आज भी शहर के बुद्धिजीवी समाज में बनी हुई है। उस दृश्य को देखकर ऐसा लगता था कि जैसे किसी का स्वागत-समारोह नहीं बल्कि विवाह-समारोह हो रहा हो।

दूसरी पत्नी ने भी डॉ० तिवारी के प्रति अपना पत्नीत्व पूरी तरह निभाया और उन्हें तीन पुत्र रत्न दिए। जैसा कि आमतौर से होता है, क्रॉस ब्रीडिंग की सन्तानें बड़ी तेजस्वी होती हैं। डॉ० तिवारी का पहला पुत्र विश्वास भी बड़ा तेजस्वी निकला और सब परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी लेते हुए उसने एक दिन डाक्टरी पास कर ली।

डॉक्टर बनते ही उसके लिए अच्छे-अच्छे घरानों से शादी के प्रस्ताव आने लगे। लेकिन डॉ० तिवारी के लिए घरानों से ज्यादा महत्त्व पैसों का था। उन्होंने सोच लिया कि विश्वास की शादी में उन्हें कम से कम 3 लाख तो मिलने ही चाहिएँ।

लेकिन विश्वास किसी दूसरी रौ में ही बह रहा था। इन्टर्नशिप के दिनों में उसकी दोस्ती एक ईसाई नर्स के साथ हो गयी थी। अब तक उसे अपने पिता के वैवाहिक सम्बन्धों और दो-दो पत्नियों के बावजूद इधर-उधर मुँह मारने की आदत का भी पता चल चुका था। वह देखता था कि अपने समाज के बड़े-बड़े लोग उसके पिता को आदर की दृष्टि से नहीं देखते। और अपनी माँ के गुजराती समाज में उनका आना-जाना तक बहिष्कृत था। वह और उसके भाई अपने को त्रिशंकु की स्थिति में पाते थे। यह बात उसे बड़ी पीड़ा पहुँचाती और उसके मन में बार-बार प्रतिक्रिया की भावना उठ खड़ी होती। लेकिन पिता के सीधे-सीधे बात करने की उसकी हिम्मत नहीं थी। इसलिए उसने अपने लिए अलग रास्ता चुन लिया था।

विश्वास की प्रतिक्रिया से बेखबर डॉ० तिवारी अपने ही जोड़-तोड़ में खोये रहते। इस बीच उनके निःसन्तान मामा की मृत्यु हो चुकी थी। उनकी सारी चक्कियाँ और जायदाद को डॉ० तिवारी ने हड़प लिया था। अपनी दोहरी-तिहरी कमाई से उन्होंने विश्वास के लिए शहर के एक संभ्रांत इलाके में एक बढ़िया डिस्पेंसरी खुलवा दी। विश्वास के हाथ में तासीर थी, सो उसकी प्रैक्टिस चल निकली। इस समय तक वह ईसाई नर्स मरियम भी एक कमरा लेकर उसके साथ-साथ रहने लगी थी। इन्हीं दिनों विश्वास कुछ अरबों के चंगुल में फंस गया और प्रैक्टिस के साथ-साथ उन्हें लड़कियाँ सप्लाई करने का धंधा भी करने लगा। उसने सोचा था कि कम से कम समय में अधिक से अधिक पैसा बटोर कर वह पिता को दे देगा और पितृ-ऋण से मुक्त हो जायेगा। पिता की धनासक्ति को वह अब तक अच्छी तरह जान चुका था। एक तरह से पिताजी की अप्रत्यक्ष प्रेरणा से ही उसने इस धन्धे में हाथ डाला था। लेकिन एक दिन छापे में जब कुछ नाबालिग लड़कियाँ दो अरबों के साथ पकड़ी गयीं तो पूछताछ के दौरान सप्लायर के रूप में विश्वास के नाम का भी भंडाफोड़ हो गया। पुलिस ने विश्वास की डिस्पेंसरी और कमरे में छापा मारकर कई हज़ार रुपयों की नकदी बरामद कर ली। जब वह इतनी बड़ी राशि का कोई सन्तोषजनक जवाब नहीं दे सका तो उसे हिरासत में ले लिया गया।

डॉ० तिवारी इस समय उसकी जमानत कराकर ही लौटे थे।

सोफे पर पड़े-पड़े उन्हें महसूस हो रहा था कि उनकी सारी जिन्दगी कचरा बन कर रह गयी है। विश्वास के लिए उन्होंने क्या नहीं किया लेकिन अन्त में उसने ही सभी तरह से उनकी मिट्टी पलीद कर दी। आज वह पहली बार अपने को बहुत कमजोर और बहुत अभागा महसूस कर रहे थे। काश, अपनी पहली पत्नी की वे इतनी उपेक्षा न करते; काश, कॉलेज-यूनिवर्सिटी की राजनीति में इतना

दंद-फंद न दिखाते, काश, अपने मामा की पत्नी की जायदाद हड़प न कर जाते तो शायद यह दिन भी न देखना पड़ता। इस समय उन्हें कोई भी ऐसा सूत्र नहीं मिल रहा था जिसका संबल लेकर वह राहत का अनुभव कर सकें। चारों तरफ़ उनकी करनी का अंधेरा फैला था। उस अंधेरे में डूबते-उतराते हुए वह बार-बार अपनी आँखें पोंछ लेते और उनके कण्ठ से आह निकल कर आसपास की हवा को गरमा देती।

बड़ी देर तक डॉ० तिवारी उसी श्मशानी मुद्रा में लेटे रहे। तभी दरवाजे की घंटी बजी और जैसे सोते से जागते हुए डॉ० तिवारी सोफे पर उठ बैठे।

अब तक श्रीमती तिवारी दरवाज़ा खोल चुकी थीं और विश्वास अन्दर दाखिल हो चुका था। डॉ० तिवारी ने एक बार उसके चेहरे की ओर देखा और उसकी तरफ से नज़रें मोड़ लीं। विश्वास के चेहरे पर न कोई शिकन थी और न गिल्ट का भाव।

विश्वास धीरे से डॉ० तिवारी के सामने रखी कुर्सी पर बैठ गया।

दोनों के मन भरे हुए थे। और एक दूसरे से बहुत कुछ कहना चाहते थे। लेकिन बात शुरू करने के लिए कोई ठीक-सा सिरा दोनों को ही नहीं मिल पा रहा था। दोनों अपने सिर झुकाये हुए अपनी-अपनी जगह पर बैठे रहे।

तब पिता ने ही चुप्पी तोड़ी—कमरे से आ रहा है ?

—नहीं। विश्वास ने उनकी तरफ देखकर धीरे से कहा—डिस्पेन्सरी में गया था। मैंने उसे डिस्पॉज ऑफ करने का फैसला कर लिया है।

—क्या। डॉ० तिवारी को जैसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ।

—जी, मैंने तो सौदा पक्का भी कर लिया है। अब इतनी बदनामी के बाद मैं उस एरिया में प्रैक्टिस भी नहीं कर सकता। कहते हुए उसने एक लिफाफा पिता के सामने बढ़ा दिया।

—यह क्या है। डॉ० तिवारी ने पूछा।

—डेढ़ लाख रुपये का चैक है। एडवांस दिया है पार्टी ने। बाकी पैसा महीने भर के भीतर मिल जायेगा। तभी डिस्पेंसरी उसे हैंड ओवर कर दी जायेगी।

लिफाफे को मेज़ पर रखते हुए डॉ० तिवारी ने कह ही दिया—तुमने हमारी मिट्टी पलीद कर दी।

—पापा, क्या इसके लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ। क्या मेरी बदनामी नहीं हुई।

—कितने में सौदा किया है तुमने। उन्होंने बात बदलनी चाही।

—आपको साढ़े तीन लाख और मिल जायेंगे।

—और तू क्या करेगा।

मेरी चिन्ता मत कीजिए। मैं कुछ भी कर लूँगा। जहाँ भी खड़ा हो जाऊँगा, वहाँ अपना पेट भरने लायक कमा लूँगा।

—यहाँ मेरे पास चैक देने ही आया था।

—नहीं आपके अन्तिम दर्शन करने आया था। आपने अब तक मेरे लिए जो कुछ भी किया, उसके लिए आपका उपकार मानने आया था।

—तेरी जबान बहुत बदल गयी है। क्या मैंने तुझे इसीलिए पैदा किया था कि तू बाप के साथ इस तरह की बातें करे? मेरे अन्तिम दर्शन करने आया है तू! क्या मैं मर चुका हूँ।

—दिन में दस-दस बार मरने वाला इस सच्चाई को महसूस ही नहीं कर सकता कि वह मर भी सकता है। आप क्यों मरेंगे—आपने तो मुझको मार दिया है।

—विश्वास। डॉ० तिवारी की आवाज़ ऊँची हो गयी थी।

—मेरे सामने आवाज़ मत चढ़ाइए पापा। बहुत जोश आ रहा हो तो अपने ओछेलालों और जैनों के पास चले जाइए। लेकिन उनके सामने तो आपकी घिग्घी बंध जाती है। बहुत ओब्लाइज्ड हैं न आप उनसे।

—हाँ ओब्लाइज्ड हूँ। अगर डा० ओछेलाल न होते तो क्या मुझे कॉलेज में नौकरी मिल पाती। अगर ओछेलाल न होते तो क्या मैं पी-एच. डी. हो पाता। अगर ओछेलाल ने मुझ पर कृपा न की होती तो क्या मैं डॉक्टर बन पाता। मैं तुम्हारी तरह कृतघ्न नहीं हूँ। समझे।

—मैं खूब समझता हूँ पापा। आपको भी और आपके ओछेलाल को भी—उसकी मेहरबानियों को भी। आपने मेरे लिए जो कुछ भी किया, कोई एहसान नहीं किया। आपने बाप होने का धर्म भर निभाया है। और धर्म भी कैसा? स्वार्थ से भरा हुआ। शादी के बाजार में आप मेरी नीलामी करने पर तुले हुए थे। वह तो अच्छा हुआ, मैंने ऐसा नहीं होने दिया। आपकी नज़र सिर्फ पैसे पर अटकी रहती है। आप मुझे भी हमेशा यही सीख देते रहे कि बेटा पैसा बटोरो। पैसा होगा तो सब कुछ हो जायेगा ·· अब हो गया न पैसे से सब कुछ।

—अबे, अगर मैंने तुमसे पैसे जोड़ने की बात कही थी तो क्या अपने लिए? क्या मैं यह सारा ताम-झाम अपनी छाती पर ले जाऊँगा।

—ले जा सकें तो ले जाइए। आपमें एक कॉम्प्लेक्स है। एक हीन भावना है। एक हवस है, अपने को विशिष्ट दिखाने की। अपनी इस हवस में आपने मुझे भी झोंक दिया।

—हाँ, उस बदचलन ईसाई छोकरी के साथ भी मैंने ही तुम्हें फंसाया है न।

—पापा, मरियम के बारे में अब एक शब्द भी मत बोलना। वह मेरी बीवी है। अब अगर कुछ भी बोले तो बहुत बुरा हो जायेगा। अगर मेरी जबान खुल गयी तो ··

—बोल, बोल, तू क्या बोलना चाहता है।

—रहने दीजिए पापा, बोलूंगा तो बहुत कड़ुवा हो जायेगा। आप सह नहीं पायेंगे।

—नहीं, नहीं तू बोल · क्या कहना चाहता है तू। डॉ० तिवारी की आँखें गुस्से से लाल हो गई थीं।

—आप बतलाएंगे, उस ईसाई एयर हॉस्टेस के साथ आपके क्या सम्बन्ध रहे हैं ?

—किस ईसाई एयर हॉस्टेस की बात कर रहा है ?

—मिस डी सिल्वा की। जिसके साथ पिछले 8–10 सालों से आप अपना मेक-अप करके घूमते रहे हैं, जिसे होटलों में ले जाते रहे हैं, जिसे मौके-बेमौके प्रेजेंट्स देते रहे हैं···मैं उसी सिल्वा की बात कर रहा हूँ पापा। जिसके भाई के नम्बर बढ़ाने के लिए आपको डॉ० शीतांशु तक के पास जाने में कोई शर्म महसूस नहीं हुई। वैसे तो आप डॉ० शीतांशु के खिलाफ साजिशें रचते रहते हैं लेकिन अपनी प्रेमिका के भाई के नम्बर बढ़ाने के लिए···।

—विश्वास ! डॉ० तिवारी सोफे से उठकर गरज पड़े।

—आप बैठे रहिए। मैं जा रहा हूँ। आपको पता नहीं, आपके इस कारनामे से मुझे अपने कॉलेज के साथियों के सामने कितना नीचा देखना पड़ा है। कितना जलील होना पड़ा है। मिस डी सिल्वा तो सिर्फ एक मिसाल है। आपके पीठ पीछे आपके कारनामें वे लोग भी चटकारे ले-लेकर सुनाते हैं जिन्हें आप अपना और अपने गिरोह का समझते हैं··।

—तुम्हें गलतफहमी हुई है विश्वास ! डॉ० तिवारी का स्वर यकायक नरम पड़ गया था।

—मुझे कोई गलतफहमी नहीं है पापा। आपने जब अपने सगे-सम्बन्धियों से अपना धर्म नहीं निभाया, उनके साथ भी बेईमानी की तो···।

—मैंने किसी के साथ कोई बेईमानी नहीं की ।

—यह आप मुझसे कह रहे हैं पापा। उससे कह रहे हैं जो आपकी एक-एक नस पहचानता है···। जिस मामा ने आपको अपने यहाँ अपने बच्चे की तरह रखा, उसके मरने पर उसकी विधवा के साथ आपने क्या किया ? उसकी सारी जायदाद हड़प ली···। सारी चक्कियाँ अपने नाम लिखवा लीं और उसे दर-दर की ठोकरें खाने के लिए सड़क पर छोड़ दिया · । आपको मालूम है, मामी कई बार मेरे पास आ चुकी हैं। कभी बेचारी के पास आटा तक खरीदने के लिए पैसे नहीं होते···।

चक्कियों के मालिक की औरत सेरभर आटा तक खरीदने के लिए किसी दूसरे के सामने हाथ फैलाए··· इससे बड़ी अनहोनी और क्या हो सकती है···। और इसका जिम्मेदार कौन है ?

—अपने बाप पर इस तरह के लांछन लगाते तुझे शर्म नहीं आती ?

—बहुत शर्म आती है। इसीलिए तो कह रहा हूँ। वह भी जब आप पूछने पर ही तुल गए, तभी कह रहा हूँ। नहीं तो, मैं सालों से यह सब जानता हूँ। लेकिन बेटा होने के कारण कभी यह सब कहना नहीं चाहा था।

तभी दूसरे कमरे से श्रीमती तिवारी के ज़ोर-ज़ोर से सुबकने की आवाज़ आने लगी।

विश्वास मुड़कर उधर जाने लगा तो डॉ० तिवारी ने उसे रोकने की गरज़ से कहा—माँ के पास जाने की कोई ज़रूरत नहीं है।

विश्वास रुक गया। बोला—पापा, माँ के पास जाने के लिए आपसे पूछने की कोई ज़रूरत नहीं है मुझे। और आगे बढ़ गया।

डॉ० तिवारी उसे रोकने के लिए आगे बढ़े लेकिन तभी न जाने क्या सोचकर रुक गये।

विश्वास माँ के पास पलंग के कोने पर बैठ गया। माँ रोती रही और विश्वास चुपचाप उसका रोना देखता रहा।

कुछ समय यों ही बीत गया। फिर धीरे से विश्वास बोला—रोने की कोई ज़रूरत नहीं है माँ। अगर तुझे यहाँ कोई तकलीफ हो और मरियम को तू अपनी बहू स्वीकार कर सकती हो तो मेरे यहाँ चली आना। तू जब चाहे मेरे यहाँ आ सकती है।

श्रीमती तिवारी ने अब पहली बार बेटे की तरफ देखा···और उसे देखकर वह फिर जोरों से रोने लगीं।

विश्वास सोच ही नहीं पाया था कि वह माँ से क्या कहे।

अन्त में, माँ के पैरों को छूता हुआ वह बोला—अच्छा माँ ! मैं चलूँ।

और कह कर वह एक झटके में फ्लैट से बाहर निकल गया। बाहर सोफे पर बैठे पिता की ओर देखने की भी उसने ज़रूरत महसूस नहीं की।

एक झटके से दरवाज़ा बन्द होने की आवाज़ ने डॉ० तिवारी को भीतर तक हिला दिया। उन्हें महसूस हुआ कि जैसे किसी ने एक बाँह को गँड़ासे से काट कर अलग कर दिया है।

दस

रविवार की शाम थी।

डॉ० शीतांशु गैलरी में बैठे हुए अखबार पढ़ रहे थे। तभी दरवाजे की घंटी बज उठी। आज घर के सभी लोग बाहर गये हुए थे। विवश, उन्हें ही उठना पड़ा।

दरवाजा खोला तो देखा, सामने प्रो० कौशिक खड़े थे।

—अरे कौशिक जी आप। आइए···मैं आज ही आपको पत्र लिखने वाला था।

'डॉ० शीतांशु के साथ प्रो० कौशिक भीतर में आ गए।

—बैठिए·· मैं आपके लिए पानी लाता हूँ। कहकर डॉ० शीतांशु किचन की तरफ मुड़ गये।

प्रो० कौशिक कमरे का जायजा लेने लगे। किताबों के रेक्स। पत्र-पत्रिकाओं का ढेर···। फाइलें करीने से सजी हुई। पढ़ने की टेबल। टेबल लैम्प। सामने लेनिन का चित्र टंगा हुआ। टी० वी० के ऊपर नए डिजाइन का गुलदस्ता। गुलदस्ते में ताजे रजनीगंधा के फूल। और पास की नीली स्कूल ड्रेस में दो बच्चियों का एक सुन्दर फोटो।

कमरे की सज्जा से प्रो० कौशिक प्रभावित हो उठे।

तभी डॉ० शीतांशु ट्रे में शरबत का गिलास लेकर आ गये।

थोड़ा-सा उठकर प्रो० कौशिक ने गिलास उठा लिया—अरे डॉक्टर साहब, यह तकलीफ़ क्यों की आपने। फिर इधर-उधर देखकर बोले—क्या घर में मिसेज़ नहीं है।

—नहीं। वह आज बच्चों को लेकर पिक्चर देखने गयी है। आ जायेगी घंटे-आध घटे में। छह तो बज ही रहे हैं।

प्रो० कौशिक शरबत पी चुके तो डॉ० शीतांशु ने पूछ लिया—औप आज इधर कैसे आना हो गया।

प्रो० कोशिक बड़ी दयनीय हँसी हँसते हुए बोले—अब आपको तो पता ही है डॉक्टर साहब, मुझे इस साल एम० ए० में चैयरमैन बना दिया गया है। आप भी हैं ही। बड़ा अजीब लगता है, आपके सामने चैयरमैन बनते हुए। लेकिन आप जानते हैं, इसमें मेरी कोई शिरकत नहीं है।

डॉ० शीतांशु नीचे की ओर देखते हुए चुपचाप सुनते रहे। यूनिवर्सिटी का पत्र आते ही उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वह लिख देंगे कि वह बाहर जा रहे हैं। परीक्षा का काम नहीं कर पा सकेंगे। प्रो० कौशिक को भी आज वह इसी आशय का पत्र लिखने की सोच रहे थे।

डॉ० शीतांशु को खामोश देखकर प्रो० कौशिक ने फिर कहना शुरू किया—आपको कोई तकलीफ़ नहीं होगी डॉ० साहब। आप जो भी प्रश्नपत्र बनाना चाहें, बना दें। आप जिस प्रश्नपत्र की कापियाँ जाँचना चाहें, मुझे बतला दें। मैं सारी व्यवस्था कर लूँगा। आप निश्चित रहें।

—ऐसा है कौशिक जी। इस बार धीरे-धीरे शब्दों को पीसते हुए शीतांशु ने कहा—तीस साल में पहली बार मुझे एम० ए० में रखा गया है। आज से 15–20 साल पहले मुझे यह ऑफर मिलनी चाहिए थी। ओछेलाल जी—आपके चैयर-मैन साहब मुझे अपमानित करने का कोई भी मौका नहीं चूकना चाहते। क्या आप भी यह चाहते हैं कि मैं इस अपमान का घूँट पी लूँ···।

—क्या कहते हैं डॉ० साहब। अगर मैं ऐसा चाहता तो आपके पास क्यों आता। आप सच मानिए, मैं तो नाम मात्र का चैयरमैन हूँ। सारा निर्देश तो आपको ही देना है। आप जैसा कहेंगे, वैसा ही होगा। मेरी तो बस इतनी प्रार्थना है कि आप परीक्षक बने रहें। बस···। आप कहेंगे तो आपका सारा काम मैं कर दूँगा।

डॉ० शीतांशु मौन बने रहे।

मैं कल यूनिवर्सिटी गया था। आपकी स्वीकृति अभी तक वहाँ नहीं पहुँची है। डॉक्टर साहब, आप अपना स्वीकृति-पत्र मुझे दे दीजिए। मैं यूनिवर्सिटी में दे दूँगा। बड़ी चिरौरी-सी करते हुए प्रो० कौशिक बोले।

कुछ देर तक सामने पड़ी पत्रिका के पन्नों को देखते हुए अन्त में डॉ० शीतांशु बोले—आप यही चाहते हैं तो ठीक है। लेकिन एक बात है। इसके बाद आप मुझे फिर कभी मजबूर नहीं करेंगे।

—बिल्कुल नहीं डॉक्टर साहब। अगर अगली बार भी ऐसा हुआ तो मैं खुद रिजाइन कर दूँगा।

—चाय पियेंगे या कॉफी···।

—आप इसकी तकलीफ मत कीजिए। शरबत तो ले ही लिया है।

—ठीक है। मैं कल अपना स्वीकृति-पत्र भिजवा दूँगा।

प्रो० कौशिक हाथ जोड़ते हुए खड़े हुए। डॉ० शीतांशु उन्हें बाहर गेट तक छोड़ आए।

वापस लौट कर डॉ० शीतांशु अन्यमनस्क हो आए। उनके अपने विद्यार्थी कई साल पहले एम० ए० का परीक्षा-कार्य—पूरा कर चुके थे। डॉ० ओछेलाल ने पिछले बीस वर्षों से पैनल में उनका नाम होने के बावजूद उन्हें परीक्षक नहीं बनने दिया था। और अब जब बनाया भी तो एक जूनियर आदमी को चैयरमैन बना दिया। सिर्फ इसलिए कि डॉ० शीतांशु अपमानित महसूस करें और परीक्षा-कार्य स्वीकार न करें। ताकि ओछेलाल को उनके स्थान पर फिर अपने किसी चमचे को परीक्षक बनाने का मौका मिल जाय।

लेकिन प्रो० कौशिक ने जिस तरह से उनकी चिरौरी की उससे वह मना नहीं कर सके। हालाँकि उनके मन में शंका बनी रही कि इस सब में भी ओछेलाल की कोई चाल तो नहीं है।

बड़ी देर तक वह अन्तर्द्वन्द्व में खोये रहे। बाद में उन्होंने सोचा, जो होगा, देखा जायेगा। इस बार तो वह परीक्षक बन ही लें।

अंधेरा बढ़ने लगा था। उन्होंने उठ कर लाइट जला दी। तभी फोन की घंटी बज उठी। फोन एक स्थानीय कवि 'विकल' का था।

—कहिए विकल जी।

—...........

—जी, मैं घर पर ही हूँ।

—...........

—आ जाइए। कब तक आएँगे।

—...........

—ठीक है, मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगा। कह कर शीतांशु ने चोगा नीचे रख दिया।

कोई घंटे भर बाद विकल जी डॉ० शीतांशु की बैठक में थे। थोड़ी-सी औपचारिकता के बाद डॉ० शीतांशु ने पूछ लिया—और कहिए विकल जी, क्या हाल हैं। आज कैसे तकलीफ़ कर दी।

विकल जी ने धीरे से पास रखा अपना झोला उठाया और उसमें एक पतली-सी किताब निकाल कर डॉ० शीतांशु के हाथों में थमा दी। खामोश रह कर, वह डॉ० शीतांशु की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे।

डॉ० शीतांशु ने पुस्तिका के पृष्ठों को इधर-उधर पलटा और बोले—अच्छा, अच्छा! आपका कविता-संग्रह है। बधाई।

विकल जी खी-खी करके हँसने लगे।

—प्रकाशक कौन है। डॉ० शीतांशु फिर से पुस्तक के पृष्ठ पलटने लगे।

—खुद ही छपवाई है डॉक्टर साहब। आप तो जानते ही हैं, कविता के

लिए प्रकाशक कहाँ मिलते हैं। पहले की बात और थी···। अब तो अपनी गाँठ से पैसे खर्च करने पर भी किताब मन माफिक नहीं छप पाती।

—सो तो है। बात यह है कि आज जिन्दगी इतनी मुश्किल हो गयी है कि उसे कविता के माध्यम से नहीं कहा जा सकता। आज तो व्यंग्य का जमाना है या उपन्यास का। यही चीजें बिकती भी हैं। और प्रकाशक, बिकने वाली चीज़ों पर ही हाथ लगाता है। आखिर वह भी तो कुछ कमाने के लिए ही बैठा है। कविता और समीक्षा को छाप कर उसे अपना गोदाम थोड़े ही भरना है। है कि नहीं।

—लेकिन डॉक्टर साहब, कविता का सम्बन्ध तो हृदय से है, और जब तक हृदय रहेगा, अनुभूतियाँ रहेंगी, तब तक कविता भी रहेगी। मेरा मतलब है, कविता लिखी जाती रहेगी।

– मैं कब कहता हूँ कि कविता नहीं लिखी जाती रहेगी। हमने भी तो कविता से ही शुरू किया था। मैं तो सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि कविता के लिए प्रकाशक मिलना मुश्किल हो गया है। फिर भी लिखने की मजबूरी ही हो और उसे छपाना भी ज़रूरी हो—तो छपवाओ, अपनी गाँठ से ···।

—वही तो मैंने किया है डॉक्टर साहब। अब इस बुढ़ापे में यह पहला संग्रह छपवाया है।

—सचमुच, बड़ी हिम्मत की आपने। कितना खर्चा हो गया।

—करीब साढ़े तीन हज़ार लग गये। अब इसके विमोचन पर भी हजार-पाँच सौ का खर्चा हो जायेगा।

—अच्चा, अच्छा, इसका विमोचन भी करवा रहे हैं। बड़ी अच्छी बात है।

तभी 'विकल' जी ने अपने झोले में से निमन्त्रण-पत्रों का एक बण्डल निकाला और एक लिफ़फे पर डॉ० शीतांशु का नाम लिख कर उनके हाथ में पकड़ा दिया।

डॉ० शीतांशु ने लिफ़ाफा हाथ में लेकर उसे खोला। निमन्त्रण पत्र बढ़िया छपा था। वह उसे पढ़ने लगे।

अध्यक्ष डॉ० ओछेलाल थे और विशेष अतिथि डॉ० तिवारी। डॉ० जैन कविताओं पर एक पर्चा पढ़ने वाले थे। आयोजकों में डॉ० ओछेलाल और डॉ० तिवारी के कुछ चमचों के नाम थे।

—डॉ० शीतांशु ने कार्ड पढ़कर उसे एक तरफ सरका दिया।

—बहुत-बहुत धन्यवाद 'विकल' जी। मौका मिला तो मैं अवश्य आऊँगा। लेकिन मेरी एक बात समझ में नहीं आयी।

'विकल' जी प्रश्नसूचक मुद्रा में उनकी ओर देखने लगे।

– यह भागादौड़ी तो आयोजकों को करनी चाहिए थी। आप इस झंझट में क्यों पड़ रहे हैं।

—अब आपसे क्या छिपाना सर। कविता-संग्रह तो मेरा है न। मुझे ही इसके प्रचार के लिए दौड़-भाग करनी पड़ेगी। डॉ० ओछेलाल ने कहा कि आयोजकों में इन-इन के नाम डाल दो, मैंने डाल दिए। वैसे मैं ही इधर-उधर आ जा रहा हूँ। पन्द्रह-बीस दिन हो गए हैं। इस आपाधापी में···।

—शायद मेरा नाम भी उन्होंने सुझाया होगा। शीतांशु ने मुस्कराते हुए कहा।

'विकल' जी ही-ही करके हंसने लगे।

—आपतो सब कुछ जानते हैं सर! लेकिन मेरे मन में आपके प्रति सच्ची श्रद्धा है। आप आ जायेंगे तो मैं समझूँगा, मेरी इतनी मेहनत सफल हो गयी। फिर एक बात और है। कहते हुए 'विकल' जी थोड़ा सा सकुचा गये।

—कहिए न।

—आप आ जायेंगे तो फिर आपसे यह कहने की भी हिम्मत पड़ेगी कि इस पर किसी अखबार में दो-चार पंक्तियाँ लिख दें आप तो सभी पत्रिकाओं में लिखते हैं।

—विकल जी! आप निमन्त्रण न भी देते तो मैं लिख देता। मैं तो हमेशा नए लेखकों को आगे बढ़ाने की, उनको प्रचारित करने की बात सोचता हूँ। यह तो मेरा अपना काम है। इसके लिए बेकार ही इतना कष्ट किया है। कहते हुए डॉ० शीतांशु के स्वर में व्यंग्य की हल्की-सी छाया उभर आयी थी।

वह सोच रहे थे कि यह 'विकल' का बच्चा भी अपने को कितना होशियार और उन्हें कितना बेवकूफ समझ रहा है। साला, अध्यक्ष बनायेगा ओछेलाल को, विशेष अतिथि की कुर्सी पर बिठायेगा, उस तिवारी को जिसके लिए साहित्य के नाम पर काला अक्षर भैंस बराबर है, और अखबारों में प्रशंसा लिखवायेगा मुझसे। उन्हीं अपने पितामहों से क्यों नहीं लिखवा लेता।

लेकिन प्रकट में उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। कुछ भी नहीं कह सके, और अपने को नॉर्मल बनाए रखने की हरचन्द कोशिश करते रहे।

—अच्छा तो मैं चलूँ डॉक्टर साहब। 'विकल' जी ने अत्यन्त विनीत भाव से उठते हुए कहा।

—अच्छा 'विकल' जी। धन्यवाद। डॉ० शीतांशु भी खड़े हो गए।

—आप अवश्य आइए। आप आएँगे, तभी यह समारोह सफल हो पायेगा। और हाँ, समारोह के बाद जल-पान का भी प्रबन्ध है।

जलपान की बात सुन कर डॉ० शीतांशु का खून खौल उठा। लेकिन फिर भी अत्यन्त संयत होकर वह बोले—'विकल' जी, अगर मेरे आने से ही आपके इस विमोचन समारोह को सफल होना है तो एक काम कीजिए।

—आज्ञा दीजिए सर।

'विकल' जी के चेहरे पर अभी भी विनय चिपकी हुई थी।

—ऐसा कीजिए कि किसी व्यक्ति को उस दिन मेरे घर भेज दीजिए ताकि वह मुझे टैक्सी से ले जाय और बाद में टैक्सी से घर तक छोड़ जाय।

—मैं कोशिश करूँगा डॉक्टर साहब। कहते हुए 'विकल' जी का मुख फक पड़ गया था।

उन्होंने चाहा कि वह जल्दी से जल्दी वहाँ से निकल जायें।

'विकल' जी के जाने के बाद डॉ० शीतांशु गैलरी में आकर खड़े हो गये। उन्होंने देखा, उनकी पत्नी और बच्चे नीचे खड़ी टैक्सी से उतर रहे हैं।

ग्यारह

जैसे ही श्रीमती ओछेलाल अपने घर के पास बस स्टॉप पर उतरीं, उनकी नज़र सुमन अहलूवालिया पर पड़ गयी। वह एक क्षण के लिए चौंकी और उन्होंने उसे अच्छी तरह से पहचानने के लिए फिर से एक बार उसकी तरफ देखा।

लेकिन तब तक सुमन अहलूवालिया ने अपना चेहरा दूसरी तरफ मोड़ लिया था। इससे श्रीमती ओछेलाल की शंका विश्वास में बदल गयी।

वह तेज़ कदमों से घर की ओर चल पड़ीं और दरवाजे के सामने खड़ी होकर एक क्षण के लिए रुक कर कुछ सोचने लगीं। फिर उन्होंने पर्स से चाबी निकाली और गोदरेज़ के ताले को खोल कर कमरे में दाखिल हुईं। जैसा कि उनका विश्वास था, डॉ० ओछेलाल घर पर ही थे। बाथरूम से नल चलने की आवाज़ आ रही थी। एक क्षण बैठक में अपनी निगाहें फिराने के बाद वह बैडरूम में मुड़ गयीं। उन्होंने देखा, पलंग के बीचोंबीच तकिया मुचड़ा पड़ा है। बाकी सब सामान्य था।

तभी डॉ० ओछेलाल तौलिए से मुँह पोंछते हुए कमरे में दाखिल हुए। कालिन्दी को सामने देखकर वह हतप्रभ से रह गये लेकिन जल्दी ही संभल कर बोले—अरे कालिन्दी, आज जल्दी चली आयीं ?

उनकी बात का जवाब न देकर कालिन्दी ने पूछ लिया—घर में कोई आया था क्या ?

कुछ सोचते हुए से डॉ० ओछेलाल बोले—हाँ, दोपहर में तिवारी जी आए थे। क्यों क्या हुआ ?

—और वह सुमन अहलूवालिया नहीं आयी थी ? कालिन्दी ने ज़ोर देकर उनकी आँखों में एकटक देखते हुए पूछा।

इस अप्रत्याशित प्रश्न के लिए डॉ० ओछेलाल तैयार नहीं थे। जल्दी में, उपेक्षा के स्वर में बोले—हाँ, वह भी आयी थी। कल उसका 'वाइवा' है न। उसी के लिए कुछ गाइडैंस लेने आई थी।

—सिर्फ गाइडैंस लेने ··?

—आखिर तुम कहना क्या चाहती हो कालिंदी।

—जो कुछ मैं कहना चाहती हूँ उसे तुम खूब समझ रहे हो।

—तुम खामख्वाह बात बढ़ा रही हो।

—बात बढ़ाने के लिए तुम जिम्मेदार नहीं हो···? मैंने कई बार तुमसे कहा है, उसके पाँव इस घर में नहीं पड़ने चाहिएँ। तुम्हें जो गन्दगी फैलानी हो, अपने डिपार्टमेंट में फैलाओ। मेरे घर को गन्दा करने की कोई जरूरत नहीं।

—तुम शायद बहुत ज्यादा ही बोल रही हो।

—ज्यदा नहीं, यह सिर्फ शुरूआत है एक बात पूछूँ···।

—क्या है···? डॉ० ओछेलाल अब तक बिल्कुल झुंझला चुके थे।

—ऐसा क्यों होता है कि मेरी एबसेंस में ही यह लौंडिया घर में आती है।

—महज़ चांस की बात है।

—चांस की बात है? सिर्फ चांस की बात है। तुम दोनों मिलकर इस चांस को मैनुपुलेट नहीं करते।

—देखो कालिंदी।

—देखो आलोक, मुझे आँखें दिखाने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैं तुम्हें तब से जानती हूँ, जब से तुम दर्जी की दुकान के चबूतरे पर बैठ कर बटन टांका करते थे। और समझ लो, मैं तुम्हारी नौकरानी नहीं हूँ। और मैं कहे देती हूँ कि अगर आइन्दा इस लौंडिया ने मेरे घर में पैर रखा तो उसकी टाँगें तोड़ दूँगी। इस बात को तुम भी समझ लो··और अपनी उसको भी समझा देना···।

डॉ० ओछेलाल 'आलोक' गुस्से से खौल रहे थे। लेकिन उनकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी कि वह श्रीमती कालिंदी के सामने कुछ बोल सकें। उन्हें मालूम हो गया था कि उनकी चोरी पकड़ ली गयी है। औरत अपने मर्द की नस-नस पहचानती हैं। भले ही वह दूसरों के सामने उसका पक्ष ले लेकिन अकेले में मौका मिलने पर उसके मुखौटे को बड़ी निर्ममता से उतार फेंकती है। डॉक्टर ओछेलाल ने इस समम चुप रहना ही बेहतर समझा।

और जैसे ही श्रीमती कालिंदी कपड़े बदलने के लिए बाथरूम में गयी, उन्होंने जल्दी से बिस्तर ठीक कर लिया और उसी पर लेट कर अखबार की सुर्खियों पर आँखें फिराने लगे।

आज सुमन अहलूवालिया ऑफ व्हाइट कलर की साड़ी में थी। बस बार्डर भर आसमानी नीला था। कल ही डॉ० ओछेलाल आलोक ने कह दिया था कि

'वाइवा' के लिए आने वाले एक्सपर्ट डॉ० सुधाकर त्रिगुणायत पक्के शाकाहारी हैं। इसलिए बहुत ही सादे लिबास में आना। वैसे सुमन की साड़ी कहने भर के लिए सादी दीखती थी। रॉ सिल्क की यह साड़ी कम से कम 800–900 की तो होगी ही। साड़ी के साथ, सुमन ने जो मैचिंग चीजें पहन रखी थीं, वे साड़ी से भी कहीं ज्यादा मंहगी थीं।

सुमन ने डॉ० ओछेलाल को सीढ़ियों पर चढ़ते देख लिया था। उनके साथ एक कुर्ताधारी सज्जन भी थे। उसने अन्दाज लगा लिया, हों न हों यही डॉ० त्रिगुणायत हैं। उसके होठों पर एक हल्की मुस्कराहट खिल गयी।

सुमन कुछ देर वहीं सैकण्ड फ्लोर की गैलरी में ठहरी रही। उसने घड़ी में देखा, अभी सवा दस ही बज रहे थे। उसे साढ़े दस बजे विभागीय कार्यालय में बुलाया गया था। उसने सोचा, क्योंकि न कैंटीन में जाकर एक लिम्का पी लिया जाय। इतना सोचते ही, वह कैंटीन की ओर मुड़ गयी। कैंटीन विश्वविद्यालय के क्लर्कों से भरी थी। वह एक क्षण के लिए दरवाजे पर खड़ी होकर भीतर का जायजा लेती रही। लेकिन वहाँ कोई जगह ऐसी नहीं थी, जहाँ वह बैठ पाती। निदान वह वापस लौट पड़ी और कोने पर रखे कूलर से पानी पीने के लिए उस पर झुक गयी। लेकिन कूलर सूखा था। वहाँ से हट कर वह लम्बे बरामदे को पार करती हुई फर्स्ट फ्लोर की ओर बढ़ गयी। इसी फ्लोर पर विभागीय कार्यालय था, जहाँ उसका 'वाइवा' होना था।

कार्यालय के भीतर बगल वाली खुली केबिन में डॉ० ओछेलाल मौखिकी के लिए बाहर से आए डॉ० सुधाकर के लिए चाय तैयार कर रहे थे। दरअसल, डॉ० सुधाकर डॉ० लाल के सहपाठी और गहरे दोस्त थे। और अब कानपुर में एक कॉलेज में विभागाध्यक्ष थे। कुछ दिनों पहले डॉ० सुधाकर ने लिखा था कि उन्हें एक डॉक्टर दत्ता से कंसल्ट करने के लिए उनके शहर में आना है। सो, डॉ० लाल ने यूनिवर्सिटी के खर्चे पर उनको 'वाइवा' के लिए बुलवा लिया था। दोनों ने पढ़ाई के दौरान अपनी उभरती जवानी के दिन साथ-साथ गुजारे थे और उन दिनों की सारी गलतियाँ साथ-साथ की थीं। इस बार 15 वर्षों के बाद पहली बार मिल रहे थे।

—ओछे, तूने शक्कर खानी छोड़ दी है क्या ? डॉ० सुधाकर पूछ रहे थे।

यार, डाइबिटीज़ की शिकायत है थोड़ी सी, इसीलिए।

वाह, क्या बीमारी पाली है···स्साले, तू, हमेशा से ही क़िस्मत वाला रहा है···। सुधाकर अपने प्याले में चीनी मिलाते हुए हँस दिए।

ओछे को भी मुस्कराना पड़ा।

—और क्या चल रहा है ··और हाँ, तेरी पद्‌मा के क्या हाल हैं ? सम्पर्क है कि टूट गया।

—कौन पद्मा···।

—हाँ, स्साले, अब क्या याद रहेगा तुझे···। अरे, वही पद्मा, जिसके लिए तू रात-रात बैठकर कविता लिखता था···भूल गया उस पद्मा कश्यप को··तेरी जात ही ऐसी है···।

तभी सुमन ने भीतर प्रवेश किया···मे आई कम इन···। उसके होठों पर मोती-सी मुस्कराहट थी।

आओ···आओ सुमन। डॉ॰ साहब, इन्हीं का 'वाइवा' है। डॉ॰ ओछेलाल एकदम औपचारिक हो उठे थे। डॉ॰ सुधाकर ने एक ही नज़र में सुमन की देह-यष्टि का पूरा जायज़ा ले लिया···—आइए, बैठिए। उन्होंने भी औपचारिकता निभाते हुए कहा···।

मुस्कराती हुई सुमन ने डॉ॰ ओछेलाल के सामने की कुर्सी खिसकायी और थोड़ा हटकर डॉ॰ सुधाकर की बगल में बैठ गयी। सुमन के वस्त्रों से निकलती हल्के सेंट की सुवास ने उनका मन मोह लिया।

चाय पूरी करके डॉ॰ ओछेलाल, सुधाकर से बोले—आप शुरू करें, मैं आपके टी॰ ए॰ बिल देखता हूँ···।

अब केबिन में डॉ॰ सुधाकर के साथ सुमन अकेली रह गयी थी।

पास रखी थीसिस के पन्नों को पलटते हुए डॉ॰ सुधाकर ने पूछा—लगता है, आपने काफी मेहनत की है। कितने साल लगे आपको अपना शोध पूरा करने में ?

—जी सर, करीब चार साल लग गए।

—तभी तो···। विषय भी अच्छा है आपका। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के सन्दर्भ में महानगरीय जीवन की अभिव्यक्ति। इस विषय का चयन आपने खुद किया था या आपके निर्देशक ने ?

—सर, हम दोनों ने मिलकर ही किया था।

—ओह···। डॉ॰ सुधाकर खुलकर हँसने लगे।

—आपके निर्देशक इस विषय के बड़े माहिर हैं।

सुमन ने अपनी कॉलगेटी दंतपंक्ति दिखा दी।

—अच्छा, सुमन जी, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के सन्दर्भ में आपका क्या अनुभव है···मेरा मतलब है कि आपके क्या निष्कर्ष हैं···।

—सर, वह तो थीसिस के लास्ट चैप्टर में दे ही दिए गये हैं।

—चैप्टर को हिन्दी में क्या कहेंगी ?

—अध्याय भी कह सकते हैं सर और प्रकरण भी।

—स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का निरूपण किन-किन लेखकों ने सफलता के साथ किया है··?

सुमन कुछ याद करने की मुद्रा में आ जाती है। सामने कलैंडर की ओर देखती हुई वह शुरू करती है : एक तो भारती जी हैं सर, दूसरे अज्ञेय जी···?

—और ?

सुमन फिर अपनी गम्भीर मुद्रा बना लेती है। थोड़ा-सा नर्वसनेस भी महसूस करती है ··।

—बोलो, बोलो, घबराओ मत। डॉ० सुधाकर उसे उत्साहित करने की कोशिश करते हैं···

लेकिन सुमन को कुछ याद नहीं आ पाता। वह पनीली आँखों से डॉ० सुधाकर की ओर देखने लगती है···

—भई जैनेन्द्र का नाम ले सकती हो, राजकमल चौधरी का नाम भी ले सकती हो ·।

—जी···।

—अच्छा किसी महिला लेखक का नाम भी बतलाओगी ?

—सर, अधिकांश महिलाएँ तो घर-परिवार के कथानक पर ही लिखती हैं।

—फिर भी कुछ तो होंगी ।

सुमन काफी सर पटकती है लेकिन उसे कोई नाम याद नहीं आता।

—तुमने कृष्णा सोबती का नाम सुना है और मृदुला गर्ग···।

—जी, कृष्णा सोबती का 'आपका बंटी' मैंने पढ़ा है।

—'आपका बंटी' तो मन्नू भण्डारी का उपन्यास है।

—जी, जी ! सुमन बुरी तरह झेंप जाती है। उसके माथे पर पसीना चुह-चुहा आता है···।

—अच्छा, अब आप बतलाइए कि आप को अपनी थीसिस से सम्बन्धित क्या चीज़ आती है···।

तभी उसे डॉ० ओछेलाल की पिछली दोपहर की बात याद हो आई। उन्होंने उसे सहलाते हुए कहा था—'वाइवा' में बिल्कुल बोल्ड बनी रहना। एक्सपर्ट मेरा लंगोटिया दोस्त है। यह याद आते ही सुमन अपने में एक नयी हिम्मत महसूस करने लगी। उसने धीरे से लरजती हुई आवाज़ में कहा—एक बात कहूँ सर।

—हाँ, हाँ, कहो। डॉ० सुधाकर ने उसे प्रोत्साहन सा देते हुए कहा।

—आपको मेरी थीसिस के बारे में जो कुछ पूछना हो, सर से पूछ लें।

—सर से ? क्यों ?

—सर, थीसिस का कुछ हिस्सा उन्होंने लिखा है और कुछ ।

—कुछ क्या ?

—कुछ अपने दोस्तों से लिखवाया है।

—तुम जानती हो, तुम क्या कह रही हो।

—जानती हूँ सर।

डॉ० सुधाकर मुस्कराने लगते हैं···फिर बहुत हल्के होकर पूछते हैं—अच्छा आपने यह जो अंगूठी पहन रखी है—क्या यह कहीं बनवाई है ?

—जी, मेरे पापा पिछले साल काठमांडू गए थे, वहीं से लाए थे।

—हमें भी कुछ ऑर्नामैंट्स खरीदने हैं अपनी भतीजी के लिए।

—सर, मेरे पापा 'स्टेट ज्वैलर्स' के मालिक को अच्छी तरह जानते हैं। यहाँ के सबसे बड़े ज्वैलर्स हैं···आप कहें तो···।

—नहीं ऐसी कोई बात नहीं। डॉ० आलोक से कहूँगा, वे खरीदारी करवा देंगे।

तभी सुमन अपने बैग से लाल रंग के कागज़ में लिपटा एक पैक निकालती है···और उसे डॉ० सुधाकर की ओर बढ़ाती हुई कहती है – सर, यह छोटी-सी गिफ्ट आपके लिए है।

—क्या है इसमें ? कहते हुए वह उसे खोलने लगते हैं।

—आप खुद देख लीजिए सर !

डॉ० सुधाकर ने देखा—एक मखमली डिबिया में शेफ़र का सुनहला पैन-सैट रखा है। उन्होंने उसे सरका कर एक ओर रख दिया।

—आपके पिता क्या करते हैं ?

—उनका हींग का बिजनेस है सर। फार ईस्ट में एक्पोर्ट करते हैं।

—ओह !

तभी एक क्लर्क के साथ डॉ० ओछेलाल ने कमरे में प्रवेश किया। उन्हें देखते ही सुमन ने अपनी कुर्सी एक ओर सरका ली और ओछेलाल को अपनी कुर्सी तक पहुँचने के लिए जगह बना दी···

क्लर्क डा० सुधाकर से औपचारिकताएँ पूरी करवा कर वापस लौट गया।

—तो हो गयी मौखिकी ? डॉ० ओछेलाल ने पूछा—अब लंच का टाइम भी हो रहा है···।

इससे पहले सुधाकर कुछ कहें, सुमन बोल पड़ी—सर एक बात कहूँ।

—क्या ओछेलाल ने पूछा।

—सर, आज का लंच मैं दूँगी···।

—इसमें क्या पूछना ! डॉ० ओछेलाल बोले—तुम ऐसा करो, 'होटल प्रिंस' में में जाकर एक टेबल रिजर्व करवा लो। हम आध घंटे में आते हैं। जरा डॉ० साहब के टी० ए० का पैमेंट करवा दें।

—ठीक है सर ! सुमन ने मुस्कराती मीनाक्षियों से डॉ० सुधाकर की ओर देखा, दूरदर्शिनी मुद्रा में हाथ जोड़े और हेमानी पृष्ठभूमि को मटकाती हुई वहीदा रहमानी नज़ाकत के साथ बाहर निकल गयी। ●

बारह

सुबह की डाक देखने के बाद डॉ० ओछेलाल ने अब तक दो बार सरपैंसिल की गोलियाँ ले ली हैं। उनका रक्तचाप बढ़ गया है, इसीलिए।

अन्य पत्रों के साथ उन्हें यूनिवर्सिटी से भी एक पत्र मिला है। अगले महीने की अठारह तारीख को प्रोफेसरशिप का इण्टरव्यू है। कितने सालों बाद अब इस उम्र में उन्हें इन्टरव्यू की ज़िल्लत उठानी पड़ेगी। सुबह से न जाने कितनी बार वह डॉ० शैलेन्द्र को कोस चुके हैं। तब शैलेन्द्र ने ही सब कुछ गड़बड़ कर दिया था। नहीं तो, वह पन्द्रह साल पहले ही प्रोफेसर बन गये होते। बीच-बीच में डॉ० शीतांशु का चेहरा भी उनकी आँखों के सामने नाच-नाच जाता है। इन्टरव्यू वाले दिन उन्हें वेटिंग हाल में उसके साथ, उसकी बराबर में बैठना होगा। उस दृश्य की कल्पना मात्र से उनका मन मिचलाने लगता है। उसका मन होता है, डॉ० शीतांशु का मुँह नोच लें। लेकिन अपने लाल-काले-भूरे रंग-बिरंगे बालों को खुजलाने के अलावा वह कुछ नहीं कर पाते।

इसी डाक से एक दूसरा पत्र भी उन्हें मिला है। पी-एच० डी० की एक मौखिकी के लिए इसी माह के अन्त में उन्हें बनारस जाना है। इस पत्र से उन्हें थोड़ी राहत मिली है। वहाँ जाएँगे तो डॉ० सोमदत्त से भी बातें कर लेंगे। बहुत-सी बातें पत्रों में नहीं लिखी जा सकतीं। वहीं से डॉ० कृष्णकांत के दर्शन करने लक्ष्मीबाई यूनिवर्सिटी भी चले जाएँगे। उन्हें पता है, उनकी बहिन को कैंसर हो गया है। आगरा-दिल्ली ले गए थे, इलाज के लिए। लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ अब घर ही पर तीमारदारी चल रही है। डॉ० कृष्णकांत के रहते उन्हें कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। लेकिन परीक्षा और इन्टरव्यू तो भगवान के दिल में भी दहशत पैदा कर देते हैं। उनकी तो बिसात ही क्या है।

तभी दूसरे क्षण, वह अपने को समझाने लगते हैं। सारे एक्सपर्ट उनके ही नियुक्त किए हुए हैं। वी० सी० उनकी जेब में हैं। उनके सहयोगियों-साथियों ने उनका मॉरल भी ऊँचा कर रखा है। उन्हें किसी बात की चिन्ता क्यों होनी चाहिए वह सिर हिलाकर चिन्ता को झटक देना चाहते हैं। लेकिन हर झटके के साथ उन्हें ऐसा महसूस होता है कि जैसे उनके शरीर से उनका सिर छिटक कर अलग जा पड़ा है और चिन्ता उनकी छाती से चिपकी रह गयी।

छाती की चुभन को हल्का करने के लिए उन्होंने मेज़ पर रखे पानी के गिलास को अपनी ओर खिसकाया और एक घूंट पानी गले से नीचे उतार लिया। पानी पीकर उन्हें थोड़ी आश्वस्ति हुई। उन्होंने आराम करने की मंशा से पलंग पर पैर फैलाए ही थे कि तभी फोन की घंटी बज उठी। कुछ देर तक उन्होंने फोन को बजता रहने दिया और फिर चोगा उठाकर पीछे से बोले—हलो···।

—हलो सर ! आज कैम्पस में नहीं आए। मैं यहाँ कब से आपकी 'वेट' कर रही हूँ। दूसरी ओर से खनकती-इठलाती-सी आवाज़ थी।

—अरे सुमन तुम ! मैंने आज की छुट्टी ले रखी है। ऐसा है कि···

—आपकी तबियत तो ठीक है न। दूसरी ओर से पूछा जा रहा था।

—मैं बिल्कुल ठीक हूँ···। तुम वहाँ क्या कर रही हो।

—अभी तक नोटिफिकेशन नहीं निकला, मेरी थीसिस का। उसी के बारे में···।

—अरे, उसकी चिन्ता क्यों करती हो···निकल जायेगा। यूनिवर्सिटी के काम ऐसे ऐसे ही चलते हैं। हम कल आएँगे तो रजिस्ट्रार से कह देंगे।

—जी···।

—और क्या कर रही हो आज।

—अब तो हम फ्री हैं। आपका क्या प्रोग्राम है···।

—शाम को फ्री हो···।

—आप चाहेंगे तो···।

—ऐसा करो, शाम को पाँच बजे 'होटल आकाश' आ जाओ। वहीं समुद्र के किनारे कुछ देर बैठ लेंगे।

—ठीक है। मैं ठीक पाँच बजे वहाँ पहुँच जाऊँगी।

डॉ० शीतांशु जब घर लौटे, तब तक रात हो चुकी थी और टी० वी० पर हिन्दी में समाचार आ रहे थे। एनांउसर बतला रही थी कि शिक्षामन्त्री ने देश में नयी शिक्षा-नीति तैयार करने के लिए एक समिमि बना दी है जो अगले वर्ष के अन्त तक सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर देगी।

डॉ० शीतांशु के होठों पर एक झुंझलाहट भरी मुस्कान उभर आई। खाक नयी-शिक्षा नीति···। उन्होंने मुँह बिचका कर अपने आप से कहा। जब तक शिक्षा के क्षेत्र से इन कृष्णकान्तों, इन ओछेलालों और जैनों-तिवारियों की गन्दगी को साफ़ नहीं किया जाता, तब तक चाहे हज़ार नयी शिक्षा-नीतियाँ बना डालो,

सबकी सब कचरा बन कर रह जायेंगी। जरूरत इन घुन लगे 'कर्णधारों' को बदलने की है, नीति बदलने से क्या होगा। आकंठ भ्रष्टाचार में डूबे, जोड़- तोड़ के अखाड़ेबाज और टुच्ची मानसिकता वाले अध्ययन विरोधी अध्यापकों ने ही शिक्षा-संस्थानों में कोढ़ फैला रखा है। इन्हें बचाना है तो सबसे पहले इन कोढ़ियों से निजात पानी होगी।

अनु पानी का गिलास ले आयी थी। उसे लेते हुए डॉ० शीतांशु ने टी० वी० से अपनी आँखें फिरा ली और सौफे के एक कौने में बैठकर पानी पीने लगे।

पास ही रखे फोन के चोगे पर उन्होंने यों ही हाथ रखा था कि सहसा ही उसकी घंटी घनघना उठी। उन्होंने फोन उठा लिया और तटस्थ स्वर में बोले—हलो ! शीतांशु हियर।

—............

जी, नमस्कार कपूर साहव...कहिए कैसे याद किया ?

....

आ जाइए न। मैं घर पर ही हूँ।

............।

नहीं, नहीं, कोई परेशानी नहीं होगी। मैं काफी लेट सोता हूँ।

.... ।

ठीक है, मैं आपकी इन्तजार करूँगा। और डॉ० शीतांशु ने फोन रख दिया।

फिर कपड़े बदलने के लिए वे भीतर बैडरूम में चले गये। अनु पास ही बैठी कपड़ों की तह कर रही थी। डॉ० शीतांशु ने उनसे जल्दी खाना लगाने को कहा और बतलाया कि एक मिस्टर कपूर उनसे मिलने आ रहे हैं। आध घंटे में यहाँ पहुँच जायेंगे। अनु कपड़ों को वहीं एक किनारे पर रख कर रसोई में चली गयी।

डॉ० शीतांशु ने खाना पूरा किया ही था कि दरवाजे की घंटी बज उठी। उन्होंने जल्दी से उठ कर द्वार खोला तो देखा एक दुबला-पतला सा व्यक्ति सामने खड़ा है।

—कपूर साहब हैं न। उन्होंने शालीनता से पूछा और उन्हें भीतर ड्राइंग रूम में ले आए।

—आपने मुझे पहचान लिया। बड़ी तेज़ याददाश्त है आपकी। मिस्टर कपूर ने माथे का पसीना पोंछते हुए कहा।

—अरे क्या बात करते हैं कपूर साहब ! डी० एस० कॉलेज में आप दो साल तक मेरे 'कलीग' रहे हैं। शायद पॉलिटिक्स सब्जैक्ट था आपका !

—जी, जी। उसके बाद मैंने लॉ में पोस्ट ग्रेजुएशन किया। आजकल हाइ-कोर्ट में प्रेक्टिस कर रहा हूँ।

—अच्छा, अच्छा। तो कहिए न, अब आप प्रोफेसर से लॉयर हो गये हैं।

—ऐसी बात नहीं है डॉक्टर साहब। टीचिंग मैंने छोड़ी नहीं है। स्टेट लॉ कॉलेज में पार्ट-टाइम टीचिंग कर रहा हूँ।

—ओह, वैरी गुड ! कहिए, कैसे तकलीफ की।

डॉ० शीतांशु की तटस्थ 'टोन' से मिस्टर कपूर थोड़ा असमंजस में पड़ गये। लेकिन फिर सम्भल कर बोले—अभी कुछ दिन पहले मालूम हुआ कि आपके डिपार्टमेंट में बड़ी गड़बड़ चल रही है।

—कैसी गड़बड़ ? डॉ० शीतांशु ने कपूर को तौलते हुए एक अप्रत्याशित प्रश्न फेंक दिया।

—यही कि यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर की पोस्ट निकली है। आप भी उसके लिए कैंडीडेट हैं। और आपको परेशान किया जा रहा है।

—नहीं कपूर साहब, परेशानी जैसी तो कोई बात नहीं है। हाँ, मैं कैंडीडेट जरूर हूँ। लेकिन···।

—बात यह है डॉक्टर साहब, हम इतने सालों में भले ही मिले न हों। लेकिन अपने पुराने फ्रेंड्स की हम खोज खबर रखते हैं। आपने पिछले वर्षों में जितना काम किया है, वह किसी से छिपा नहीं है। मैं कई यूनिवर्सिटियों में जाता रहता हूँ। सब लोग आपके नाम और काम को जानते हैं···इतना नाम वैसे ही थोड़े हो जाता है···।

डॉ० शीतांशु की समझ में नहीं आ रहा था कि वह कपूर की बातों पर क्या टिप्पणी करें। उन्हें यह भी समज नहीं आ रहा था कि मिस्टर कपूर के उनके पास आने का आशय क्या है ?

—मैं चाहता हूँ कि यह पोस्ट अगर मिलती है तो आपको ही मिले। कपूर बोले।

डॉ० शीतांशु हल्के से मुस्करा दिए।

—और अगर आप चाहें तो यह आपको मिल सकती है। कहकर मिस्टर कपूर ने डॉ० शीतांशु की प्रतिक्रिया जानने के लिए उनकी आँखों में आँखें डाल दीं।

—वह कैसे··? डॉ० शीतांशु के स्वर में जिज्ञासा थी।

आपको मालूम ही होगा कि आपके प्रतिद्वन्द्वी डॉ० ओछेलाल हैं। ठीक है कि वह कई सालों से रीडर हैड हैं। लेकिन आपकी क्वालिफिकेशन और उनकी क्वालिफिकेशन में कोई कंपैरिजन ही नहीं है। और फिर एक बात और है। क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि एजूकेशनल इंस्टीट्यूशंस में बेईमान, कामचोर और सप्लायर किस्म के लोग नहीं आने चाहिएँ। आपकी मेहनत और ईमानदारी को

आपके विरोधी भी कबूल करते हैं। और आपकी 'स्पष्टवादिता' जिसके कारण लोग-बाग आपको मुँहफट कहते हैं, और ईमानदारी और ईंटैगरिटी का लोहा तो आपके विरोधी भी मानते हैं। और···।

डॉ० शीतांशु को इस सबसे संकोच अनुभव हो रहा था।

—आप चाय पीयेंगे या कॉफी ? उन्होंने विषयान्तर करने के लिये कपूर से पूछ लिया।

—नहीं, उसकी कोई जरूरत नहीं। मैं खाना खाकर ही निकला हूँ। हाँ तो मैं यह कह रहा था···।

—अनु, जरा दो कप काफी तो बना दो। डॉ० शीतांशु ने पत्नी को आवाज लगा दी।

—हाँ तो मैं कह रहा था कि यह पोस्ट आपके अलावा और किसी के पास नहीं जानी चाहिये।

डा० शीतांशु की समझ में नहीं आ रहा था कि कपूर आखिर क्या कहना चाह रहे हैं और वह क्या कहें। उन्होंने उन्हें बोलने दिया।

—इतना तो आपको पता लग ही गया होगा कि आपके एक्सपर्टस कौन–कौन हैं ?

—जी थोड़ा बहुत पता तो है।

लेकिन आपको यह मालूम नहीं होगा कि ओछेलाल ने डा० बलजीत नाहर के पास दस हजार रुपये भिजवाये हैं।

—क्या ?

— और क्या ? रीडरी के लिये भी सोफा–सेट भिजवाया था कि नहीं। यह तो सबको पता ही है। प्रोफेसर शुक्ला लेकर गये थे। अब आगे की बात बतलाऊँ तो आपको विश्वास भी नहीं आयेगा।

—लक्ष्मीबाई नगर में डा० कृष्णकान्त अपनी कोठी बनवा रहे हैं। उन्हें 25 हजार रुपये देने की बात पक्की हो गयी है।

डा० शीतांशु चुपचाप कपूर का मुँह देखते रहे।

कपूर बोलते जा रहे थे—देखिये डाक्टर साहब, कसाइयों की इस व्यवस्था में गाय बन कर नहीं रहा जा सकता। आपको भी कुछ करना चाहिये।

अनुराधा धीरे से मेज पर काफी रख कर लौट गयी।

—मैं क्या कर सकता हूँ कपूर साहब। न तो मेरे पास पैसा है, न मैं इस तरह की जोड़-तोड़ में विश्वास करता हूँ।

—तो क्या आप पर अन्याय होता रहे और और आप सहते चले जायेंगे।

—तो आप ही कुछ बतलाइये कि ऐसी हालत में क्या किया जा सकता है।

—वही तो……। कपूर साहब ने जोर से सोफे के हत्थे पर मारा और बोले—इसीलिये तो आपके पास आया हूँ। कहते हुये कपूर साहब रुक गये और डा० शीतांशु के चेहरे की ओर देखते हुये उन्हें तौलने की कोशिश करते रहे।

काफी की एक-दो घूँट भरने के बाद उन्होंने कहना शुरू किया—डा० साहब डा० ओछेलाल की बदमाशियों को रोकने के लिये आपको भी कुछ ठोस फूलप्रूफ कदम उठाने होंगे। लोहे को गत्ते की छेनी से नहीं काटा जा सकता। उसके लिये लोहे की ही जरूरत पड़ती है। मैं आपका शुभचिंतक हूँ आप यह मानकर चलिये। मैं यह चाहता हूँ कि आप कोर्ट में एक रिट पिटीशन दाखिल कर दें।

—रिटपिटीशन ? डा० शीतांशु थोड़ा सा चौंके।

—लेकिन किस आधार पर।

—आप 'हाँ' तो कहिये, आधार तो बीसियों निकल आयेंगे।

—फिर भी !

—देखिये, एक तो आप एक्सपर्ट के एप्वाइंटमैंट्स को ही चैलैंज कर सकते हैं। आप कह सकते हैं कि सारी नियुक्तियाँ मैनुपुलेटैड हैं।

—कैसे ?

—आखिर एक्सपर्ट का चुनाव किसने किया। ओछेलाल रीडर है। वह तो प्रोफेसर शिप के लिये एक्सपर्ट को रिकमण्ड कर नहीं सकता। दूसरे वह खुद कैंडीडेट है। और जहाँ तक एकेडिमिक कौंसिल का सवाल है, उसमें कोई माई का लाल ऐसा है नहीं जिसे आपके सब्जेक्ट की ए बी सी भी आती हो……। तब किसने ये एप्वाइंटमैंट रिकमण्ड किये या करवाये। इससे भी बड़ी बात यह है कि जो बाड़ी एप्वाइंटमैंट करने योग्य थी, वहाँ यह मामला रखा ही नहीं गया। मेरा मतलब बोर्ड आफ स्टडीज से है।

—आह तो कपूर साहब, हमारे डिपार्टमैंट के बारे में मुझसे भी ज्यादा जानते हैं। डा० शीतांशु थोड़ा-सा मुस्कराए।

—अब आप ही कहिये डाक्टर साहब, केस बनता है कि नहीं।

—बनता तो है। लेकिन……

—इतना ही नहीं डाक्टर साहब, एक दूसरा प्वाइंट भी है आपके सभी एक्सपर्ट उसी विषय के विशेषज्ञ हैं जिसके ओछेलाल हैं—इससे मैनुपुलेशन साफ-साफ साबित हो जाता है। होता है कि नहीं। बोलिये।

इस बार डा० शीतांशु थोड़ा सा चौंके। वह एक्सपर्टों के नाम जानते थे। उनके विशिष्ट अध्ययन के बारे में भी उन्हें मालूम था। लेकिन यह बात उनके ध्यान में ही नहीं आई थी कि ओछेलाल ने इतना गहरा खेल-खेला है। वह मन ही मन ओछेलाल की चालाकी की प्रशंसा करने लगे।

कुछ सोचते हुये बोले—कपूर साहब, केस तो बनता है लेकिन मैं खुद

कैंडीडेट हूँ। मैं कह सकता हूँ कि फलां–फलां लोग एक्सपर्ट हैं। मुझसे पूछा जा सकता है कि आपको उनके बारे में कैसे पता लगा ?

—वाह यह भी कोई बात हुई। आप कह सकते हैं कि एक रिलायेबल सोर्स से पता लगा है—और इस फैक्ट को कन्फर्म किया जा सकता है।

—लेकिन अगर कोर्ट में जाने के बजाये वी० सी० को अपना केस रिप्रेजेंट किया जाये तो कैसा रहेगा ?

—आप बहुत विद्वान तो हैं डाक्टर साहब लेकिन उससे ज्यादा भोले हैं। पहली बात तो यह है कि इस यूनिवर्सिटी में कोई केस साल भर से पहले खोला ही नहीं जाता। फिर हमारे ये वी० सी०। वह तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के बुद्धिजीवी हैं। इस तरह की पालिटिक्स में उनका कोई इन्ट्रेस्ट है ही नहीं। आपके रिप्रिजे–टेंशन को फाइल कर देंगे। बस, आग देखते रहिये। ओछेलाल प्रोफेसर हो जायेगा।

डा० शीतांशु कुछ समय तक सोचने की मुद्रा में बने। फिर उन्होंने कहा—कपूर साहब, आपकी बात समझ में तो आ रही है लेकिन······।

—लेकिन–वेकिन कुछ नहीं डाक्टर साहब। आप बस रिट पेटिशन फाइल करने के लिये 'हाँ' कह दीजिये। बाकी मैं देख लूँगा।

—मुझे एक-दो दिन सोचने का मौका दीजिये।

—इसमें सोचने की क्या बात है। सारी बातें तो साफ हैं······।

—फिर भी······।

—ठीक है। मैं अब कब आऊँ आपके पास······।

—मैं आपको फोन कर लूँगा। आप अपना नम्बर दे दीजिये।

कपूर ने अपना ब्रीफकेस खोल कर अपना विजीटिंग कार्ड डा० शीतांशु के के हाथों में थमा दिया।

फिर कुछ देर बाद कपूर साहब डा० शीतांशु से विदा लेकर चले गये।

कपूर साहब ने सचमुच डा० शीतांशु को चिंता में डाल दिया था। बहुत पहले के थोड़े से परिचय का सहारा लेकर कोई व्यक्ति उनके पक्ष के समर्थन के लिये इतना उत्साहित हो सकता है, यह बात भी उनकी समझ के बाहर थी। लेकिन उसने जो बातें जिस तरह कीं, वे बात भी अपनी जगह पर सही थीं इस सबसे डा० शीतांशु असमंजस में पड़ गये थे।

पलंग पर लेटे–लेटे डा० शीतांशु यह सब सोच ही रहे थे। कि अनु भी

रसोई का काम कर उनके बगल में आकर लेट गयी। फिर एकाएक उठते हुये बोली—न्यूज सुनोगे, दस बजने वाले हैं। टी० वी० चला दूँ।

—नहीं, रहने दो। असली न्यूज तो कपूर साहब सुना गये हैं।

अनु के पूछने पर डा० शीतांशु ने कपूर साहब के साथ हुई सारी बातें तफसील में उसे बतला दीं। अनु कुछ देर तक सोचती रही, फिर बोलो देखो अंशु, तुम इन चक्करों में मत पड़ो। इन्टरव्यू लेटर आ गया है। मजे में इन्टरव्यू दो··· हो जाये तो ठीक, नहीं तो जहाँ हो, ज्यादा सुखी हो। अब इस पक्की उम्र में बेकार में सर–दर्द क्यों लेते हो।

—लेकिन स्टेटस भी, कोई बात होती है अनु।

जरूर होती है। लेकिन सबके लिये नहीं। अच्छा तुम बतलाओ, मैं फिर पूछती हूँ, तुम्हारी प्रायर्टी क्या है—यूनीवर्सिटी में प्रोफेसर बनना या अपने लिखने–पढ़ने का काम करना। ठीक है, प्रोफेसर हो गये तो तुम्हें दस-पाँच चमचे ऐसे जरूर मिल जायेंगे जो तुम्हारे आगे-पीछे मंडराते रहेंगे। तुम्हारी सब्जी ला देंगे। तुम्हारे बच्चों के लिये प्रजेन्टस लेकर आ जायेंगे। कहीं जाओगे तो तुम्हारी टिकट रिजर्व करवा देंगे। तुम्हारा सामान लेकर तुम्हें स्टेशन पहुँचा देंगे। गोष्ठियों के तुम अध्यक्ष बनने लगोगे······कभी-कभी अखबार के किसी कोने में तुम्हारा नाम भी छपने लगेगा······लेकिन पाँच-छह साल बाद जब तुम रिटायर हो जाओगे तो कोई चेला कटी अँगली पर मूतने भी नहीं आयेगा। तब कितना अकेला और उपेक्षित महसूस करोगे अपने को। जानते हो······।

—ऐसा है अनु······।

—तुम पहले मेरी सुनो······तुम तो प्रोफेसर हो ही, लेकिन तुम्हें भी कभी-कभी लेक्चर देना जरूरी हो जाता है। आज तुमने अपना जितना लिखना–पढ़ना फैला रखा है, उतना सब यूनीवर्सिटी में और लोगों के बीच रहकर कर पाओगे जो हमेशा तुम्हारी जड़ें उखाड़ने का मौका ढूँढ़ते रहते हैं? वहाँ तुम्हारा आधा वक्त नोटिसों पर दस्तखत करने, मिलने आने वाले चमचों को चाय पिलाने और मीटिंगों में इधर-उधर आने-जाने में हो निकल जायेगा। इतना ही नहीं······

—तो तुम क्या कहती हो?

—मैं तो यही कहती हूँ कि अब जब इन्टरव्यू लेटर आ ही गया है तो बिना किसी डिस्टर्बेंस के इन्टरव्यू एटेंड करो। कोर्ट-वोर्ट के लफड़ों में पड़ने की जरूरत नहीं है। क्या पता उसमें भी डा० ओछेलाल की ही कोई चाल है, क्या पता यह कपूर उन्हीं का आदमी हो। क्योंकि अगर तुम कोर्ट में गये तो बाद में यूनीवर्सिटी में तो तुम ब्लैक लिस्टेड हो ही जाओगे। तब रहे-सहे चाँसेज भी नहीं रहेंगे। तुम समझ रहे हो न।

डा० शीतांशु ने एक हुँकारा भरा और खामोश हो गये। उन्हें लग रहा था

कि अनु ठीक ही कहती है······हो सकता है कि कपूर ओछेलाल का ही आदमी हो······नहीं तो कोई औपचारिक परिचय वाला व्यक्ति इतनी आत्मीयता कैसे दिखा सकता है––

वह सोचने लगे।

अनु फिर समझाने के स्वर में बोली—यूनीवर्सिटी से तुम्हारा हो जाता है तो अच्छा, नहीं होता है तो और भी अच्छा। अपना काम तो करोगे। कोई सड़क पर थोड़े ही पड़े हो······।

फिर कुछ रुक कर उसने कहा—अच्छा अब शांति से सो जाओ। मुझे भी सुबह ड्यूटी पर जाना है। और अनु ने पास रखे टेबल-लैम्प का स्विच आफ कर दिया।

तेरह

होटल आकाश ।

परमिट रूम के एक कोने में डॉ० ओछेलाल के साथ एडवोकेट हीरालाल कपूर बैठें थे । धुँधली रोशनी और हल्के म्युजिक के साथ पूरे माहौल में हल्का-हल्का सरुर उभरने लगा था ।

कपूर से सारी बात सुन चुकने के बाद ओछेलाल बोले––और तो मुझे कोई डर नहीं है । बस कभी-कभी लगता है कि शीतांशु ही कहीं कोई गहरी चाल न चल रहा हो । कल बोर्ड की मीटिंग में आया था । साला बिल्कुल निर्द्वन्द्व लग रहा था । मैं सोच रहा था, इन्टरव्यू के बारे में कोई बात करेगा । लेकिन मजाल है, उसने एक हिन्ट भी दिया हो ।

––मुझसे भी उसने कम ही बात की । लेकिन मुझे नहीं लगता कि उसे कहीं से सपोर्ट है । मुँह फट वह है ही । ऐसे लोगों के बड़े लोगों से सम्बन्ध बन ही नहीं सकते । हाई पोजीशन वाले सामने वाले इंसान में एक सलीका, एक शालीनता, आदरभाव और गम्भीरता देखना चाहते हैं । इन्हीं चीजों से वे लोग प्रभावित होते हैं । और शीतांशु में ऐसा तो कुछ है नहीं ।

––हाँ, वैसे तुम्हारी बात भी ठीक है । डा० ओछेलाल ने एक घूँट भरते हुये कहा । फिर घड़ी देखते हुये बोले––देखो, यह जैन का बच्चा अभी तक नहीं आया । सात बजने वाले हैं । कह रहा था, साढे छह बजे तक पहुँच जाऊँगा ।

––आ जाएगा जायेगा कहाँ ? कह कर हीरालाल कपूर 'हो-हो करके हँसे और उन्होंने अपना गिलास खाली कर दिया और बेयरे को आवाज दी ।

––कपूर भाई, मेरे लिये नहीं, बस । ओछेलाल ने कपूर को रोकते हुये कहा––आपकी कम्पनी के लिये दो पैग ले लिये, और अब और नहीं । ज्यादा हो जाती है तो रात को नींद नहीं आती ।

––नींद न आने के तो दूसरे कारण होंगे । कपूर ने एक शरारत भरी नजर ओछेलाल पर डाली और हल्के से मुस्करा दिये ।

तभी 'बार' का दरवाजा खुला और डा० जैन ने चश्मे के भीतर छिपी बिल्ली आँखों से इधर-उधर देखा । कोने की मेज पर डा० ओछेलाल को देखकर उनकी आँखों में चमक आ गयी और वह लपक कर उसी ओर को बढ़ गये । भीगी हुई छतरी को उन्होंने कन्धे पर पड़े झोले में डाल लिया ।

——आओ भाई, हम कब से तुम्हारा इन्तजार कर रहे थे। कपूर साहब को तो तुम जानते ही हो।

डा० जैन ने बालों का पानी पोंछते हुये एक कुर्सी अपनी ओर सरका ली। और हीरालाल कपूर की तरफ अपने हाथ जोड़ दिये। बारिश में उनके मुचड़े हुये कपड़े और भी ज्यादा मुचड़ गये थे।

कपूर साहब ने बड़ी तत्परता से अपना हाथ आगे बढ़ा दिया और उसी साँस में डा० जैन से पूँछ लिया——क्या लेंगे जैन साहब। साथ ही बेयरे को भी आवाज लगा दी।

——जी, आप लीजिये। वैसे मुझे इसकी आदत नहीं है।

——फिर भी······। कपूर ने थोडे अधिकार के से स्वर में कहा।

——आप कहते हैं तो थोड़ी सी बीयर ले लूँगा।

——ठीक है।

कपूर ने अपने और ओछेलाल के लिये मैकडुअल के लार्ज पैग, और डा० जैन के लिये "हैवर्ड" की बीयर का आर्डर दे दिया।

बेयरा आर्डर लेकर चला गया।

—हमारा टिकट हो गया ? डा० ओछेलाल ने पूछा।

—जी,। डा० जैन ने अपने झोले से पर्स निकाल कर फर्स्ट क्लास का एक टिकट उनकी ओर बढ़ा दिया।

टिकट लेते हुए डा० ओछेलाल ने कहा—कपूर साहब, इस प्रोफेशन का एक मात्र फायदा यह है कि इसमें आपको कुछ ईमानदार और निष्ठावान विद्यार्थी मिल जाते हैं। अब देखो, पहले जैन हमारे स्टुडैंट थे, फिर जब हम कालेज में थे तो हमने इनको ले लिया, ले ही नहीं लिया, जाते–2 डिपार्टमैंट का हैड भी बनवा दिया। अब हम यूनिवर्सिटी में आये तो इनको लैंग्वेज बोर्ड में तो लिया ही, अनेक कमेटियों में भी ले लिया। हम तो कपूर साहब एक बात जानते हैं, ईमानदार और सिंसियर लोगों के लिये मैं 'आउट आफ द वे' जाना भी बुरा नहीं मानता। अब पूछिये इनसे ही, सारा डिपार्टमैंट इनको दे रखा है कि नहीं।

इस पूरे वक्तव्य के बीच डाक्टर जैन बीयर की सिप लेते हुये आत्म-विभोर हो रहे थे।

—हमें क्या बतलाते हैं डाक्टर साहब। कपूर साहब ने मूँगफली के कुछ दाने मुँह में डालते हुये कहा—आपकी इंटैगरिटी को तो हम पिछले तीस वर्षों से जानते हैं। आपकी वो जो संस्था है न—क्लचरल आर्गेनाइजेशन–क्या नाम है उसका-सरकार या सहकार–ऐसा ही नाम है न–उसके द्वारा कितनों का उपकार किया है आपने। इन सालों में आपके और आपके आब्जक्टस के बीच इस संस्था ने मीडियेटर की जो भूमिका निभायी है वह सचमुच काबिले तारीफ है। और ऐसा कहकर कपूर

ने डा० ओछेलाल की ओर देखकर मुस्करा दिया। डा० ओछेलाल ने धीरे से आँख दबाकर कपूर को जैसे यह संकेत देना चाहा कि इस बात को आगे न बढ़ाया जाय।

संकेत समझ कर कपूर साहब गिलास पर झुक गये।

—और जैन, तुम्हारे शोध विद्यार्थियों का क्या हाल है। हम चाहते हैं कि तुम जल्दी से एक-दो पीएच० डी० निकाल दो। ऐसा है कि डिपार्टमैंट में कुछ और पोस्टें निकलने वाली हैं जाते-2 तुम्हें उनमें कहीं फिक्स कर देंगे तो रिटायरमैंट के बाद भी यूनिवर्सिटी में अपना आना-जाना बना रहेगा।

—ऐसा है सर, दो थीसिसें तो लगभग तैयार हैं। पिछली मीटिंग में एक के परीक्षक भी नियुक्त हो चुके हैं।

—किसके······।

—अपनी "कलीग" है न सर। मिसेज नीला सबनिस। उसी की थीसिस के।

—अरे हाँ, वह, उसकी थीसिस जल्दी पूरी करा डालो।

—सर, अब और कितनी जल्दी करूँ। आधी से ज्यादा तो मैंने ही तैयार की है। उधर आपने सुमन जी के साथ-साथ पंडित रवि की भतीजी के भी तीन चैप्टर मेरे मत्थे मढ़ दिये। उसी में काफी टाइम निकल गया। लेकिन फिर भी नीला जी का काम जल्दी ही पूरा हो जायेगा।

—कपूर साहब, डा० जैन बहुत मेहनती हैं। मुझे अपने इस विद्यार्थी और सहयोगी पर गर्व है। इतनी निष्ठा और समझदारी तो पत्नी में भी नहीं होती।

—आप बड़े फारचुनेट है डाक्टर साहब। सच, भाग्य बड़ी बात है। भाग्य से ही ऐसे सहयोगी मिलते हैं। आपको मानना पड़ेगा कि आपको प्रगति में आपके सहयोगियों का भी कन्ट्रीब्यूशन है।

—कन्ट्रीब्यूशन ? कन्ट्रीब्यूशन की क्या बात कहते हैं कपूर साहब। मैं तो इन्हीं लोगों के कारण जिंदा हूँ। ये लोग ही मेरी ताकत हैं। मेरी शक्ति–आई मीन माई स्ट्रेंथ। इनके बिना मैं क्या हूँ। मैं कुछ भी नहीं हूँ। आई स्वेयर। डा० ओछेलाल अब थोड़ा-थोड़ा सरूर में आने लगे थे।

गिलास की विहस्की खत्म होते देखकर कपूर ने पूछ लिया—डाक्टर साहब, थोड़ा और हो जाये। बाहर अभी भी बारिश हो रही होगी। और डाक्टर जैन की आधी बीयर तो अभी वैसी ही रखी है।

—चलिये ठीक है है। आप कहते हैं तो······वैसे अपना कोटा तो पूरा हो गया। यू नो कपूर साब, आई टेक ड्रिंक्स फार एंज्वायमैंट। नाट फार सबसाइडिंग आर फारगैटिंग वरीज। यू नो, आई डोंट हैव एनी वरी······एक्सैप्ट देट······देट रास्कल। कहते-2 डा० ओछेलाल रुक गये और उन्होंने गिलास मुँह से लगाकर आखिरी घूँट गले के नीचे उतार लिया।

—डोंट वरीं। मेरे रहते यू शुड नाट हैव ऐनी वरी। और बोलिये, खाने के लिये क्या मंगाऊँ……। चीज पकौड़ा चलेगा ?

—अरे कुछ भी मंगवा लो कपूर ! सब चलेगा…………। थोड़ा काजू-वाजू………।

कपूर साहब ने बेयरा को बुला कर आर्डर दे दिया।

· · · · · ·

खाना खाते हुये कपूर ने पूछ लिया—और डाक्टर साहब, इस संडे को आपका क्या प्रोग्राम है।

—संडे को। मैं तो फ्राइडे को ही बनारस जा रहा हूँ। एक वाइवा है। डा० जैन वहीं की तो टिकट लाये हैं। पहले सोचा था, प्लेन से ही जाऊँ। लेकिन फिर बरसात की बात सोचकर फ्लाई करने की बात कैंसिल कर दी।

—ओह, मैं तो सोच रहा था कि आप भी साथ रहते तो अच्छी कम्पनी रहती।

—आपको कम्पनी की कहाँ कमी है।

—क्या बात करते हैं आप भी। पहले जब हम आपकी संस्था में आया करते थे, आप ही कभी-कभी हमें कोई अच्छी सी कम्पनी दिलाकर ओब्लाइज कर दिया करते थे। अब तो सालों बीत गये……।

—ऐसी क्या बात है कपूर साहब……आप कहें तो आपकी कम्पनी के लिये कोई नया इन्तजाम कर दें।

—आप होते तो हमें किसी और कम्पनी की जरूरत ही नहीं पड़ती। लेकिन अब आप यहाँ हैं ही नहीं तो फिर तो कुछ न कुछ आपको करना ही पड़ेगा……।

बैंगन के भरते को किसी तरह मुँह में डालते हुये डा० आंछेलाल ने भरी हुई आँखों से डा० जैन की ओर देखा। फिर झूमते हुये अंदाज में बोले—जैन।

—जी सर। डा० जैन ने जल्दी से अपने मुँह का कौर गले के नीचे उतार लिया।

—देखो, कपूर साहब संडे को खण्डाला जा रहे हैं। तुम्हें मालूम है इनका होटल है वहाँ। और इन्हें कम्पनी चाहिये।

—तो मैं इनके साथ चला जाऊँ सर।

—बेवकूफ कहीं का ? तेरा अचार डालेंगे वहाँ ?

—तो सर। डा० जैन के मुँह से शब्द ही नहीं निकल पा रहे थे।

—देखो……अपनी नीला सबनिस को इनके साथ भेज दो। शाम तक…… लौट आयेंगे ये। क्यों कपूर साहब……।

—आप क्या कह रहे हैं सर ।

—हम ठीक कह रहे हैं······दिस इज अवर रिक्वेस्ट । रिक्वेस्ट फर्स्ट । देन इंस्ट्रकशन······। अंडरस्टैन्ड-इंस्ट्रकशन······। और लास्टली डा० प्रमोद जैन······ दिस इज अवर आर्डर । अण्डर स्टैन्ड ।

डा० जैन की घिग्घी बंध गयी थी । काँपते हाथों से पानी का गिलास उठाते हुये उन्होंने उसे होठों के पास लगा लिया······। और तभी उन्हें डा० ओछे लाल की ठोस आवाज सुनाई पड़ी······दिस इज अवर आर्डर······क्या समझे···?

—जी सर ! डा० जैन ने महसूस किया कि जैसे किसी ने उनके सीने पर बर्फ की सिल रख दी हो ।

चौदह

ट्रेन में डॉ० ओछेलाल का अधिकांश समय आँखे मूँदकर प्रार्थना करते हुए ही बीता। बार-बार उनकी आँखों के सामने आर्शीवाद देती साईबाबा की मूर्ति अवतरित होती और उनके सिर पर हाथ रखकर लुप्त हो जाती। डॉ० ओछेलाल फिर ध्यान मग्न होकर साई बाबा का आह्वान करते और चाहते कि साईबाबा उनके सिर पर हाथ रखे रहें। उनके पास ही बर्थ पर बैठ जाँय। और अगर बाबा को तकलीफ होती हो तो वह खुद नीचे फर्श पर बैठने के लिये भी तैयार थे। लेकिन साईबाबा ने ऐसा कोई निर्देश नहीं दिया। वह पहले की तरह प्रकट होते रहे और प्रकट होकर लुप्त होते रहे। कुछ मौकों पर ओछेलाल ने गणेश जी को भी याद किया। वह मन ही मन बुदबुदाते—हे गणेश जी,—विघ्नहर्ता गणेश जी, मेरे विघ्न हरो। जो भी मेरे रास्ते में विघ्न पैदा कर रहा हो, उसको नष्ट कर दो।' लेकिन अनेक बार ऐसा हुआ कि विघ्नहर्ता गणेश का ध्यान करने पर उनके सामने विघ्न-कर्ता शीतांशु का चित्र उपस्थित हो जाता। जब कई बार ऐसा ही हुआ और वह परेशान होने लगे तो उन्होंने सोचा कि कहीं गणेश जी का ध्यान शीतांशु भी न कर रहा हो। इसलिये उन्होंने निश्चय किया कि अब वह सिर्फ साईबाबा का ही ध्यान करेंगे। साईबाबा का ध्यान करने से शीतांशु के जहरीले, मजाक उड़ाते चेहरे की कोई कल्पना उनके मानस में नहीं उभरती। पिछली रात पूरी यात्रा में वह साईबाबा का ध्यान करते रहे और आश्वस्त होते रहे।

पिछली रात तो गाड़ी टाइम से चल रही थी लेकिन बनारस पहुँचते-पहुँचते एक घण्टा लेट हो ही गयी। डॉ० ओछेलाल खुद अपनी अटेची उठाकर नीचे उतरे ही थे कि सामने से डॉ० सत्येन्द्र का दामाद लपकता दिखलाई पड़ा। डॉ० ओछेलाल की गिद्ध जैसी आँखों ने उसे दूर से ही पहचान लिया था।

—अरे, बद्री तुम! ओछेलाल ने अपने चेहरे पर अपनापन और स्नेह चिपका लिया।

—नमस्ते सर। "मुझे कल शाम ही बाबूजी ने मुझे फोन कर दिया था। बोले थे—आफिस से छूट कर स्टेशन चले जाना और डॉक्टर साहब को घर लिवा लाना। उन्हें मालूम था, आप इसी गाड़ी से आ रहे हैं।

—हाँ, मैंने उन्हें फोन कर दिया था। वैसे भी इस बार मैं उन्हीं के साथ ठहरने की सोच रहा था।

—यह तो बड़ी अच्छी बात है। बद्री ने कहने के लिये कह दिया—और आपकी यात्रा तो ठीक रही न। उसने पूछा।

—हाँ, ठीक ही रही। वैसे तेईस घण्टे की 'जरनी' बड़ी बोरिंग हो जाती है। पहले तो हमने सोचा, प्लेन से ही······।'

—'वाइवा' के लिये आये होंगे डॉक्टर साहब। उनकी बात बीच ही में काट कर बद्री ने पूछ लिया।

—और क्या? हम तो इस सबसे ऊब गये हैं भैया। ऐसी, बेमतलब की यात्राओं के कारण अध्ययन और शोध में बार-बार बाधा आती है। लेकिन क्या करें सम्बन्धों की खातिर यह सब करना पड़ता है।

—अब आपका कौन सा नया ग्रंथ आ रहा है? इस प्रश्न से एक क्षण के लिये डॉ० ओछेलाल अचकचा गये। 22 साल पहले उनको पीएच० डी० की थीसिस छपी थी। फिर पन्द्रह साल पहले जब प्रोफेसरी का इंटरव्यू होने वाला था तब जल्दी-जल्दी में अपनी रेडियो वार्ताओं और दैनिक पत्रों में छपी पुस्तक समीक्षाओं को सम्पादित करके एक किताब अपनी गाँठ से छपवा ली थी। हाँलाकि उस की अधिकाँश प्रतियाँ अभी तक प्रिंटर के स्टोर में पड़ी हैं क्योंकि बाद में ओछेलाल ने बिल का भुगतान करने की आवश्यकता ही नहीं समझी।

और अब जब इस बार पोस्ट निकली है तो कई साल पहले एक फेरीवाले से दो सौ-ढाई सौ में खरीदी एक पुरानी पांडुलिपि को "सम्पादित" करके प्रेस में डाल रखा है। लेकिन अभी तक उसके मुद्रण के बारे में स्साली कोई सूचना ही नहीं मिली है। डॉ० ओछेलाल उसी क्षण यह भी सोच गये कि सत्येन्द्र जी के घर जाते ही मुद्रक को फोन करेंगे।

लेकिन प्रकट में उन्होंने बद्री से कहा—कई सालों की मेहनत के बाद एक शोध-ग्रंथ अभी कुछ दिनों पहले प्रकाशक को दिया है। देखते हैं, कब तक निकालता है।

—अच्छा। प्रकाशक कौन है······।

—हम खुद ही प्रकाशित कर रहे हैं। यूजीसी से 15 हजार मिले हैं। शेष धन अपनी यूनिवर्सिटी दे रही है।

—फिर तो मजे हैं आपके।

डॉ० ओछेलाल को बद्री की इतनी उन्मुक्तता अच्छी नहीं लग रहीं थी। वह उससे कुछ कहना चाहते थे। लेकिन फिर कुछ सोच कर चुप रह गये।

जिस समय डॉ० ओछेलाल डॉ० सत्येन्द्र के आवास पर पहुँचे, वे अपनी स्टँडी में बैठे किसी से बतिया रहे थे। दरवाजे पर ही ओछेलाल ने पहचान लिया—राजस्थान के डॉ० सदानन्द जी थे।

औपचारिक अभिवादन के बाद डॉ० सत्येन्द्र बोले—सदानन्द भाई, अब

ओछेलाल जी की भी साधना सफल होने वाली है। ये भी अब प्रोफेसर बन जायेंगे ।

—हमारी अग्रिम बधाई लो ओछेलाल जी । इंटरव्यू हो गया क्या ?

—धन्यवाद डॉक्टर साहब, इंटरव्यू बस, अगली 18 को है। आपकी शुभ-कामनाएँ चाहिये ।

—अरे भाई, अगर हमारी शुभकामना आपके लिये नहीं होगी तो किसके लिये होगी ।

—सो तो है डॉक्टर साहब। और आपका काम कैसा चल रहा है सत्येन्द्र जी । सुना था, पिछले दिनों आप नर्सिंग होम में दाखिल थे । क्या हुआ था ।

—होता क्या भई। रिटायरमैंट के बाद एक खालीपन-सा भर गया है। इतना बड़ा घर है । और इसमें हम दो जने भर हैं। अब तो किसी आने वाले की प्रतीक्षा करनी पड़ती है । कभी-कभी तो पूरा दिन खिड़की के पास बैठे, बस सड़क की तरफ ताकते बीत जाता है। बस, इसी में लो-ब्लड प्रेशर की कुछ तकलीफ हो गयी थी । वैसे कोई खास बात नहीं है ।'

—अपना ख्याल रखा कीजिये डॉक्टर साहब ! अभी तो आपको शिक्षा जगत की बड़ी सेवा करनी है । कहते हुये ओछेलाल ने डॉक्टर सत्येन्द्र की स्टडी पर इधर उधर नजर डाली—आपकी स्टडी क्या है डॉक्टर साहब, ग्रंथों का गोदाम है ।

—ओछेलाल जी, यही स्टडी तो मुझे सबसे ज्यादा तकलीफ दे रही है। कितनी मुश्किलों और कितने उत्साह से मैंने यह स्टँडी बनायी । अब देखो, पंद्रह-बीस हजार पुस्तकें तो होंगी ही । मुझे तो यही चिंता खाए जा रही है कि मेरे बाद इसका क्या होगा । बिटिया को लिट्रेचर में कोई इंट्रेस्ट है नहीं । उसके हसबैंड बद्रीप्रसाद जी तो इंजीनियर है······बस, दीमकें ही लगेंगी इनमें······। कहते हुये सत्येन्द्र जी ने कमरे के उस कोने की ओर देखने लगे जिधर करीने से 'एन्साइक्लोपीड़िया ऑफ सोशल साइंसेज' के वाल्यूम्स रखे थे ।

—अपन तो इस चक्कर में शुरु से ही नहीं पड़े सत्येन्द्र जी । डॉ० सदानन्द ने गंभीर बन आये वातावरण को हल्का करने के लिये कहा और खुद ही अपनी बात पर हँस पड़े—यहाँ तो हमेशा एक्सटैम्पोर पढ़ाया और एक्सटैम्पोर लिखाया । कॉलेज में थे, तब भी और यूनीवर्सिटी में आये तब भी । कहते हुये वह बच्चों की वालीबाल जैसी अपनी गोल खोपड़ी को खुजाने लगे ।

उनके इस कथन से वातावरण सचमुच हल्का हो गया । वैसे भी डॉ० सदानन्द गंभीर से गंभीर एकेडेमिक बातों का रुख हल्केपन की ओर मोड़ देने में माहिर हैं। इसका कारण है । लिखाई-पढ़ाई से उनसा कभी कोई सम्बन्ध रहा नहीं । कॉलेज की प्राध्यापकी से लेकर युनीवर्सिटी की प्रोफेसरी तक उन्होंने जो कुछ भी अर्जित किया वह या तो किसी के कन्धों पर बैठकर किया या ब्राह्मणवाद की बैसाखियों के सहारे

किया। शिक्षा के क्षेत्र में जोड़-तोड़ और लेन-देन की राजनीति के वह पुरोधा न भी सही, उसके किसी अध्याय के परिशिष्ट जरूर बने रहे। रिटायरमैंट के बाद भी उनका यह जोड़-तोड़ जारी है। डॉ० सत्येन्द्र के पास भी वह इसी काम के लिये आये हुये हैं।

—और इस बरसात में आपका बनारस में आना कैसे हुआ सदानन्दजी। डॉ० ओछेलाल ने उनसे पूछ लिया।

—ओछे जी, अपने लिये तो सभी मौसम एक जैसे हैं। द्विवेदी जी ने भी कहीं लिखा है न कि बसन्त आता नहीं, ले आया जाता है। जो चाहे, जब चाहे, अपने पर ले आ सकता है।

—आपके विश्वविद्यालय में प्रोफेसरशिप का एप्वाइंटमैंट तो हो गया होगा। कौन बना है? डॉ ओछेलाल ने जिज्ञासा व्यक्त की।

—अभी, अगले महीने इन्टरव्यू होने वाले हैं। सत्येन्द्र जी सीनियर एक्सपर्ट हैं। अब जिस पर भी ये मेहरबानी कर दें।

डॉ० ओछेलाल डॉ० सत्येन्द्र की ओर देखने लगे।

—मैं क्या बताऊँ भाई। डॉ० सत्येन्द्र बोले—सदानन्द जी चाहते हैं कि इस बार डॉ० मनोरमा सिंहदेव का कल्याण कर दिया जाय। कब से रीडरी में रगड़ रही हैं।

—अच्छा, अच्छा, वही मनोरमा जी 'मेरे सावन को पावन कर जाओ' वाली न। कभी इनका भी जमाना था।

—अरे वाह, ओछेलाल जी, तुम्हें भी मनोरमा जी की कवितायें याद हैं। आखिर बात क्या है? सत्येन्द्र जी थोड़े हल्के मूड में आ गये थे।

ओछेलाल प्रकट रूप से थोड़े से संकोच में आ गये। लेकिन उनकी आंखों के सामने मनोरमा सिंहदेव की जवानी का एक चित्र घूम गया। कुछ क्षणों तक वह आत्मविभोर से बने रहे।

दूसरे दिन जब नाश्ता करने के बाद डॉ० सदानन्द वापस चले गये तो ओछेलाल ने धीरे से सत्येन्द्र जी से कहा—डॉक्टर साहब, डॉ० सोमदत्त जी को फोन करेंगे या मैं सीधे जाकर मिल लूँ।

फोन करके पूछ लेते हैं कि वह घर पर है या नहीं। अपनी लड़की की शादी के चक्कर में दिल्ली जाने वाले थे। कह कर डॉ० सत्येन्द्र ने फोन के डिब्बे को उठाकर अपनी चारपाई पर रख दिया और डॉ० सोमदत्त का नम्बर मिलाने लगे। संयोग से सोमदत्त ने ही फोन उठाया—हलो? उन्होंने पूछा।

...............।

अच्छा, डॉक्टर साहब नमस्कार । आपकी तबीयत तो ठीक है अब......।

...............।

नहीं, दिल्ली में बात नहीं बनी ।

...............।

अच्छा, ओछेलाल जी आए हैं ? आप कहें तो मैं वहीं आ आ जाऊँ । वैसे आपने कह ही दिया था । उनके आने की कोई खास जरुरत तो नहीं थी ।

...............।

आप जैसा ठीक समझें । वह यहाँ आना चाहते हैं तो आ जायें । मुझे कोई असुविधा नहीं होगी ।

...............।

'ठीक है, मैं उनकी प्रतीक्षा करूँगा । ठीक है, चार बजे शाम । अच्छा, नमस्कार । कह कर दूसरी तरफ से फोन नीचे रख दिया गया ।

लगभग दो बजे का समय था ।

डॉ० ओछेलाल ने शारदा प्रिंटिंग प्रेस का फोन मिलाया । दो-तीन बार कोशिश करके फोन मिल गया ।

—हलो । डॉ० ओछेलाल पूरा दम लगाकर बोले ।

—हलो । कौन साब । दूसरी ओर से आवाज आई ।

—मैं डॉ० आलोक बोल रहा हूँ । कौन श्रीवास्तव जी हैं क्या ?

—नमस्ते डॉक्टर साहब । कब आए ? कहाँ ठहरे हैं ?

डॉ० ओछेलाल ने औपचारिक बातों के बाद पूछा—भई, हमारी पुस्तक का क्या हुआ ?

छप रही है डाक्टर साहब । बस, दो-तीन फर्मे बाकी हैं ।

आपने बहुत लेट कर दिया । चार महीने पहले आपको पांडुलिपि भेजी थी ।

बहुत व्यस्तता थी डॉक्टर साहब । बस, अगले महीने तक पूरी हो जायेगी ।

लेकिन हमारा तो इसी महीने इंटरव्यू है ।

—इस महीने में तो मुमकिन नहीं हो पायेगा ।

—तो ऐसा करो । ये फर्मे तो छाप दो । और देखो, मैं कल लक्ष्मीबाई युनीवर्सिटी जा रहा हूँ । बारह तारीख तक लौट आऊँगा । तब तक आप फर्मों की दो प्रतियाँ डॉक्टर साहब के यहाँ भिजवा दें । मेरी 13 सुबह की फ्लाइट है ।

—ठीक है, मैं व्यवस्था करता हूँ ।

—यह काम अवश्य हो जाना चाहिये श्रीवास्तव जी।

—आप निश्चित रहिये डॉक्टर साहब। हो जायेगा।

—अच्छा, नमस्कार......।

फोन रखकर डॉ० ओछेलाल थोड़े से उदास हो आये। कितना अच्छा होता, वह नयी किताब लेकर इंटरव्यू में जाते। वह शीतांशु का बच्चा तो अपना मन भर का कूड़ा लेकर आएगा।

उन्होंने वहीं फोन के पास बैठे-बैठे एक क्षण के लिये आँखें बन्द कर लीं और साईबाबा का स्मरण करने लगे—हे साईबाबा, मेरी लाज रखना।

चाय पीते हुये डॉ० ओछेलाल लगातार यह महसूस करते रहे कि डॉ० सोमदत्त पहले से काफी कमजोर हो गये हैं। अभी पाँच-सात महीने पहले ही तो वह एक सेमिनार में उनके विश्वविद्यालय में आए थे। तब तो काफी स्वस्थ थे। लेकिन अब......

—डॉक्टर साहब, आप की हैल्थ तो ठीक है न। काफी कमजोर दिखाई पड़ रहे हैं। उनसे पूछे बिना नहीं रहा गया।

—वैसे तो सब ठीक है ओछेलाल जी। फिर भी इस उम्र में चिंताएँ तो लग ही जाती हैं।

—आपको क्या चिंता हो सकती है। सब कुछ तो है। भगवान का दिया हुआ।

—हाँ, वैसे तो कोई कमी नहीं हैं। बस, जरा अपनी छोटी बिटिया की चिंता है। उसे कहीं ठीक से सैटिल कर देते तो अपनी आखिरी जिम्मेदारी भी पूरी हो जाती।

—क्या कर रही है बिटिया आजकल ?

—करने के लिये तो पीएच० डी० कर रही है। वैसे कुछ भी नहीं कर रही।

—मतलब ?

—मैं चाहता हूँ कि अब तो के बाद उसकी शादी ही कर दूँ। इन दो वर्षों में कई लड़के देखे, कई जगह गया लेकिन अभी तक तो बात बनी नहीं। अभी हफ्ते भर पहले दिल्ली गया था। वहाँ एक लड़का देखा। अच्छा था लेकिन उनकी मांग बहुत ज्यादा थी।

डॉ० ओछेलाल चुपचाप आगे की बात का इन्तजार करते रहे।

—2 लाख कैश मांगते थे। लड़का पहले दिल्ली यूनिवर्सिटी में ही लेक्चरर था। अब आई० ए० एस० में आ गया है। अभी पिछले वर्ष मध्य प्रदेश में डी० सी० लगा है।"

—"लड़का तो अच्छा है।"

—लेकिन भाई मेरे, दो लाख मैं कहाँ से लाऊँ। इतना तो मेरा पूरा प्रोविडेंट फण्ड भी नहीं होगा। ढाई तीन साल पहले बड़ी की शादी में 50 हजार निकाले थे, वे अभी तक कट रहे हैं।

डॉ० ओछेलाल ने गंभीर सोच की मुद्रा ओढ़ ली।

डॉ० सोमदत्त ने विषय बदलने की गरज से कहा—और कौन-कौन कैंडीडेट हैं कंप्टीशन में।

—कोई खास नहीं है। शायद आपने नाम सुना हो, एक डॉ० शीतांशु जोशी है और एक और है, रायपुर में लेक्चरर है।

—वैसे डॉ० जोशी ने इन पिछले वर्षों में काफी काम किया है।

—हाँ, इसी का तो उसे घमण्ड है। वैसे आदमी बहुत घटिया है। हर एक के साथ तलवार भाँजने को तैयार रहता है।

उसके बारे में मैंने भी सुना है, बहुत स्पष्टवादी है।

—बहुत ही ज्यादा मुँहफट है डाक्टर साहब। बड़े छोटे किसी का लिहाज ही नहीं करता। कोई संस्कार ही नहीं है उसमें।

—और रायपुर वाला ?

—उसके बारे मैं ज्यादा मालूम नहीं है। उसे तो बस यों ही बुला लिया गया है। हाँ, जबलपुर से एक एप्लीकेशन आयी थी। उसका प्रबन्ध हमने कर लिया है।

—कैसा प्रबन्ध ?

—उसे इन्टरव्यू लेटर तब मिलेगा, जब इन्टरव्यू हो चुका होगा।

डॉ० सोमदत्त मुस्कराने लगे।

—अब देखिये डॉक्टर साहब। बीस साल हो गये हैं इस रीडरी में। आखिर अपनी ही युनिवर्सिटी में अपना हक बनता है कि नहीं।

—जरूर बनता है। तुम चिंता मत करो ओछेलाल। तुम्हारे अलावा और किसी की नियुक्ति नहीं हो सकती। बस जरा डॉ० कृष्ण कांत जी से जरूर मिल लो। उनका निर्णय ही अन्तिम निर्णय होगा। जब यहाँ तक आये हो तो श्री लक्ष्मीबाई भी चले जाओ। मुश्किल से 6-8 घण्टे का सफर है।

—वहाँ तो मैं जा ही रहा हूँ।

—हाँ, जरूर चले जाओ। उनकी बहिन भी पिछले हफ्ते चल बसी हैं। वहीं उनके साथ रहती थीं।

—चल बसी है ? अच्छा ? मैंने तो सिर्फ इतना सुना था कि वह सख्त बीमार है। मरने की बात……

डॉ० ओछेलाल को समझ ही नहीं आया कि आगे क्या कहें। अभी तो उन की बहिन की तेरहवीं भी नहीं हुई होगी। इन्टरव्यू के लिये आ भी पायेंगे या नहीं। ओछेलाल सचमुच सोच में पड़ गये।

कुछ देर तक दोनों के बीच खामोशी छायी रही।

फिर ओछेलाल ने ही चुप्पी तोड़ी। चेहरे के सभी हिस्सों पर ढेर सारी गम्भीरता ओढ़ कर उन्होंने कहा—डॉक्टर साहब आप कहें तो एक बात कहूँ।

डॉ० सोमदत्त ने उनकी ओर देखा, जैसे जानना चाह रहे हों कि वह क्या कहना चाह रहे हैं।

—मेरा बेटा "भेल" में लगाहुआ है। इलेक्ट्रिकल इन्जीनियर है। अगर आप उसे अपनी बिटिया के लायक……। कह कर उन्होंने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

—आप क्या कह रहे हैं ओछेलाल जी।

डाक्टर साहब, मेरे मन में एक बात आई और मैंने कह दी। अगर कुछ गलत कह दिया हो तो क्षमा……। उन्होंने डॉ० सोमदत्त के चेहरे पर नजरें गड़ाते हुये फिर वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

—लेकिन लड़के की अपनी मर्जी……।

—डॉक्टर साहब, मेरे बच्चे ऐसे संस्कारों में पले हैं वे मां-बाप के खिलाफ जा ही नहीं सकते। मेरे लिये तो यह सम्बन्ध बड़े सौभाग्य की बात होगी। मैं तो परिवार और परिवेश को महत्व देता हूँ। इन्सान पर इन्हीं की तो छाप पड़ती है। मुझे आप जैसा परिवार मिल जाये, मुझे इससे ज्यादा और क्या चाहिये……।

डॉक्टर सोमदत्त ने ओछेलाल के हाथों को अपने हाथों में ले लिया और भरे गले से कहा—ओछेलाल जी, सच मुझे पता नहीं था कि आप इतने उदार इंसान है। आपने तो मुझे उबार लिया।

ओछेलाल जी धीरे-धीरे डॉ० सोमदत्त का हाथ थपथपाते रहे और फिर बोले—इंसान ही इंसान के काम आता है डॉक्टर साहब। यही इन्सानियत है। बाकी बातें तो बहुत छोटी हैं। सबसे बड़ी चीज है, आप में कितनी संवेदना है। आप दूसरे इन्सान की समस्या समझते हैं……।

आप………।

डॉ० सोमदत्त भाव विह्वल हो उठे थे। उन्होंने डॉ० ओछेलाल 'आलोक' के घुटने पर अपनी हथेली दबा दी……।

डॉ० ओछेलाल अब काफी आश्वस्त हो चुके थे। उन्होंने धीरे से अपने बालों पर हाथ फेरा और फिर डा० सोमदत्त के कन्धे को दबा कर छोड़ दिया।

पन्द्रह

जिस वक्त डा० ओछेलाल डा० कृष्णकान्त के बंगले पर पहुँचे, विश्वविद्यालय के परिसर में सुबह टहल रही थी।

डा० कृष्णकान्त आंगन में घूमते हुये दातुन कर रहे थे। ओछेलाल ने दरवाजे में प्रवेश करते ही उनको देख लिया। झट से अपना बैग नीचे रखकर उन्होंने डा० कृष्णकान्त के चरण स्पर्श किये और फिर उठकर अपनी आवाज को रुँआसी बनाते हुये बोले—डाक्टर साहब, यह क्या हो गया। जैसे ही पता लगा, मैं भागा चला आया।

कृष्णकान्त ने बायें हाथ से ओछेलाल का कन्धा थपथपाया और नल की ओर बढ़ गये। ओछेलाल वहीं खड़े उनको देखते रहे।

कितने कमजोर हो गये हैं कृष्णकान्त जी। ओछे सोचने लगे। कमजोर से अधिक ज्यादा वह बिचारे अधिक दिख रहे थे। उनकी आज की हालत को देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि अपने पन्द्रह साल की प्रोफेसरी और बाद में वाइस-चांसलरी के दौरान इसी व्यक्ति ने बीसियों प्रोफेसरों की नियुक्ति की होगी, सैकड़ों को डाक्टरेट दिलाई होगी और न जाने कितने विद्यार्थियों को यहाँ-वहाँ लगवाया होगा। उनकी घुटनों से ऊपर उठी हुई धोती और छाती पर चिपकी हुई बंडी ने उन्हें और भी दयनीय बना दिया था।

तभी उनका नौकर गंगू पीतल की छोटी-सी बाल्टी में दूध लेकर भीतर आया। एक क्षण के लिये ओछेलाल को लगा कि गुरुदेव कृष्णकान्त जी और गंगू में बड़ा साम्य है। उनकी ही जितनी उम्र और उनका ही जैसा पहनावा। बस, फर्क इतना भर था कि गंगू ने कन्धे पर लाल रंग का अंगोछा डाल रखा था।

ओछेलाल को देखकर गंगू एक क्षण के लिये अचकचाया और फिर उनको अभिवादन करके रसोई की तरफ बढ़ गया।

दालान में पड़ी नंगी चारपाई के पास ही कुर्सियां पड़ी थीं। कृष्णकान्त जी ओछे का सहारा लेकर धीरे से एक कुर्सी पर बैठ गये और पास की कुर्सी पर बैठने का इशारा करते हुये बोले—रास्ते में कुछ परेशानी तो नहीं हुई ओछे।

—नहीं डॉक्टर साहब, कोई परेशानी नहीं। उन्होंने धीरे से कृष्णकान्त जी के घुटनों पर हाथ रख दिया।

ओछेलाल को महसूस हुआ, शरीर की तरह कृष्णकान्त जी का स्वर भी थक गया है। वह सचमुच ही बड़े दयनीय लग रहे थे···

—आखिर बहिन भी चली ही गयी।

—हाँ भाई, लच्छो को जाना था, चली गयी। बस, यह खाली, बेरौनक, जिन्दगी जीने के लिये हमें यहाँ अकेला छोड़ गयी।

—बीमारी की खबर तो मुझे थी। देहांत की बात तो बनारस में ही पता लगी। सत्येन्द्र जी ने बतलाया। एक वाइवा के लिये आया था। बस खबर मिलने के बाद तो मुझसे वहाँ रहा ही नहीं गया······। ओछेलाल ने धीरे से अपनी आंखों पर हाथ फेर लिया—ठीक आंसू पौंछने की मुद्रा में।

—आखिर होनी को कौन टाल सकता है ओछे···पत्नी के बाद लच्छो ने ही सब कुछ सम्भाल रखा था।

कुछ देर के लिये दोनों के बीच सन्नाटा घिर आया। इस बीच गंगू स्टेनलेस के दो बड़े गिलासों में चाय रख गया था।

—बहिन जी की तेरहवीं कब है ?

—अब मैं अकेला क्या तेरहवीं करूँ ओछे। बस चौथे के दिन एक शान्ति यज्ञ करवा दिया है। इंसान तो चला गया न। अब कुछ भी करो' क्या होता है। उनके स्वर में बड़ा दर्द घुल आया था।

—अविनाश तो आये होंगे। ओछेलाल ने उनके एकमात्र बेटे के बारे में पूछा।

हाँ आया था। परसों हो वापिस गया है मुरादाबाद। उसकी भी बात बिगड़ गयी। सर्जरी में पोस्ट ग्रेजुएशन के लिये लन्दन जाने वाला था। अब वह रह गया है, मुझे अकेला छोड़कर कहीं नहीं जायेगा। बस, मकान बन जाये, यहीं आकर प्रेक्टिस करेगा।

—ओह। ओछेलाल ने एक निश्वास छोड़ी।

—और तेरे घर में तो सब ठीक है न बड़ा लड़का तो 'सीमैन' में है न।

—जी, वहीं है। दो साल अमेरिका रह आया है।

—और छोटे······

—उसका तो बिजनिस माइंड है। टेलरिंग कम्पनी खोली है पिछले साल ही। 15-20 आदमी काम करते हैं।

—चलो जो भी कर ले इस जमाने में······।

—जी, बस अच्छा कमा–खा रहा है। हमें तो उसकी कमाई चाहिये नहीं। अपना गुजारा कर ले अच्छी तरह। हमारे लिये इतना ही बहुत है।

—उन दोनों के बीच फिर सन्नाटा छा गया ।

—अच्छा तू नहा–धो ले । रात भर के सफर से आया है ।

—जी······। ओछेलाल ने अपने बैग की तरफ देखा । और उसे उठाने के लिये उठ गये ।

दोपहर का भोजन हो चुका था । कृष्ण कान्त जी बैठक में पड़े अपने पलंग पर आराम कर थे । पलंग के पास ही ओछे लाल एक आराम कुर्सी खिसका कर बैठे थे ।······

—तुम्हारे यहाँ एक डॉ० तिवारी जी भी हुआ करते थे । क्या हाल है उन का । अब तक तो रिटायर हो गये होंगे ।

—जी, ठीक हैं वह । इसी साल रिटायर हो रहे हैं । फिर कुछ रुक कर बोले—पिछले दिनों तीर्थ यात्रा पर गये थे । कुछ दिन पहले ही लौटे हैं ।

—अरे, तिवारी जी को अभी से तीर्थ-यात्रा की क्या जरूरत पड़ गयी । बाद में इकटठी ही कर लेते ।

—कुछ घरेलू अड़चनों से परेशान थे । पुलिस–वुलिस का भी चक्कर चला ?

—अच्छा ?

और उसके बाद ओछेलाल ने पूरी तिवारी–कथा विस्तार से सुना दी । सुनकर डॉ० कृष्ण कान्त जी उदास हो गये । एक लम्बी सांस छोड़कर बोले—अपना किया सभी को भुगतना पड़ता है भाई ।

पता नहीं, ओछेलाल ने उनका आशय समझा या नहीं, लेकिन कृष्ण कान्त जी की बात पर एक बड़ा हुँकारा अवश्य भर दिया ।

बहुत देर तक कमरे में उदास चुप्पी छाई रही । ओछेलाल सोच रहे थे कि कृष्ण कान्त जी अब उनसे इन्टरव्यू की बात करेंगे लेकिन उन्होंने उस तरह की कोई बात ही शुरू नहीं की ।

अन्त में ओछेलाल को ही शुरू करना पड़ा—आपको हमारे विश्व–विद्यालय से तो पत्र मिल ही गया होगा ।

—हाँ, मिला तो था । शायद जवाब भी दे दिया था मैंने । लेकिन तभी यह सब हो गया । सब चिट्ठी–पत्री इधर–उधर बिखरी पड़ी है ? । कहीं, किसी काम में मन ही नहीं लगता ।

—यह तो बहुत स्वाभिक है गुरु जी। बहुत स्वभाविक है……। ओछेलाल सोच ही नहीं पा रहे थे कि आगे बात बढ़ाकर किस प्रकार आश्वस्त हुआ जाये।

तभी कृष्णकान्त जी ने पूछ ही लिया—कब है तेरा इन्टरव्यू।

—इसी अटठारह को है। डॉक्टर साहब, आपको आना ही है। मैं……मैं जानता हूँ कि इन हालात में आपका घर से निकलना कितना मुश्किल है……। लेकिन मेरे लिये तो आपको इतना…………। ओछेलाल से आगे कुछ नहीं कहा गया।

—आना तो पड़ेगा हो ओछे! हमने तो पहली बार ही बड़ा जोर लगाया था लेकिन क्या करें……शैलेन्द्र जी……।

शैलेन्द्र का नाम सुनकर ओछेलाल का मन खट्टा हो गया। लेकिन प्रकट रूप से वह कुछ बोल नहीं सके।

—अब तो तू नर्वस नहीं होता रे? तेरे ब्लड प्रेशर का क्या हाल है?

—वैसे तो ठीक हूँ डाक्टर साहब। इन गर्मियों में कुछ ज्यादा ही हो गया था। एक हफ्ता नर्सिंग होम में रैस्ट किया। तब कहीं जाकर नार्मल हुआ?

—थोड़ा परहेज रखा कर। बच्चों की शादी करनी है।

—वह तो रखता ही हूँ।

—तीसरा एक्सपर्ट कौन है……?

—तीसरा तो अपना लंगोटिया है। वही बलजीत नाहर।

—अरे, वही साबरमती वाला। उसे तो हमने ही रीडर बनाया था।

—डॉक्टर साहब, अब तो वह प्रोफेसर हो गया है।

—हो ही गया होगा। कितने साल हो गये। वैसे भी वह काफी चलता-पुर्जा है।

—बहुत ज्यादा डॉक्टर साहब। मेरे पास संदेशा भिजवा दिया पट्ठे ने। कहलवा भेजा—दक्षिणा भिजवा दो।

—अच्छा। फिर तूने क्या किया।

—करता क्या। दक्षिणा भिजवा दी।

—कितनी?

—दस भिजवा दिये।

—भैया, वह तो बनिया है। अपने बाप को भी नहीं छोड़ेगा।

—उसकी कोठी देखेंगे तो दंग रह जायेंगे गुरु जी। साबरमती के ठीक किनारे दो एकड़ में क्या शानदार कोठी बनवायी है उसने।

—बनाएगा ही······।

और लगा कि कृष्णकान्त जी कुछ सोचते हुये कहीं दूर खो गये हैं।

कुछ देर बाद उनकी तन्द्रा टूटी तो पूछ लिया——कब तक ठहरेगा यहाँ ।

—मैं तो डॉक्टर साहब आपके दर्शन करने आया था। वैसे आना तो बनारस तक ही था। लेकिन बहिन जी बारे में सुना तो···। सोचता हूं, आज शाम की गाड़ी के ही निकल जाऊँ।

—ठीक है। कहते हुये कृष्णकान्त जी ने एक लम्बी सांस छोड़ दी।

सोलह

इन्टरव्यू वाइस चांसलर के चैम्बर में ही रखा गया। पास ही वेटिंग रूम में प्रत्याशियों के बैठने की व्यवस्था थी। जिस समय डॉ० शीतांशु वहाँ पहुँचे, उन्होंने देखा, डॉ० ओछेलाल 'आलोक' वहाँ पहले से ही जमे बैठे हैं। पास ही एक और नवयुवक बैठा था।

उन्होंने डॉ० ओछेलाल की तरफ देखा और मुस्कराकर अभिवादन सा कर दिया।

डॉ० ओछेलाल ने अपनी गम्भीर आकृति को थोड़ा ढीला किया और डॉ० शीतांशु के अभिवादन के उत्तर में औपचारिक रूप से सर हिला दिया। इतने में डॉ० शीतांशु के दो रिसर्च स्कालर भी वहाँ पहुँच गये। उन्होंने हाथों में डॉ० शीतांशु की किताबों के बण्डल पकड़े हुये थे।

—इन्हें यहीं पास ही रख दो। डॉ० शीतांशु ने उनसे कहा।

डा० ओछेलाल ने आँख बचा कर उन बण्डलों की ओर देखा और फिर अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

डॉ०शीतांशु के आने के बाद से ओछेलाल कुछ अनमने और कुछ कसमसाहट का सा अनुभव कर रहे थे। डॉ० शीतांशु ने यह बात भांप ली।

—और डॉक्टर साहब, तबियत तो ठीक है।

—हाँ, बिल्कुल ठीक है। मुझे क्या हुआ है। उन्होंने झुँझलाकर कहा और अपने पास बैठे नवयुवक को देखकर उपेक्षा भाव मे मुस्करा दिये।

—चलो, अच्छी बात है। डॉ० शीतांशु ने धीरे से कहा।

—क्या ? शब्द को झटका–सा देकर डॉ ओछेलाल बोले।

—यही, कि आपकी तबियत ठीक है।

डॉ० ओछेलाल ने इसे कोई टिप्पणी नहीं दी। इन्टरव्यू का समय हो रहा था और वह डॉ० शीतांशु से उलझना नहीं चाहते थे।

कुछ देर तक शान्ति बनी रही।

—इन्टरव्यू में बस आप दो ही हैं सर। डॉ० शीताशु के एक विद्यार्थी ने पूछा।

—पता नहीं भैया। शायद डॉ० साहब को मालूम हो। डॉ० शीतांशु ने डॉ० ओछेलाल की तरफ इशारा कर दिया।

डॉ० ओछेलाल की आँखें किताबों के बण्डलों पर लगी थीं। डा० शीतांशु की बात सुनकर वे चौंके और न चाहकर भी उनके मुँह से निकल गया—शायद एक कैंडीडेट और है। लेकिन अभी तक उसको आ जाना चाहिये था। ग्यारह तो बजने ही वाले हैं।

—वह नहीं आयेगा। डा० शीतांशु उस दिन अप्रत्याशित रूप से हल्के मूड में थे। ऐसे मौकों पर, परिणाम का जब पता हो, तो कोई टेंशन नहीं होती।

—क्यों ? आपको कैसे मालूम ?

—क्योंकि वह 'डमी' कैंडीडेट है। उसने एप्लाई नहीं किया, उससे तो बस करवाया गया है। और······। कहते-कहते डा शीतांशु रुक गये।

—और क्या ? डा० ओछेलाल ने जिज्ञासा प्रकट की।

—और तीन डमी, अन्दर बैठे हैं। एक्सपर्ट के रूप में। डा० शीतांशु ने कह दिया।

डा० ओछे लाल का बस चलता तो वह डा० शीतांशु का मुँह नोच लेते लेकिन उन्होंने चुप लगा जाना ही बेहतर समझा। अपने मन को यह सोचकर आश्वस्त कर लिया कि उद्दन्ड और मुँहफट लोगों के मुँह लगना कोई समझदारी नहीं है।

वह उठकर सामने की ओर बने टायलेट में घुस गए।

वाइस चांसलर के कमरे में बैठे सभी एक्सपर्ट चाय पी रहे थे।

प्रत्याशियों की योग्यता · अनुभवन—प्रकाशन सम्बन्धी चार्ट सबके सामने रखा था। वाइस चांसलर, कृष्णकान्त जी से उनके विश्वविद्यालय के अनुशासन के बारे में कुछ पूछ रहे थे। आखिर वह भी तो वाइस चांसलर थे।

—पहले हालात बड़े खराब थे। डॉ० कृष्णकान्त बतला रहे थे। लेकिन जब से हम वहाँ गये हैं—स्थिति में बड़ा सुधार हुआ है। पिछले साल हमने तीन विद्यार्थियों का रेस्टीकेशन कर दिया, लेकिन केम्पस में पत्ता तक नहीं हिला। पहले की बात होती तो हड़ताल तो होती ही, हमारा घेराव भी हो जाता।

कहकर कृष्णकान्त जी जोर से हंस पड़े। वाइस चांसलर भी अपने पतले होठों में थोड़ा-सा मुस्करा दिये।

फिर कृष्णकान्त जी ने चार्ट पर नजर दोड़ाते हुये कहा—डॉक्टर साहब यह इंटरव्यू तो फार्मेलिटी भर है। ताज्जुब है, डॉ० ओ० एल० 'आलोक' अभी तक रीडर ही बने हुये हैं। हम तो समझते थे कि वे कभी के प्रोफेसर हो गये होंगे। शोध-कर्त्ता और मौलिक चिंतक के रूप में सारा देश इनको जानता है।

—ऐसा है डॉक्टर साहब । यू० जी० सी० से यह पोस्ट अभी सेंक्शन हुई है ।

—आपको यू० जी० सी० को लिखना चाहिये था । इतनी बड़ी यूनिवर्सिटी में कोई विभाग बिना प्रोफेसर का रह जाये, यह तो शर्म की बात है ।

पास बैठे चांसलर के नॉमिनी और डीन उनकी बातों को गौर से सुन रहे थे ।

चाय समाप्त हो गयी थी ।

जैसे ही डॉ० ओछेलाल टायलेट से फ्रेश होकर निकले, क्लर्क ने भीतर आकर इशारे से उन्हें बताया कि उन्हें बुलाया जा रहा है ।

डॉ० ओछेलाल ने जल्दी से अपना बैग उठाया और पास रखे लिफाफे को बगल में दबाकर तेजी से बाहर निकल गये ।

वाइस चांसलर के चैम्बर के सामने पहुँचकर उन्होंने एक क्षण के लिये अपनी आंखें बन्द कर लीं और फिर धीरे से दरवाजा खोलकर अन्दर दाखिल हो गये ।

—आइये बैठिये………। डीन ने अपने बिल्कुल पास रखी कुर्सी की ओर इशारा करते हुये कहा ।

सबकी ओर अभिवादिनी हाथ जोड़कर ओछेलाल कुर्सी पर बैठ गये । उनका दिल धुकधुका रहा था ।

वाइस चांसलर ने विशेषज्ञों से उनका इंट्रोडक्शन कराया—डॉ० ओछेलाल हमारे यहाँ पिछले 35 वर्षों से पढ़ा रहे हैं । ही इज ओफिशियेटिंग हेड ऑफ द डिपार्टमैंट आलसो ।

डा० ओछेलाल ने महसूस किया, वह गद्‌गद् हो गये हैं । उन्होंने धीरे से बैग खोलकर अपनी तीन पुस्तकों को बाहर निकाल लिया ।

—डा० आलोक, आपके विभाग में, शोध की क्या सुविधा है । डा० कृष्णकांत ने पहला प्रश्न किया ।

—सभी सुविधा है सर । पिछले 20 सालों से हम शोध करवा रहे हैं । लगभग 50 छात्रों को अब तक पीएच० डी० की उपाधि मिल चुकी है । लगभग 25 छात्रों ने तो मेरे ही निर्देशन में डिग्री ली है ।

—आपके यहाँ कुल पीएच० डी० के गाइड कितने हैं ?

ओछे लाल ने मन ही मन हिसाब लगाकर बताया—सात–आठ अध्यापक निर्देशन कर रहे हैं ।

—आप तो रीतिकाल के आचार्य हैं। शायद आपका प्रबन्ध 'शन्नो बाई' पर है।

—जी।

—हाँ, हमें याद आता है। उसके प्रकाशन के बाद हिंदी जगत में उसकी बड़ी चर्चा हुई थी। यह डा० बलजीत नाहर का स्वर था।

—शन्नो बाई के भक्ति पद डा० आलोक की मौलिक खोज थी, इसलिये। इस बार डा० सोम प्रसाद ने बात आगे बढ़ाई।

—अच्छा, डा० आलोक, आपके पास विभाग को विकसित करने के लिये कौन-कौन सी नयी योजनायें हैं। डा० कृष्णकान्त ने दूसरा सवाल पूछा।

—सर, मैंने पहले ही विभाग को काफी विकसित कर लिया है। मैंने पहली बार तुलनात्मक अध्ययन शुरू कराया। पहली बार राजभाषा का प्रश्नपत्र प्रेंस-क्राइब किया। मेरे विभाग में सबसे पहले पत्रकारिता का पाठ्यक्रम शुरू हो रहा है…। इसी तरह सबसे पहले राज्य की दुर्लभ पांडुलिपियों पर शोध कार्य शुरू किया गया है। सबसे पहले…।

—लेकिन आपके विभाग में, सुना है, आपके अलावा और कोई पोस्ट ही नहीं है। डा० सोम दत्त ने जिज्ञासा व्यक्त की।

—अब क्या बतायें सर। अधिकांश कार्य खुद ही करना पड़ता है। कालिज के अध्यापकों को बिठाकर गाइड लाइंस देनी पड़ती हैं। उनसे कार्य करवाना पड़ता है। वैसे अब रीडर-लेक्चरर्स के भी कुछ पद सेंक्शन हुये हैं। उम्मीद है, ये नियुक्तियाँ भी जल्दी ही हो जायेंगी। तब शायद, मेरा काम कुछ हल्का हो। सर, मेरा काम तो नींव रखने का था, इन सालों में मैंने अपनी पूरी निष्ठा से उसे पूरा किया है।

—हमारे विश्वविद्यालयों में तो बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस का स्टाफ है। फिर भी कोई प्रगति नहीं दिखलाई पड़ती। आपने तो सचमुच बहुत काम किया है। डा० नाहर ने टिप्पणी की।

—अब देखिये सर, इस ग्रंथ को तैयार करने में मुझे सात साल लग गये। और ओछेलाल ने उत्साहित होकर अपने साथ लाए लिफाफे से कुछ छपे हुये फार्म निकाले। —एक महीने में यह ग्रंथ प्रकाशित हो जायेगा। इससे रीतिकालीन कविता पर कुछ नितांत नये तथ्य प्रकाश में आयेंगे। कहकर उन्होंने फार्मों को डा० कृष्ण-कान्त के हाथों में पकड़ा दिया।

डा० कृष्णकान्त उन पृष्ठों को उलट-पुलट कर देखने लगे। तभी मौका पाकर पास बैठे डीन ने ओछेलाल से एक प्रश्न पूछ लिया—डा० आलोक, कला अथवा साहित्य की सामाजिकता के बारे में आपका क्या विचार है ?

इस अप्रत्याशित प्रश्न से ओछेलाल एक क्षण के लिये तो अचकचा गये लेकिन

फिर भी हिम्मत बांधकर बोले—कला और साहित्य का सम्बन्ध आत्मा से होता हैं। साहित्य आत्मा की अभिव्यक्ति है। अपनी रचना के क्षणों में रचनाकार आध्यात्मिक अनुभवों के बीच खोया रहता है। उन क्षणों में समाज या जीवन या भौतिकता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। काव्य या साहित्य दरअसल पारलौकिकता का अनुभव है। उसे सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखना उसे सीमित और संकुचित बना देना है··· वैसे सामाजिकता से भी उसका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। उसमें समाज की आशा-आकांक्षाओं, उनके शुभ-अशुभ को भी स्थान दिया जा सकता है लेकिन तब ऐसा साहित्य टेम्परेरी, मेरा मतलब है अस्थायी साहित्य होगा। शाश्वत साहित्य व्यक्ति की आत्मा के साथ झंकृत होता है। और जैसे किसी हरी उपत्यका के बीच कोई झरना बहता, संगीत बनाता चलता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक अनुभवों से समन्वित रचनाकार के शब्द, पग-पग पर शाश्वत साहित्य का निर्माण करते चलते हैं।

कोई चालीस मिनट तक ओछेलाल का इन्टरव्यू होता रहा। और हर प्रश्न के बाद उनका उत्साह बढ़ता चला गया।

अन्त में, डा० कृष्णकान्त ने पूछ ही लिया—डा० आलोक, यदि प्रोफेसरशिप के लिये आपका चयन कर लिया जाता है तो क्या आप न्यूनतम वेतन पर आना चाहेंगे।

—सर, मुझे फिलहाल अट्ठारह सौ पच्चीस बेसिक मिल रहा है। कम से कम यह वेतन तो प्रोटेक्ट होना चाहिये।

—न्यूनतम वेतन से मेरा मतलब यही है।

—मैं तैयार हूँ सर। लेकिन अगर मेरे शोधकार्य और अनुभव को देखते हुये कुछ इन्क्रीमैंट्स और······। कह कर डा० ओछेलाल सहसा चुप हो गये। उन्होंने डा० कृष्ण कान्त के इशारे को भांप लिया था।

अपनी पुस्तकों के बण्डलों को अभी डा० शीतांशु ने ठीक तरह से मेज पर भी नहीं रखा था कि डा० कृष्णकान्त ने एक सवाल उछाल दिया— अच्छा, डा० शीतांशु जी, ये पत्रिकाएं हैं जिनमें आपकी रचनाएं छपी हैं।

डा० शीतांशु के लिये यह प्रश्न अप्रत्याशित नहीं था। वे इस तरह के प्रश्नों का उत्तर देने के लिये तैयार होकर आये थे। उन्होंने किंचित मुस्कराते हुये कहा—डाक्टर साहब, ये पत्रिकायें नहीं हैं, पूरी पुस्तकें हैं। मेरे द्वारा लिखित और संपादित पुस्तकें।

—अच्छा, अच्छा। एक व्यंग्य पूर्ण हँसी हँसते हुये डा० कृष्ण कान्त बोले—बैठिये······बैठिये।

अभी एक बण्डल और है। जरा उसे भी ले आऊँ। कहकर डा० शीतांशु बाहर निकल आये और दरवाजे के पास खड़े अपने शोध-विद्यार्थी के हाथों से बण्डल लेकर भीतर लौट आये।

—आपने तो शायद कथा-वथा पर काम किया है।

—जी, 'वथा'—जैसा कोई शब्द तो मेरे सुनने में नहीं आया। हाँ, कथा साहित्य पर मैंने काफी काम किया है।

—कहा जाता है कि आज की कहानी में संत्रास, पापबोध और लघुमानव की बहुत चर्चा है। इस विषय में आपका क्या मत है ?

डा० शीतांशु अब सम्भल कर बैठ चुके थे। थाड़ा मुस्कराते हुये लेकिन गम्भीर स्वर में उन्होंने कहा—डा० साहब, जो शब्द-बिन्दु आपके मुखारबिन्द से अभी-अभी निकले हैं, उनसे कहानी नहीं, बल्कि आज की कविता व्याख्यायित होती है। अब आज्ञा दें कि मैं कहानी के विषय में बताऊँ या कविता के विषय में।

—नहीं, नहीं, आप कहानी के विषय में ही बताइये। थोड़ा झेंपकर उन्होंने कहा।

—आज की कहानी आज के समय की सच्चाइयों को रेखांकित कर रही है और सफलता के साथ कर रही है। आधुनिक नारी की मानसिक जटिलता, आर्थिक अभावों के परिणामस्वरूप सम्बन्धों की शिथिलता और परिवारों की टूटन, महानगरीय जीवन की त्रासदी, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, राजनीति का जीवन के हर संदर्भ में प्रवेश, न्याय, राजनीति और शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, जातीय संघर्ष, पिछड़ी जातियों और निम्न वर्ग का क्रूर शोषण—अर्थात्—डा० साहब, आज की कहानी में जीवन की पूरी विडंबना व्यक्त हो रही है। आज स्थिति यह है कि कोई भी क्षेत्र······।

—डा० शीतांशु, आप स्वयं भी कथाकार हैं। क्या आप भी यही समझते हैं कि आज कहीं भी कुछ सात्विक, कुछ वरणीय नहीं है।

—जरूर है। ओर उसी की पृष्ठभूमि में असात्विक और अवरणीय की अभिव्यक्ति होनी चाहिये। और वह हो रही है। लेकिन मात्र शुद्ध सात्विक और शुद्ध वरणीय जो भी हमारे समाज में है आज उसकी अभिव्यक्ति और प्रतिष्ठा का कोई मतलब नहीं होता। मैं समझता हूँ कि आपका यह प्रश्न साहित्यकार के दायित्व से जुड़ा हुआ है। और आज के साहित्यकारों से यह उम्मीद नहीं की जानी चाहिये कि वह राजकुमारियों की, उड़न खटोलों की, फूलों-पर्वतों की, मीठे-मीठे सुलाने वाले सपनों की बात करें। जिन परिस्थितियों में आज का आम आदमी······।

—यह आम आदमी क्या होता है। डा० बलजीत नाहर ने बीच में टोक दिया।

—सारी ईमानदारी और सारे परिश्रम के बावजूद जिस व्यक्ति को सामान्य जीवन जीने की सुविधा भी मयस्सर नहीं होती, वही आम आदमी है। मैं समझता हूँ.........।

—आपके निर्देशन में सिर्फ आठ छात्रों ने पीएच० डी० ली है। 30 साल में सिर्फ 8 पीएच० डी०। डा० सोम प्रसाद ने विषयांतर कर दिया।

—सर, मुझे पच्चीस साल पहले पीएच० डी० मिली थी। डी० लिट० किये भी पन्द्रह साल हो गये। लेकिन गाइड बनाने का सौभाग्य अभी दस साल पहले मिला है।

—ऐसा क्यों ? आपकी टीचिंग रिपोर्ट सन्तोषजनक नहीं थी क्या ? डा० कृष्णकान्त जी ने चेहरे पर उत्सुकता लाकर एक अनचाहा प्रश्न दाग दिया।

डा० शीतांशु को हँसी आ गयी। लेकिन उसे जब्त करते हुये उन्होंने कहा—मेरी टीचिंग के सबसे बड़े परीक्षक मेरे विद्यार्थी ही हो सकते हैं सर। यह सवाल तो उन्हीं से पूछा जाना चाहिये।

डा० नाहर ने चार्ट पर नजर दौड़ाते हुये कहा—डा० शीतांशु, हाँ, आपने तो डी० लिट० भी की है। क्या विषय था आपका—हिन्दी उपन्यासों में समाजवादी दृष्टि का अनुशीलन। समाजवादी दृष्टि—यह समाजवाद क्या होता है। अच्छा यह बतलाइये कि यह 'वाद' क्या चीज होती है।

—'वाद' बताऊँ या 'समाजवाद'।

—नहीं, पहले 'वाद' को ही स्पष्ट कीजिये।

—मोटे तौर पर ऐसा है जब किसी निश्चित चिंतन पर विचार-विमर्श और अनुशीलन किया जाता है और इस तरह अन्ततः किसी सिद्धांत की प्रतिष्ठा की जाती तो उसे, उस चिंतन सम्बन्धी सिद्धान्त को 'वाद' का नाम दिया जाता है। वैसे वादात्मक धरातल पर चिंतन की यह प्रक्रिया हमारे देश में नयी ही है। पश्चिमी प्रभाव में आने के बाद से......।

लेकिन 'वाद' शब्द तो भारतीय साहित्य में बहुत पहले से व्यवहृत होता आया है। शायद आपने संस्कृत का अध्ययन नहीं किया। वहाँ एक स्थान पर कहा गया है—वादे-वादे जायते......।

इस पर डा० शीतांशु को सहसा ही गुस्सा आ गया। उन्होंने कहना चाहा—साले मोटे, एक्सपर्ट की कुर्सी पर बैठकर कोई सचमुच एक्सपर्ट बन जाता है क्या। निकल बाहर। तेरी सारी एक्सपर्टी निकाल दूँगा। लेकिन प्रकट में उन्होंने मुस्कराते हुये कहा—डाक्टर साहब, क्या कह रहे हैं आप ? 'वादे-वादे जायते' के वाद और

समाजवाद के 'वाद' में कोई अन्तर नहीं दीखता आपको······। और इतना कहकर डा० शीतांशु जोर से हँस दिये। वे दरअसल हँसना नहीं चाह रहे थे। इस बेवकूफ प्रश्न पर उनका गुस्सा उबल उठा था। लेकिन स्थिति को मद्दे नजर रखकर गुस्से को दबा कर रखना जरूरी था। इसलिये उन्हें जबरदस्ती हँसना पड़ा। हँस लेने के बाद वह फिर एकदम गम्भीर हो गये।

अब तक डा० नाहर भी अपनी कुर्सी पर सिमट कर बैठ गये थे।

डा० नाहर से की गयी बदतमीजी का बदला लेने के लिये हँसकर डा० सोम प्रसाद ने एक और अटपटा सा प्रश्न उछाल दिया—डा० शीतांशु आपके पीएच० डी० के शोध का विषय 'अज्ञेय के नारी चरित्र' है। क्या आप बतलायेंगे कि 'चरित्र और 'चरित' में क्या फर्क होता है। जरा संक्षेप में बतलाइये।

डा० शीतांशु का पारा अभी भी उबाल पर था। लेकिन अपने गुस्से को जब्त करते हुये उन्होंने इन दोनों शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के बाद इतना और जोड़ दिया—डा० साहब, इन दो शब्दों के अलावा एक शब्द और होता है 'चरित्तर' जैसे मैं यह कहूँ कि मैं आपका 'चरित्तर' खूब अच्छी तरह जानता हूँ।

और ऐसा कहने के बाद उन्होंने प्रश्न वाचक दृष्टि से वी० सी० की ओर देखा। जैसे कहना चाह रहे हों—आपका क्या विचार है मिस्टर वी० सी० ?

डा० कृष्णकान्त को समझ नहीं आ रहा था कि डा० शीतांशु को किस तरह पटखनी खिलाई जाये। वह समझ गये थे कि अब डा० नाहर और डा० सोम दत्त कोई प्रश्न नहीं करेंगे। उन्हें अकेले ही मोर्चा सम्भालना पड़ेगा। उन्होंने एक बार फिर कोशिश की—अच्छा, अगर इस पद पर आपकी नियुक्ति कर दी जाये तो आप एम० ए० के पाठ्यक्रम का संयोजन किस प्रकार करेंगे ?

डा० शीतांशु को लगा, अब जाकर उनसे पहला काम का सवाल पूछा गया है। बड़ी संजीदगी के साथ उन्होंने बताना शुरू किया—डाक्टर साहब, पाठ्यक्रम को समय के अनुसार और उसके अनुकूल बनाने की बड़ी जरूरत है। इसके लिये पत्रकारिता, कार्यालयीन भाषा, आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिये रचनात्मक लेखन और विज्ञापन कम्पनियों के लिये अनुवाद तथा मूल लेखन सम्बन्धी अलग-अलग पाठ्यक्रम तैयार किये जा सकते हैं। इसके अलावा······।

—लेकिन ये सब तो आपके विश्वविद्यालय में पहले से ही हैं।

—ऐसा तो नहीं है। पत्रकारिता का क ख ग भी पाठ्यक्रम में नहीं है। कार्यालयीन हिन्दी पर केवल दस अंकों का प्रश्न पूछा जाता है आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिये लेखन कला का अध्ययन कराने की कल्पना तो अभी शायद किसी भी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने नहीं की है। दूसरी बात यह है······।

—कहा जाता है कि हिन्दी में इतना शोध हो चुका है कि अब विद्यार्थियों को विषय ही नहीं मिलते। आपका इस विषय में······।

——डा० साहब, डा० शीतांशु को अपने पहले सवाल का जवाब तो पूर्ण कर लेने दीजिये। बाद में आप जो कुछ पूछना चाहे, पूछिये। काफी समय है हमारे पास। इनके अलावा कोई और कैन्डीडेट है भी नहीं। इस बार चाँसलर के नामिनी ने डा० कृष्णकान्त को रोक दिया।

डा० कृष्णकान्त चुप हो गये। उन्होंने धोती से अपना चेहरा पौंछ लिया।

——जहाँ तक शोध का प्रश्न है, मैं समझता हूँ विषयों की कोई कमी नहीं है। आज हिन्दी में इतना रचनात्मक साहित्य लिखा जा रहा है कि एक-एक साल की कहानी, उपन्तास, नाटक, व्यंग्य आदि अनेक विधाओं पर काम कराया जा सकता है।

——लेकिन इससे लाभ क्या होगा ?

——'शन्नोबाई के भक्ति गीत' जैसे निरर्थक और अप्रांसगिक विषयों पर काम करने-कराने से तो ज्यादा ही लाभ होगा। कम से कम यह तो पता लगेगा कि किस वर्ष में किस साहित्यकार ने अपने युग-जीवन से जुड़कर अपनी रचनाधार्मिता का निर्वाह किया है।

——आपने कहा कि एक वर्ष को कहानियों पर शोध हो सकता है। मैं ऐसा नहीं समझता।

——जब प्रसाद की पचास कहानियों पर शोध हो सकता है तो एक वर्ष की तीन सौ कहानियों पर तो हो ही सकता है।

——इस समय आपके निर्देशन में कितने विद्यार्थियों द्वारा काम किया जा रहा है।

——पांच विद्यार्थी हैं एक समय में पांच से ज्यादा विद्यार्थी लेने का प्रावधान नहीं है यहाँ।

——ठीक है। डा० कृष्णकान्त ने वी० सी० की ओर देखा और उनकी सहमति पा, अपना चेहरा झुका कर बोले——धन्यवाद, आप जा सकते हैं।

डा० शीतांशु के चेहरे पर मुस्कराहट खिल आयी। वह धीरे से उठे। सबको अभिवादन करने के बाद उन्होंने अपनी पुस्तकों के बण्डल उठाये और चैम्बर से बाहर निकल गये।

उनकी पुस्तकों को उलटने-पुलटने तक की जिल्लत भी किसी एक्सपर्ट ने नहीं उठायी थी।

सतरह

अब शाम ढल रही थी।

घर लौटने के बाद से ही डा० शीतांशु अपने में एक अजीब सी शिथिलता अनुभव कर रहे थे। इन्टरव्यू देते समय उत्साह जैसे मर चुका था सोफे पर लेटे-लेटे वह अपने कमरे का जायजा लेने लगे। चारों तरफ किताबें ही किताबें थीं। उनकी तीस साल की पूँजी। एक क्षण के लिये उनके मन में विचार आया—क्या हुआ इतनी साधना करने से। क्या बना, इतना लिखने-पढ़ने से। अपने से ही बातें करते हुये वह जैसे कहने लगे—इस व्यवस्था में जब तक इसके साथ स्वर से स्वर मिला कर नहीं चलोगे, तब तक तुम्हारा कुछ नहीं बन सकता। तुम्हारा ही क्या, किसी का कुछ नहीं बन सकता। रैक्स और अलमारियों में सजी उन किताबों को उन्होंने कितने जतन से जोड़ा था। रात-रात भर जागकर उन्होंने अपना लेखन किया था। लेकिन······लेकिन······

कमरा अंधेरे में डूबने लगा था। लेकिन वह अपने में इतनी भी ताकत अनुभव नहीं कर रहे थे कि उठकर लाइट भी जला दें। बढ़ते हुये अंधेरे में वह वैसे ही लेटे रहे।

अनु बच्चों के साथ किसी के घर गयी हुई थी। वह घर में अकेले थे। किसी तरह वह उठे। रसोई में जाकर पानी पिया और फिर गैलरी में पड़ी आराम-कुर्सी पर लेट गये।

उनके दिमाग में एक बड़ा सा शून्य उभर गया था। उन्हें महसूस हो रहा था कि जैसे किसी ने उनकी सारी शक्ति निचोड़ ली है। सोचने, बोलने और यहाँ तक कि हिलने तक की ताकत उनमें नहीं रह गयी थी। बड़ी देर तक वह सामने खड़े धुँधले वृक्षों की आकृतियों और बदलाये आकाश के विस्तार को देखते रहे।

फिर उन्होंने सोचा कि चलो, उठकर एक कप चाय का ही बना लें। शायद चाय से ही कुछ चुस्ती।

सोचकर वह कुर्सी से उठे ही थे कि तभी दरवाजे की घण्टी बज उठी।

डा० शीतांशु ने दरवाजा खोला तो सामने अनु खड़ी थी मुस्कुराती हुई।

—तुम आ गये। कहो, कैसा रहा इन्टरव्यू ?

—बढ़िया। भीतर तो आओ। कहाँ गयी थीं।

—अरे, तुम्हें तो कुछ याद भी नहीं रहता। कल कहा था कि नहीं गीता

बहिन जी की बड़ी लड़ी लड़की की मंगनी है। ड्यूटी के बाद सीधी वहीं चली जाऊँगी ?

—अच्छा, अच्छा। और बच्चे कहाँ हैं ?

—वे वहीं रह गये हैं। कल सुबह आयेंगे।

—और ये हाथ के डिब्बे में क्या है।

—बहिन जी ने तुम्हारे लिये मिठाई भेजी है। बुरा मान रही थीं कि तुम नहीं आये। वैसे मैंने कह दिया कि यूनीवर्सिटी में जरुरी काम था। शायद न आ पायें।

—चाय पीओगी ?

—नहीं। मेरी तो वहीं तीन चाय हो गयीं। कहो तो तुम्हारे लिये बना दूँ। कब आये ? अभी ?

—नहीं, मैं खुद बना लूँगा। तुम फ्रेश हो लो।

डा० शीतांशु जब तक चाय बनाकर गैलरी में आये, अनु ने अपने कपड़े बदल लिये थे।

—तिपाई पर बैठते हुये बोली—हाँ, तो क्या हुआ इन्टरव्यू में ?

—कहाँ का इन्टरव्यू अनु। एक तमाशा था, बस।

—तो तुम्हारे ओछेलाल का हो गया।

—उसी का होगा, और क्या ?

—और कौन-कौन थे ?

—बस कोई नहीं, हमीं दो थे।

—अच्छा।

—ओछेलाल से कोई बात हुई।

—उससे क्या बात होती।

—वाइस चांसलर भी होंगे।

—हाँ थे ?

—उन्होंने कुछ पूछा ?

—वह क्या पूछते ?

—एक्सपर्टस वही थे, जिन्हें तुम बतला रहे थे।

—हाँ, सब वही थे।

—क्या-क्या पूछा तुमसे ?

—अब तुम्हें क्या बतलाऊँ ?

—तुम बहुत मायूस लग रहे हो। तुम्हें बुरा लग रहा है क्या ?

—अब तुम्हें इसका क्या जवाब दूँ। खैर छोड़ो उसे। अच्छा, यह बतलाओ, गीता बहिन जी का दामाद कैसा है।

—अच्छा है। इन्जीनियर है। थोड़ा बड़ा लगता है। वैसे हँसमुख है।

—गुड़िया को पसन्द है न।

—हाँ, पसन्द ही होगा। वैसे ठीक है।

—और कौन-कौन आये थे ?

—बस रिश्तेदार ही थे। दो चार गुड़िया की सहेलियाँ थीं। हाँ, तुम्हारे ओछेलाल के किसी लड़के की शादी होने वाली है क्या ?

—उसका एक लड़का शादी लायक है ही। 'सीमैन' में है शायद।

—गुड़िया नें बताया, उसकी एक सहेली से बात चल रही है उसकी।

—चल रही होगी।

—चल क्या रही है। पक्की हो गयी है।

—क्या करता है लड़की का बाप ?

—कहते हैं, कोई बड़ा बिल्डर है।

—डा० शीतांशु अनु से बातें तो कर रहे थे लेकिन उनका मन वहाँ नहीं था। फिर वह यकायक कुर्सी से उठे और भीतर जाकर पलंग पर लेट गये।

—तुम बहुत थक गये हो शायद। तुम्हारा खाना लगा दूँ। फ्रिज में रखा है। दो मिनट में गरम किये देती हूँ।

—नहीं अनु, रहने दो।

—अच्छा तुम आराम करो। मैं सुबह की तैयारी कर लेती हूँ। फिर न्यूज सुनकर ही लेटूँगी। अभी नींद भी नहीं आ रही। लाइट बुझा दूँ।

—ठीक है, बुझा दो।

डा० शीतांशु ने दीवार की ओर करवट बदल ली और अंधेरे में कुछ खोजने की कोशिश-सी करने लगे।

तब तक काफी रात बीत चुकी थी।

सहसा डा० शीतांशु हड़बड़ा कर उठे और उन्होंनें सिरहाने रखा लैम्प ऑन कर दिया। सामनें घड़ी में देखा—दो बज रहे थे। उनसे कुछ दूरी पर अनु बेखबर सोई पड़ी थी।

—अनु। उन्होंनें धीरे से आवाज दी।

—हूँ······। उसने छोटा सा हुँकारा भर दिया।

—नींद नहीं आ रही।

—आ जायेगी, सो जाओ। उसने सोते-सोते कहा।

डा० शीतांशु कुछ देर तक तो पत्नी के जागने की प्रतीक्षा करते रहे। फिर लाइट बुझाकर लेट गये।

अनु की इस निश्चितता पर उन्हें कोई खीज नहीं हुई। बल्कि उसके प्रति बहुत सारा प्यार उमड़ आया।

इस औरत की कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं है। वह सोचने लगे—इसकी इच्छायें और आवश्यकतायें भी कितनी कम हैं। यह किसी से कोई अपेक्षा भी नहीं करती। इसीलिये तो इतनी निश्चित और निर्द्वन्द्व है। बस, अपना काम ईमानदारी से करती है। चाहे घर का हो या आफिस का। उतनी ही ईमानदारी से बच्चों के प्रति भी कर्त्तव्य निभाती है और मेरे प्रति भी। इसे किसी से शिकायत भी नहीं है। कितनी उन्मुक्त है यह।

अनु के बारे में सोचते-सोचते अनायास ही करवट बदल कर उन्होंने करवट बदल कर उसे फिर पुकार लिया—अनु।

—बोलो। इस बार अनु की आवाज काफी खुली हुई थी। उसने भी उस की तरफ करवट ले ली।

—क्या बोलूँ ? बड़ा खाली-खाली सा लग रहा है।

—रसोई में जाकर पानी पी लो खालीपन दूर हो जायेगा।

—तुम मजाक क्यों कर रही हो।

—और क्या करूँ

—कुछ बोलो न।

—क्या बोलूँ। बोलूँगी तो सुनोगे क्या ?

—तुम बोलो तो ····।

—देखो अंशु, मैं तुमसे पहले भी कई बार कह चुकी हूँ। अपनी प्राथमिकताओं को निश्चित करो। अगर प्रोफसर बनना ही तुम्हारी प्राथमिकता थी तो पन्त विश्वबिद्यालय में क्यों नहीं चले गये। वहाँ से तो तुम्हें बुलावा भी आया था। तब तो कह दिया—वहाँ जाकर मेरा पढ़ना-लिखना बन्द हो जायेगा। जगल में न किताबें मिलेंगी, न रेफरेंस। तो अब क्यों इतना घुल रहे हो।

—घुलने की कोय बात नहीं है अनु। बात यह है कि इन्टरव्यू में जितना घटियापन किया गया, उससे बड़ी कोफ्त हो रही है·········। पता है, मुझसे वर्ड्स मीनिंग पूछे गये।

—जब तुम्हें पहले से ही पता था कि घटिया लोग एक्सपर्ट बनकर आ रहे हैं तो फिर इन्टरव्यू में गये ही क्यों ?

—उन्हें एक्सपोज करने।

—कर दिया न एक्सपोज। फिर क्यों कुढ़ रहे हो। फिर भी नींद क्यों नहीं आ रही है ?

—अब तुम्हें क्या बताऊँ……।

—मैं सब जानती हूँ अंशु। मेरा तो कहना सिर्फ यह है कि अगर इस सिस्टम से तुम कुछ पाना चाहते हो तो इस सिस्टम जैसे बन जाओ। और अगर नहीं बन सकते तो फिर कुढ़ो मत। आखिर, तुम्हीं अकेले नहीं हो, जिसके साथ यह सब हो रहा है। क्यों ?

—हाँ ऐसा तो है।

—तो फिर बस………। क्या अपने आश्वासन के लिये इतना कम है कि हमने कुछ थोड़ी ज्यादा सुविधायें और कुछ थोड़ा ज्यादा स्टेटस पाने के लिये अपने को बेचा नहीं। अपनी खुददारी के साथ अच्छी चिकनी चुपड़ी खा रहे हैं। दस लोगों के बीच सर ऊँचा करके चल सकते हैं। बताओ किस बात की कमी है हमें। किसी से कहाँ कम हैं हम। तुम बेकार अपने को जला रहे हो।

डा० शीतांशु अब तक काफी शान्त हो चुके थे। अनु के सीधे, स्पष्ट शब्द उनके जलते दिमाग पर ठण्डी बर्फ की पट्टी का सुख दे रहे थे। अनु को बाहों में लेते हुये उन्होंने कहा—शायद, तुम ही ठीक कहती हो अनु। शायद मुझसे ही गलती हो गयी।

—नहीं, गलती की बात नहीं है। अपने हक के लिये कोशिश जरूर करनी चाहिये। बार-बार करनी चाहिये। जब तक कर सकते हो, करनी चाहिये। लेकिन तुम्हें ही सफलता मिले, इस बात की अपेक्षा नहीं करनी चाहिये। जिस दिन तुम अपनी प्राथमिकताओं को पहचान लोगे और अपेक्षा करना छोड़ दोगे, उस दिन तुम्हारा सीना इस्पात का हो जायेगा।

डा० शीतांशु धीरे-धीरे अनु के बालों को सहलाने लगे। वह अपने को बहुत हल्का हुआ महसूस कर रहे थे।

और तभी अनु ने अपने चेहरे को डा० शीतांशु के सीने में दुबका दिया।

डा० शीतांशु को लगा कि पूरा कमरा आत्मीयता के प्रकाश से जगमगा उठा है। उन्होंने अनु को अपनी बांहों में भर कर धीरे से उसकी सुहाग-रेखा चूम ली। गुरुओं के गिरोह की जो चुभन उन्हें दिन भर सालती रही थी: वह इस आत्मीयता और आश्वासन के क्षण में न जाने कहाँ विलीन हो गयी।

सुबह अभी खुली ही थी कि फोन की घण्टी ने डा० शीतांशु को जगा दिया।

बिस्तर पर लेटे-लेटे ही डा० शीतांशु ने रिसीवर उठाया और अलसाई आवाज में बोले—हैलो।

—डा० साहब बोल रहे हैं क्या ? दूसरी ओर से आवाज आई।

—जी……आप ?

—सर, मैं प्रोफेसर देशपांडे बोल रहा हूँ कॉलेज से……। नमस्कार।

—नमस्कार देशपाँडे।……कहो।

—डा० साब आपको डा० ओछेलाल के बारे में कुछ मालूम हुआ ?

—नहीं तो। क्यों क्या हुआ ?

—कल शाम किसी लड़के ने उन पर हमला कर दिया। ठीक उनके घर के पास।

—क्या ?

—जी हाँ। कोई थापा नाम का लड़का था। उनके अण्डर में रिसर्च कर रहा था शायद।

—अच्छा ! डा० शीतांशुका आलस्य हवा हो गया। वह सम्भल कर बैठ गये—अब कैसे हैं डा० ओछेलाल।

—सुना है, वैसे तो ठीक हैं। सिविल आरथोपैडिक सेंटर में दाखिल करवाया गया है उन्हें। उनकी दोनों टाँगों में फ्रेक्चर हो गया है……।

—ओह !

—मैंने सोचा, आपको फोन कर दूँ। आप कालेज कब तक आयेंगे।

—ठीक किया तुमने। दस बजे मेरा लेक्चर है। साढ़े नौ बजे तक पहुँच जाऊँगा। एक ही लेक्चर है आज।

—बाद में आप जायेंगे क्या उन्हें देखने ?

—देखूँगा।

—ठीक है सर। मैं कॉलेज में आप की प्रतीक्षा करूँगा। आप जायेंगे तो मैं भी आप के साथ चला चलूँगा।

—अच्छा।

डा० शीतांशु ने फोन नीचे रख दिया। एक क्षण के लिये उन्हें लगा कि वह भार-मुक्त हो गये हैं।

लेकिन वह यह निर्णय नहीं कर पाये कि यह भार मुक्तता निपट खालीपन की है या आश्वस्ति की।

वह धीरे से उठे और टॉयलेट की तरफ बढ़ गये।

● ●

With Best Wishes From :

KHAMGAON WAHATUK SAHAKARI SANSTHA LTD.,
KHAMGAON

SHIVAJI VESH, SARAFA, KHAMGAON-444 303

Telephone No. : 2356